Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारिका

समय, समाज, संस्कृति और साहित्य की पहचान

वर्ष : 30; अंक : 456; मई, 1990

Acc. No. RT-0501

प्रकाशक :
रमेशचंद्र

संपादक :
अवधनारायण मुद्गल

उपसंपादक :
सुरेश उनियाल
महेश दर्पण
वीरेंद्र जैन

आवरण एवं सज्जा प्रबंधक :
लोकेश भार्गव

सीनियर मैनेजर विज्ञापन :
आर.डी. रस्तोगी

मैनेजर रिसपांस :
डा. राजेंद्रपाल जैन

प्रोडक्शन :
हरेंद्र सिंह नेगी
उमेश कुमार

अंक सज्जा :
किन्नभिन्

संपादकीय, विज्ञापन, प्रसार एवं व्यवस्था :
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3271911

टाइम्स हाउस, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-110002
दूरभाष : 3312277 (20 लाइनें)

अन्य कार्यालय :
डा. दादाभाई नौरोजी मार्ग, बंबई-400 001
फ्रेजर रोड, पटना
अनुपम चैंबर्स, टोंक रोड, जयपुर
33 आश्रम रोड, अहमदाबाद-1
13-1-2 गवर्नमेंट प्लेस, ईस्ट, कलकत्ता-700 062
'गंगा-गृह' तीसरी मंजिल, 6-डी नगामबक्कम हाई रोड, मद्रास-600 034
88 महात्मा गांधी रोड, बंगलूर
407-1 तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411 002

उपन्यास

10 पापी :
रूपसिंह चंदेल

उसने जबसे होश संभाला, अपने को जगदीश सिंह की सेवा में पाया. जब वह बहुत छोटा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार दी गयी थी.

बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह और खंखाकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल ... खून मिला था उसमें.

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले' लियां था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, "जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा."

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती.

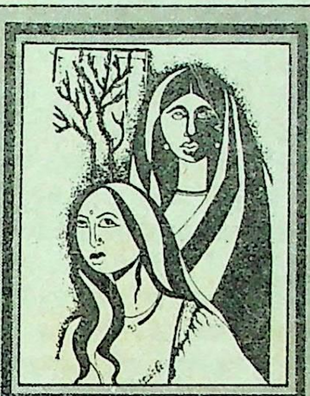

कथा रचनाएं

26 सरदार :
कर्तारसिंह दुग्गल
39 कल्पना के पंखों पर :
रावी
40 दीपिका :
परेश
43 डा. बीबर :
सिंगर
48 श्रद्धा का ताजमहल :
प्रेमकुमार
58 कमबख्त :
विभुकुमार
62 त्रिभुवनगाथा :
अशोक गुप्ता
68 जंगल क्यों कट रहे हैं :
राधेश्याम
72 फिर से :
हरिसुमन बिष्ट
77 चिड़िया और चील :
सुषम बेदी

धारावाही आयोजन

33 लाल पसीना :
अभिमन्यु अनत

कविता

26 डाले नहीं हाशिए :
शील

विशिष्ट आयोजन

55 आलोचना की पुनर्यात्रा :
सुधीश पचौरी
66 फाइल पढ़ि-पढ़ि :
गोपाल चतुर्वेदी

स्थायी स्तंभ

4 कथा पहेली
8 आपकी बात
82 कृतियां
86 हलचल

आवरण पारदर्शी
धर्मवीर जयनर, ज्ञान दीक्षित

कापीराइट © 1990 बैनेट कोलमैन एंड कंपनी लि., विश्वभर में सर्वाधिकार सुरक्षित, बिना पूर्वानुमति के सामग्री का किसी भी रूप में पुनर्प्रस्तुतीकरण वर्जित.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

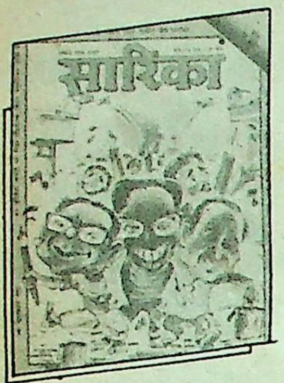

मॉरिशस के कथाकार

जिनका बिंदु-बिंदु सृजन भी प्रत्येक साहित्यानुरागी को एक महान उपलब्धि की भांति स्वीकार्य था, जीवन पर्यंत साहित्य साधना का अलख जगाने वाले तथा हिंदी साहित्य को अपनी बहुआयामी अनुपम अमूल्य कृतियों से संपन्न करने वाले युगदृष्टा तपस्वी से दिग्गज साहित्यकार श्रद्धेय 'नागरजी' चिर समाधि में लीन अवश्य हो गये हैं परंतु अपनी कृतियां स्मृतियों के माध्यम से पूर्ण गरिमा सहित वह हमारे मध्य सदा सर्वदा उपस्थित रहेंगे. कोटिशः नमन है उस महासिद्ध पुरुष को.

होली के चटकीले रंगों में नागरजी के चिर विछोह के अवसाद का रंग धुल गया. कदाचित इस कारण से या वास्तव में ही व्यंग्य विनोद की रचना केवल गुदगुदा ही सकीं. उन्मुक्त हास्य रंग से सराबोर करने में असमर्थ-सी रही. नागरजी की रचना 'अत्युत्तम' रमेश गुप्त की मध्यम तथा शेष साधारण रहीं.

मॉरिशस कथा खंड की रचनाएं—भारत भूमि से सुदूर बसे ये लेखक हिंदी से इतने गहरे संबद्ध हैं यह विचार मन में अनिवर्चनीय पुलक भर देता है. यद्यपि मंझे हुए साहित्यकारों की-सी भावनात्मक परिपक्वता अथवा भाषा सज्जा की प्रखर कला का किंचित अभाव है. इन लेखकों के पास तथापि सहज सरल भाषा सामान्य पाठक के लिए भी ग्राह्य है. यह प्रयास अतिशय सराहनीय है. 'तलाश' वात्सल्य रस से आप्लावित व सुंदर कथा है. 'शिष्य-शिष्या शिक्षक' का अंत चौंकानेवाला है. इन रचनाओं के लेखकों से शिक्षा लेनी चाहिए उन भारतीयों को जिनके लिए अपनी मातृभाषा हिंदी का पठन-पाठन भी लज्जा का विषय है एवं अंग्रेजी का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने में अक्षम रह जाते हैं तथा कुंठाग्रस्त से वह त्रिशकु की भांति आजीवन अधर में लटके रह जाते हैं. एक निश्चित मूल्य में घर बैठे मॉरीशस के कथा साहित्य से परिचित कराने तथा समुचित रूप से रसास्वादन के लिए धन्यवाद.

□ कमल कपूर, फरीदाबाद

भावांजली नहीं भावांजलि

'सारिका' पत्रिका को मैं अपने छुटपन से ही देखता आ रहा हूं. जब कमलेश्वर इसके संपादक थे. शुरू से ही मुझे यह एक प्रतिनिधि हिंदी कथा पत्रिका लगती रही है. अब इधर आकर यह महसूस हो रहा है. पहले सिर्फ इस पत्रिका को देख भर लेता था.

अभी-अभी इसका मार्च, 1990 का अंक देखा. आपने पृ 11 पर अपने हस्ताक्षर के साथ हिंदी के यशस्वी कथाकार श्री अमृतलाल नागर को भावांजली देकर एक पुण्य कार्य किया है. मेरे जानते भावांजलि इस प्रकार होनी चाहिए जैसे श्रद्धांजलि. क्या मैं ठीक हूं.

□ राग रंजन, शकरपुर, दिल्ली

खाम-खयाली-कथा

सारिका का मार्च 90 अंक पढ़ा. अरुण प्रकाश की रचना 'कोंपल कथा' कम्युनिस्टता से ग्रसित प्रांतीय पात्रों की एक ओर जहां खुलकर खिंचाई करती है वहीं लेखक थोड़ी असावधानी भी कर गये हैं. कहीं परोक्ष में पात्र को बुर्जुवा (चर्चित या फिर एक स्तरीय बताकर) का आवरण ओढ़ाकर लेखन में खाम खयाली पुलाव तो नहीं पाल रहे हैं. क्योंकि इन दिनों जहां पात्र को काफी घुटता हुआ दिखाया जाता है, वहीं उसे वर्ग चेतना या फिर समाज के प्रति संवेदनशील तत्वों को उगलवाकर लेखक अपना कोई हल या दिशा न देकर परिस्थितियों द्वारा टेंशन ही क्रियेट कर देते हैं.

वहीं अभिमन्यु अनत का 'लाल पसीना' सार्थक आभास को व्यक्त कर रहा है.

□ अरुण अभिषेक, पूर्णियां

चौक का चांसलर

सारिका का व्यंग्य विनोद अंक देखा. होली के संदर्भ में आपने अच्छी सामग्री दी है. वैसे साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को होली के रंग से परहेज भी नहीं होना चाहिए. सारिका को आपने होली के रंगों से सराबोर कर दिया है. हास-परिहास, व्यंग्य-विनोद सब कुछ हमें पढ़ने को मिला. आज के खीझ और बोझिल माहौल में भी कुछ क्षणों के लिए गुदगुदा गया सारिका का यह अंक. आपको बधाई है ऐसे सार्थक एवं सामयिक आयोजन के लिए.

आपने 'सारिका' के इस अंक में 'अपनी बात' में हिंदी साहित्य के मूर्धन्य रचनाकार स्व. अमृतलाल नागर को श्रद्धांजलि दी. वैसे हम सबका यह दायित्व भी था कि हम उस साहित्य मनीषी को अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करें. आपका यह कहना कि उनका निधन आपकी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति थी वास्तव में सही है, लेकिन यह केवल आपकी ही व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति नहीं वरन् समूचे हिंदी साहित्य की यह व्यक्तिगत एवं पारिवारिक क्षति है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता. निःसंदेह वह हिंदी साहित्य के एक ऐसे सबल स्तंभ थे जिसके ढह जाने से आज एक खालीपन, एक शून्य भर गया है साहित्य में, जिसे जल्दी भरना संभव न होगा. वह जीवन पर्यंत शब्दों की साध[ना] करते, जीवन के विविध रू[पों] विविध अनुभवों को साहित्य [में] उकेरते रहे, अपने आसपास [के] बिखरे चरित्रों को अपनी रचना[ओं] में समेटते रहे और उन चरित्रों [की] वास्तविकता से हम[ें] साक्षात्कार कराते रहे. [स]ही मायने में वह अपने परिवे[श] अपने युग के रचनाकार थे, त[भी] अपनी रचनाओं में [वह] तत्कालीन समाज के चरित्रों [को] पूरी ईमानदारी से उतारते [रहे] चाहे वह 'नाच्यौ बहुत गोपा[ल'] रहा हो या 'ये कोठेवालियां' [या] अन्य कोई.

वह लखनऊ चौक यू[नि]वर्सिटी का वाइस चांस[लर] इतना बड़ा किस्सागो था [कि] अपनी रचनाओं में पूरे परिवे[श] को, पूरे माहौल को जीवंत [कर] देता था. पाठक को लगता था [कि] वह उस माहौल में ही पहुंच ग[या] है. चाहे इसकी बानगी आ[प] 'मानस का हंस' में देख लें [या] 'सुहाग के नुपूर' में. वह ऐ[सा] रचनाकार रहा जो पाठक से सी[धा] संबंध स्थापित कर लेता [था.] उसकी रचनाएं इतनी सह[ज,] सरस एवं संप्रेष्य होती थीं [कि] पाठक उसे बिना खत्म किये प[ढ़े] छोड़ नहीं पाता था. खैर उ[स]के बारे में जितना भी कहा जाये [कम] ही होगा. उस जिंदा [दिल] मस्तमौला साहित्यकार को [मेरा] नमन है, सब का नमन है.

सारिका के इस अंक [का] 'मॉरिशस कथा खंड' अच्छा [और] उपयोगी रहा. इसके ब[हाने] मॉरिशस की साहित्य की प्रग[ति] का एक अच्छा ग्राफ मि[ला.] 'कोंपल कथा' उपन्यास में बि[हार] की एक अहम समस्या पकड़[ुआ] विवाह को अच्छे ढंग से उ[ठाया] गया है, लेखक को साधुवाद [है] ऐसे सामयिक सोच के लिए. [आशा है] सारिका को अच्छा ले जा र[हे हैं,] बशर्ते युवा रचनाकारों [को] अधिक प्रश्रय दें तो अच्छा है.

□ रमेश ऋतंभर, नरकटियागंज (बिहार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपरिभाषित प्रेम

लोचन विदेशी की कहानी शाष्य शिष्या और शिक्षक' आज शैक्षणिक जगत का कड़वा ंतु यथार्थपरक चित्र है. प्रेम असल वो शब्द है जिसे रिभाषा के शब्दजाल में फांस ना कतई मुमकिन नहीं वरन यह एक ऐसा 'सेंटीमेंट' है जो उम्र एक-एक दिन फर्क से अलग-अलग स्वरूप बदलता है. शौर्य की सीमा पार करना जुर्गियत हासिल करना है तेंद्रिय बनना नहीं और यही जह है कि क्षणात्म आवेश के शीभूत तरुण समुदाय का कोई दस्य जंग-ए-इश्क में प्राण वन करने पर भी कदाचित तुल ता है परंतु इसी घटनाक्रम को क अधेड़ सिर्फ इसी दृष्टिकोण से चता है कि महज पिपासा शांत रने के लिए इतनी बड़ी कीमत काना निरी मूर्खता है क्योंकि पत्य की दहलीज के भीतर तक हुंच चुका व्यक्ति उठनेवाली मस्त समस्याओं से अवगत होता और यौन संबंधों की स्थापना में ह बहुत हद तक 'मैकेनिकल एंड कानॉमिकल' हो बैठता है. अतः ार शब्द उम्र के लिहाज से कहीं ाग, कहीं समर्पण तो कहीं हवस प्ति के रूप में प्रकट होता है. एक भावना यह भी है कि यौन बंधों के अनैतिक रूप से थापित न करने की नाकामयाबी ी तरुण समुदाय के इश्क को श्क के दरिया में डुबो देना हती है. इस विषय पर ॉइकॉलाजिकल एनालिसिस' ड़ा ही जटिल हो उठता है और मस्या अंगद का पांव प्रतीत होती मुगल शहजादों का इश्क और गल शहंशाहों का इस संदर्भ में जरिया, उस समस्या के ंतरिक विश्लेषण का एक बर्दस्त नमूना है.

□ जयंत चक्रवर्ती, पटना सिटी

शिकवे दूर हुए

'व्यंग्य विनोद विशेषांक' इस र हमें काफी विलंब से मिला. फिर भी प्राप्त होने के बाद गुस्सा दूर हो गया. इस अंक में सबकी रचनाएं अच्छी लगीं. नागरजी पर विशेष सामग्री और कभी जरूर दीजिए.

इस व्यंग्य विनोद विशेषांक की सबसे श्रेष्ठ व्यंग्य रचना मुझे 'मेरा फोटो महान' लगी. शिवानंद कामड़े निश्चय ही श्रेष्ठ व्यंग्यकारों में गिने जायेंगे कृपया उन तक हमारी हार्दिक शुभकामनाएं एवं बधाई पहुंचा दें. विनोद शंकर शुक्ल की रचना भी बहुत पसंद आयी.

□ राजकुमार अग्रवाल, बिलासपुर (म.प्र.)

बाजी कामरेडों के हाथ

'सारिका' में बेहतर रचनाओं की श्रेणी में अरुण प्रकाश का उपन्यास 'कोंपल कथा' एक और कड़ी है. अगर इसे मार्च अंक की उपलब्धि कहूं तो अतिशयोक्ति न होगी.

मन-मस्तिष्क को झंकृत करके रख दिया. 'भैंसोंवाली गली' की याद ताजा हो आयी. औरत के खिलाफ पुरुष की वही एक जुटता. उसे कोई अहमियत नहीं. उसे सिर्फ वो करना है जो पुरुष का उसके लिए निर्देश है. पढ़ना-लिखना भी एक ओर उठा के ताक पर रख दिया. ज्ञान का भैया उसका भाग्य नियंता हो गया.

दहेज कोढ़ है समाज का. विकृत होते कुछ तथाकथित प्रगतिशील परिवारों की सामाजिक प्रतिबद्धता व बड़प्पन का प्रतीक. जैसे और कोई भला काम बचा ही न हो! इस कुरीति पर गहरी चोट दी है अरुणजी ने. हालांकि बुनावट में और भी बहुत कुछ है मसलन अहंकार, पारिवारिक बिखराव, टूटन, कामरेडों की जागरूकता, लाचारी, मजबूरी और भी बहुत कुछ. सारा का सारा स्वतः याद आ जाने वाला. बहुत गुण की रचना दी है. अशोक बाबू की गिड़गिहड़ाहट में आने वाले समाज का नक्शा छिपा है, अगर समय रहते बुराइयों को नहीं खत्म किया जा सका तो हम सब अशोक बाबू हो जायेंगे और बाजी कामरेडों के हाथ होगी.

तो हो जाए बधाई धन्यवाद. बूंद-बूंद नहीं धारा के रूप में.

□ मुकेश कुमार भाटी, मेरठ

डेढ़ इंच मुस्कान

'व्यंग्य विनोद विशेषांक' का आमुख देखते ही चेहरे पर डेढ़ इंच मुस्कान आ गयी. आमुख से लेकर अंदर का प्रत्येक पृष्ठ हंसाता, खिलखिलाता, व्यंग्यवाण चुभोता, गुदगुदाता, ठिठोलियां करता लोट पोट कर गया.

अंक की हास्य व्यंग्य गुदगुदाहट और एंद्रजालिक छटा के ताने बाने से मंडित सामग्री वर्षों गुदगुदाती, हर्ष और उल्लास का संचार करती रहेगी. इस उत्कृष्ट संयोजन हेतु साधुवाद.

□ शालिनी यादव, वाराणसी

साहित्यिक कृति पुरस्कार

हाल ही में हिंदी अकादमी, दिल्ली ने वर्ष 87-88 के साहित्यिक कृति पुरस्कारों की घोषणा की है. ये पुरस्कार प्रत्येक वर्ष एक वर्ष विशेष में प्रकाशित कृतियों पर दिये जाते हैं. पुरस्कार स्वरूप प्रत्येक पुरस्कार विजेता को ग्यारह हजार एक सौ एक रुपये की राशि, प्रशस्ति पत्र और पुरस्कार प्रतीक-चिन्ह समारोह पूर्वक समर्पित किया जाता है.

इस वर्ष पुरस्कार विजेता हैं :

उपन्यास के लिए

सर्वश्री भीष्म साहनी, नरेंद्र कोहली, राजेंद्र अवस्थी, मोतीलाल जोतवाड़ी और वीरेंद्र जैन.

कहानियों के लिए

सर्वश्री रमेश उपाध्याय, वीरेंद्र सक्सेना, बलराम, विजय किशोर मानव, रूपसिंह चंदेल और सविता चड्ढा.

कविता के लिए

सर्वश्री डा. विनय, पद्मा सचदेव, प्रताप सहगल, कुलदीप सलिल और प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय.

व्यंग्य के लिए

सर्वश्री सुरेश कांत, जयपाल तरंग और सुशील कालरा.

विविध विषयों के लिए

सर्वश्री रामदरश मिश्र, रणवीर रांगा, जयदेव तनेजा, ब्रजराज किशोर, कैप्टन भगवानसिंह, कुंवरलाल व्यास शिष्य, चंद्रकांत बाली, प्रदीप पंत और डा. धर्मवीर.

सभी पुरस्कार-जयी कृतिकारों को सारिका परिवार की ओर से हार्दिक बधाई.

नागरजी के पत्र

पंडित अमृतलाल नागर द्वारा समय-समय पर अपने देश-विदेश के साहित्यिक बंधुओं, इष्ट मित्रों, हिंदी साहित्य के अध्येताओं और हिंदी प्रेमियों को जो पत्र लिखे गये उनका हम संग्रह करना चाहते हैं. ऐसे सभी महानुभावों से, जिनके पास पंडित अमृतलाल नागर द्वारा लिखे गये पत्र सुरक्षित हों, हमारी करबद्ध प्रार्थना है कि वे हमें सूचना देने का कष्ट करें ताकि हम उनकी फोटोस्टेट कापी करा सकने की व्यवस्था करा सकें. इस सहयोग के लिये हम उनके चिरकृतज्ञ रहेंगे.

□ शरद नागर, कोठी शाहजी, मिर्जा मंडी, चौक लखनऊ-226003 फोन : निवास : 61350. कार्यालय : 245844

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पापी

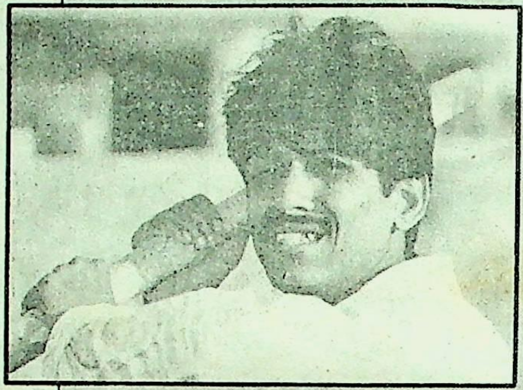

□ **रूपसिंह चंदेल**

जन्मः 12 मार्च, 1951, कानपुर जनपद के ग्राम नौगवां में प्रमुख कृतियां 'पेरिस की दो कब्रें', 'अजगर तथा अन्य कहानियां' (कहानी संग्रह). 'रुकेगा नही सवेरा' (उपन्यास). तीन किशोर उपन्यास, सात बाल कहानी संग्रह प्रकाशित. शीघ्र प्रकाश्यः 'आदम खोर', 'हारा हुआ आदमी', 'रमला बहू', 'प्रकारांतर', 'चीख' व 'हिंदी बाल कथा कोश' (संपादित). संप्रति : केंद्रीय सरकार की सेवा में. संपर्क : 10ए/22, शक्ति नगर, दिल्ली-110007

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आधी रात के लगभग वह कोठरी में लौट पाया था, थका-पिटा.
दोपहर से ही महफिल जमी थी वहां... शहर से मित्र आये थे, शंकर बाबू के साथ पढ़ने वाले... उन्हीं की देखभाल में लगा दिया था उसे लंबरदार जगदीश सिंह ने. ले थे, "बचवा के दोस्त हैं....कउनौ कमी न होने पावे."

उसने सिर हिला दिया था और वैसा ही करता रहा था, जैसा शंकर बाबू बोलते रहे थे. म से ही खाने-पीने का सिलसिला शुरू हो गया था. दो घूंट.. न-न करने पर भी जबर्दस्ती ड़कर उसे भी पिला दी थी शंकर बाबू के एक साथी ने. शायद कोई अंग्रेजी थी, तभी दो : में ही उसका दिमाग झन्नाने लगा था, देसी तो वह पहले भी एक-आध बार ली-दिवाली में में ले चुका है. लेकिन उस दिन उसने जाना था कि देसी और अंग्रेजी के द में क्या फर्क होता था. उसे शंकर बाबू के वे दोस्त तब बहुत अच्छे लगे थे.

लेकिन शंकर बाबू की बात उसे अच्छी नहीं लगी थी जो उन्होंने पीने-पिलाने का लसिला खत्म होने के बाद कही थी. उनकी बात सुनते ही दोनों हाथ हिलाकर वह बोला , "न बाबू... मोहते ई सब न होई..."

"अबे सुन," उसके कंधे पर अपना दाहिना हाथ रख पुचकारते स बोले थे शंकर बाबू, ोटों से तेरी जेब भर देंगे और उसे भी मुंह मांगी रकम.... बस तू पसियाने या चमरौटे से सी को भी...."

वह छिटककर एक ओर जा खड़ा हुआ था, एक कोने में और बेचारगी से बोला था, झे माफ कर दो बाबू... ये काम मैं कभी नहीं करूंगा... कभी नहीं..."

"तुझे करना ही पड़ेगा मक्कू... मेरे साथियों के लिए !" शंकर बाबू के स्वर में धमकी

"बाबू, एक बात सुनि लो... गरीब के लिए उसकी इज्जत ही सब कुछ होत है... अमानत तरह... उहे खातिर वे प्राण भी दे ले सकत हैं... ये न भूलो बाबू." उसका स्वर रुआंसा उठा था.

"स्साला बकवास करता है.... मुझे सीख दे रहा है!" चीखते हुए आगे बढ़े थे शंकर बाबू र लात-घूसों से पिल पड़े थे उस पर. वह पिटता रहा था, लेकिन उफ न की थी उसने. कर बाबू के साथी उसे पीटने के लिए हौसला बढ़ाते रहे थे, "और... अभी और शंकर!"

पीटते-पीटते जब हांफने लगे थे शंकर बाबू तब दरवाजे की ओर उसे धकियाते हुए चीखे "मैं खुद ही देख लूंगा..... लेकिन तू अब यहां से दफा हो जा.... वर्ना जिंदा..." आगे के ब्द सुने बिना ही वह भाग खड़ा हुआ था जानवर बांधने के घेर की ओर और कोठरी में ते ही खटोली पर ढह गया था.

चारों ओर घुप अंधेरा था और थी जानवरों के पेशाब और गोबर की गंध, चूहों की उछल-कूद और झींगुरों की आवाज. जानवरों के नथुने फड़क रहे थे और बीच-बीच में कोई भैंस फांय-फंकाकर मुंह से सांस छोड़ रही थी. यह सब उसे बुरा लग । था. नींद थी कि कोसों दूर चली गयी थी और बदन रह-रहकर टीस रहा था उसका. । न आने से मक्कू का मन न जाने कहां-कहां भटकने लगा. बीते दिन याद आने लगे. ने बाहर फैले अंधेरे को निहारने से बचने के लिए आंखें मूद ली और अपने अंदर फैले रे से, जो बचपन से अब तक गहराता ही गया है, जूझने लगा.

उसने जबसे होश संभाला, अपने को जगदीश सिंह की सेवा में पाया. जब वह बहुत टा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर. सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार गयी थी. उसे तो कुछ होश नहीं. होश होता तो कैसे, तब वह मात्र दो साल का ही था. के बापू को एक बार मां की बहुत याद आयी थी. वह रोता रहा था और फिर उसी ने ाया था सब कुछ.

बिहार के उस गांव में बापू की भी छोटी-सी गृहस्थी थी—अपनी छोटी-सी झोपड़ी थी... की बिरादरी की लगभग सौ परिवारों की झोपड़ियों के बीच, जिसमें दिनभर हार-पतार खटने के बाद बापू उसकी मां और उसके साथ अपनी जवानी के दिन गुजार रहा था. तभी दिन वह सब घटा था.

गांव के एक भूस्वामी भूमिहार के बेटे से उनकी बस्ती के दो नौजवानों की मजूरी को र कहा-सुनी हो गयी थी. बात कुछ अधिक ही बिगड़ गयी थी शायद. वर्ना -सिकुड़कर रहनेवाली उस हरिजन बस्ती के युवकों में इतना दम-खम कहां से आ जाता वे भूस्वामी के बेटे पर हाथ उठा देते. लेकिन हाथ उनके उठ ही चुके थे. अधिक तो

सांझ ढलते-ढलते बस्तीवालों को पता चला कि घर लौटते समय नाले के पास उन दोनों नौजवानों को भूस्वामी के उस बेटे के साथ कुछ दूसरे लोगों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी और लाशों को नाले में फेंक दिया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तू चुप हो जा सावित्तरी!" हांफते स्वर में वह बोला, "थोड़ा देर और तू यहीं बैठ.... कहीं मत जाना, तुझे मेरी कसम... मैं अभी आया लौटकर..." उसने लाठी संभालकर कंधे पर रखी और दौड़ पड़ा मंदिर की ओर.

न मारा था उन लोगों ने उस भूस्वामी के बेटे को, फिर भी चार-छह लाठियां तो मार ही दी थीं. और इतना पर्याप्त था भूस्वामीयों के लिए. गांव के अन्य भूस्वामियों ने इसे उस बस्तीवालों द्वारा अपने खिलाफ युद्ध की घोषणा मान लिया.

मजूरी को लेकर झगड़े तो पहले भी होते रहे थे, लेकिन पहले उसकी बस्तीवालों को डरा-धमकाकर, मारकर वे लोग चुप करा दिया करते थे, किंतु उस दिन–दिन-दिन में ही भूस्वामियों ने एकत्र होकर योजना बनायी और सांझ ढलते-ढलते बस्तीवाले को पता चला कि घर लौटते समय नाले के पास उन दोनों नौजवानों को भूस्वामी के उस बेटे के साथ कुछ दूसरे लोगों ने गोली मारकर हत्या कर दी थी और लाशों को नाले में फेंक दिया था.

बस्ती में कोहराम मच गया था. बापू सहित बस्ती के सारे नौजवान इकट्ठा हुए थे उस रात बस्ती के बीच बने 'महादेव' के चबूतरे पर. इसका प्रतिकार कैसे लिया जाये, वे सब यही सोच रहे थे. उसकी माई दाल-भात और तरकारी बनाकर बापू का इंतजार कर रही थी. बस्ती की सभी झोपड़ियों में ढिबरियों की पीली बीमार रोशनी फैली हुई थी. सारी बस्ती किसी अभिशप्त नारी की भांति दिखायी दे रही थी.

तभी बस्ती के बाहर हलचल हुई थी. लोग कुछ समझ पाते, इससे पहले ही गोलियां दगने की आवाजें आने लगी थीं. बस्ती को भूस्वामियों और उनके लोगों ने घेर लिया था चारों ओर से. कुछ देर तक गोलियां चलती रही थीं और फिर सारी बस्ती को आग के हवाले कर दिया था उन लोगों ने. चारों ओर भाग-दौड़... चीख-चिल्लाहट... और था उन अतताइयों का अट्टहास. बस्ती के खाक होने तक वे सब उसे घेरे रहे थे. उनकी गोली का शिकार होनें से बच गया था उसका बापू. लपटों से खेलता बापू किसी तरह अपनी झोपड़ी तक पहुंच गया था. वहां बापू को मिली थी जलकर ढेर हुई उसकी मां की लाश और पास में रोता-बिलखता वह. वह बच गया था साफ. आग ने उसे छुआ तक न था.

उसे ले उसका बापू उसी क्षण लुकता-छुपता भाग खड़ा हुआ था. और आ पहुंचा था अपनी ननिहाल. ननिहाल में उसने कुछ दिन यों ही बिता दिये थे. उसकी माई के शोक में डूबे इधर-उधर भटकते हुए. लेकिन कब तक वह इस तरह रह सकता था वहां.... और तभी एक दिन उसकी भेंट वहां जगदीश सिंह से हुई थी. उन्हें एक हलवाहे की जरूरत थी और बापू को काम की. बापू उसे लेकर चला आया था. जगदीश सिंह के साथ... उनके गांव.

बापू भोर से रात देर तक जगदीश सिंह के काम में बेजुबान जानवर की तरह जुटा रहता. अपने बेटे से–मक्कू से दो बातें करने तक की फुर्सत उसे न मिलती. मक्कू दिन भर आवारा पिल्ले की भांति कभी जगदीश सिंह के घेर में पड़ा रहता, कभी गांव के बाहर बने हनुमान मंदिर के बाहर किसी बच्चे के साथ खेलता रहता और कोई न होता खेलने के लिए तब अकेला ही पक्के कुएं, जो मंदिर से कुछ ही दूर था, की जगत पर बैठता या कुएं के पास के नीम के पेड़ों से गोंद निकालता रहता.

शंकर बाबू भी उसी की उम्र का था.... जगदीश सिंह का इकलौते बेटा. कभी-कभी वह भी उसके साथ खेलता और नीम के पेड़ से गोंद निकालता. शंकर बाबू की मां, जिन्हें सभी लंबरदारिन कहते को जब याद आती, मक्कू को बुलवाकर दोपहर खाना दे देती. ज्यादातर बेझर की रोटी और नमक बुकनू. वह चबूतरे पर जब खाना खा रहा होता कभी-कभी शंकर बाबू अपना खाना लिये बाहर निकल आते. लंबरदारिन उन्हें उसके पास बैठकर खाने से रोकती, लेकिन वह न मानते. उसके पास जाते थाली रखकर शंकर बाबू. वह देखता, दाल-भात-रोटी-सब्जी-अचार.... अपनी रोटी ... हुए उसकी नजर शंकर बाबू की थाली पर टिकी रहती. शंकर बाबू शायद उसका अभिप्राय समझ जाते और थोड़ा-थोड़ा सब कुछ अपनी थाली से उसके कटोरे में डाल देते. वह सब खाकर मक्कू सोचता, 'क्या कारण है कि वह बेझर की सूखी रोटियां चबाता है और शंकर बाबू को इतना अ... भोजन मिलता है. जबकि वह भी शंकर बाबू ... है–उतना ही बड़ा, उन्हीं की उम्र का. फिर भी अंतर क्यों? लेकिन तब उसके नन्हें मस्तिष्क में कुछ भी न आता था.

फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता गया, सब कुछ समझता गया था. पांच की उम्र पार करते ही ... बाबू को स्कूल में भर्ती करा दिया गया था और घर की सफाई और गोबर इकट्ठा करने के का... लगा दिया गया था. शंकर बाबू साफ-साफ क... पहनकर स्कूल जाते तो वह हसरत भरी नजरों से उन्हें देखता रहता. शंकर बाबू प्रतिदिन नये क... बदलते और वह अपने को एक ही फटी-मैली ... में पाता तो उसका दिल बैठ-बैठ जाता. तब व... पक्के कुएं की जगत पर बैठकर रोता रहता.

एक दिन उसने रात में बापू से जिद की कि उसके लिए भी नयी कमीज सिलवा दें और उ... स्कूल जाने के लिए पाटी-बस्ता और बोरकला... बापू कितनी ही देर तक उसे समझाता रहा था... नयी कमीज के लिए पास पैसे नहीं हैं और स्कू... भर्ती होकर वह क्या करेगा. जब मजूरी ही क... तो बिना पढ़ा-लिखा ही ठीक. लेकिन बापू का... उसकी समझ में नहीं आया था. वह अपनी जि... अड़ा रहा तो बापू को गुस्सा आ गया. उसने ... पिटाई कर दी. वह पिटता रहा और अपनी जि... अड़ा रहा. बौखलाकर बापू ने धक्का देकर उ... चारपाई से नीचे गिरा दिया. रात भर वह नी... लेटा रहा. सोया भी नहीं उस रात.

और सुबह.... चुपचाप खिसककर वह हनु...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंदिर के पीछे जा छुपा था. बापू जब काम पर चला गया तब वह जा पहुंचा था स्कूल. काफी देर तक वह स्कूल के बाहर खड़ा बच्चों को देखता रहा और अंदर जाने का साहस बटोरता रहा. तभी उसकी नजर शंकर बाबू पर पड़ी. वह तीन लड़कों के साथ थे. मक्कू दौड़कर उनके पास पहुंचा. वह शंकर से कुछ कहता, इससे पहले ही शंकर ने पूछा, ''तू कहां था रे सुबह से?''

''मैं....मैं....'' कुछ जवाब न दे पाया वह.

''हां.... हां.. तू!''

''शंकर बाबू... मुझे भी स्कूल में भर्ती करवा दो... तुम्हारे साथ पढ़ने आया करूंगा.'' उसने पहले अपने मन की बात कह देना ही उचित समझा था.

''यह बकवास बंद कर मक्कू... सीधे घर जा नहीं तो तेरी और खैर नहीं आज.... सुबह से ही तेरी ढूंढ मची हुई है और तू यहां... अरे आज से तुझे जानवर चराने जाना है... समझा!''

शंकर बाबू के साथ के लड़के हंसने लगे थे. वह फिर भी टस से मस न हुआ था.

''तू जा या न जा लेकिन जो कुछ आज तेरे बारे में सुना था, वह तुझे बता दिया.''

शंकर बाबू अपने साथियों के साथ चले गये थे. उस दिन उसे लगा था कि अब शंकर बाबू भी बदल गये हैं... पहले जैसे नहीं रहे... उसके साथ खाने के लिए आ बैठने वाले. वह कुछ देर तक वहां खड़ा रहा था... और ललचायी नजरों से बच्चों को देखता रहा था, फिर मन मारकर लौट पड़ा था और जा बैठा था पक्के कुएं की जगत पर. पता नहीं कब तक वह वहां बैठा रहता अगर लंबरदार जगदीश सिंह का झन्नाटेदार तमाचा इसकी कनपटी पर न पड़ा होता. वह तिलमिला उठा था. लेकिन जगदीश सिंह ने उसे सिसकने भी न दिया और दोनों कान पकड़कर ऊपर उठाकर पटकते हुए बोले थे, ''स्साले, रोया तो उठाकर कुएं में फेंक दूंगा! दुनिया समझेगी कि खुद ही गिरकर मर गया है!''

उसकी चीख अंदर ही घुटकर रह गयी थी. केवल आंसू टपकते रहे थे. वह उकडूं बैठ गया था उनके सामने. लेकिन कहां बैठने दिया था उन्होंने! उसे घसीटते हुए ले गये थे और एक डंडा पकड़ाते हुए बोले थे, ''आज से तू भीखू अहीर के ग्वाल के साथ जानवर चराने जायेगा.''

और उस दिन से वह जानवर चराने जाने लगा था. पढ़ाई की कल्पना त्याग दी थी उसने. सुबह बापू के साथ उठकर जानवरों के पानी-चारे के इंतजाम में जुट जाता और दिन चढ़ते ही उन्हें हांक जंगल की ओर चला जाता. जिस दिन जगदीश सिंह या लंबरदारिन का मन खराब होता, उस दिन उसे दिन भर निराहार घूमना पड़ता. रात लौटता तो इतना थक चुका होता कि बापू से बात भी न कर पाता और न ही बापू उससे कुछ पूछता. एक ही चारपाई पर दोनों दो द्वीपों की भांति पड़े रहते रात भर.

अब शंकर बाबू से भी उसकी कम ही मुलाकात होती. और जब भी वह मिलते, कोई न कोई स्कूल का उनका साथी उनके साथ चिपका होता. तब उसे उनसे बात करने में संकोच महसूस होता और शंकर बाबू अपनी ओर से उससे बिना बोले गुजर जाते. कभी कंचे या गुल्ली-डंडा खेल रहे होते और वह खड़ा होकर खेल देख रहा होता तो वह उसकी तरफ देखते भी नहीं थे. उसे यह सब अजीब-सा लगता. शंकर बाबू का यह बदलाव उसे अखरता. उसने इस सबका कारण खोजने की कोशिश की और तब एक दिन उसकी समझ में आया कि शंकर बाबू और वह दो अलग दुनियाओं के बासिंदा हैं—मालिक और नौकर की दुनिया. तब तक वह बड़ा हो चुका था. धीरे-धीरे उसकी दुनिया उसे अपने जाल में लपेटती गयी थी और छटपटाता वह उसमें उलझता गया था.

बड़ा होने के साथ ही काम का बोझ उस पर बढ़ता गया था. बापू बीमार रहने लगा था, जिससे बापू के हिस्से का कुछ काम भी उसे करना पड़ता. जानवर चराने के साथ-साथ गोबर फेंकना, जानवरों की सानी-पानी, चारा लाने से लेकर दूध निकालने तक के काम उसके जिम्मे आ पड़े थे. भोर से ही देर रात तक वह जुटा रहने लगा. काम में जरा-सी भी कोताही लंबरदार को बर्दाश्त न थी. गाली-गुफ्ता तो उनकी जुबान पर हर समय रहता ही था, जब-तब उनका हाथ भी उस पर उठता रहता था. उसकी छटपटाहट बढ़ जाती ऐसे क्षणों में. उसे अपने बापू पर क्रोध आता. क्यों नहीं वह जगदीश सिंह की हलवाही छोड़ देता? एक दिन उसने बापू से पूछ लिया था.

''तब तू का मिट्टी खायेगा?'' बापू खिझला उठा था.

''अब त मैं भी कुछ करने लायक हो गया हूं बापू... हम कहूं भी जाकर कछू भी करके पेट पाल लेंगे.''

''तेरा माथा फिर गया है का रे मकुए... तुझे पता भी है कुछ....मैं... मैं.... बस अब मैं....''

बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह. और खखारकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल.... खून मिला था उसमें. बापू शिथिल हो गया था खांसते-खांसते. खांसी थमी तो वह निढाल-सा लेट गया था. और हाथ के इशारे से खूंटी पर टंगे झोले की ओर इशारा कर धीरे से बोला था, ''झोले से शीशी निकालकर दवा पिला रे मुझे.''

उसने शीशी निकाल उसी के ढक्कन में ढालकर तीखी गंध वाली दवा उसे पिला दी. दवा पीकर बापू काफी देर तक होंठ चाटता रहा था, फिर बोला था, ''मक्कू, बेटा, आज तुझे बता रहा हूं... मैं जियादा दिन नहीं चल पाऊंगा. अंदर ते शरीर खोखला होई गया है.''

''नहीं बापू, आप अइसा न कहें.... आप अभी....''. वह बिलख उठा था.

■

कुछ को इमलिहा बाबा इमली के उस विशाल पेड़ के नीचे सफेद झक कपड़ों में टहलते दिखे रात में और कुछ को बुलाकर बाबा ने बातें भी की थीं. इमलिहा बाबा किसका भूत हैं कोई नहीं जानता.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं ठीक कह रहा हूं रे... मुझे टी.बी. हो गयी है.... अब मैं ठीक नहीं होने का."

"इलाज करें ते ठीक काहे न होगे.... मैं लंबरदार से आरजू करूंगा... उनसे पइसा लेकर तुम्हार इलाज.... तुम ठीक होई जाओगे बापू... जरूर ठीक होई जाओगे..." आंसुओं से उसका चेहरा भग गया था. बापू की छाती पर सिर रखकर वह कितनी ही देर तक रोता रहा और बापू प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरता रहा था.

दूसरे ही दिन वह लंबरदार जगदीश सिंह के पास जा पहुंचा था. उसकी पूरी बात सुने बिना ही बोले थे, "पैसा! पैसा! जब देखो तब पैसा! पैसों की कोई बखारी है मेरे पास जो कभी तेरा बाप तो कभी तू चले आते हो! अभी परसों ही तेरे बाप को दिये थे पचास रुपये... उड़ा गया होगा चरस में... भाग जा! नहीं है, मेरे पास पैसे-वैसे!"

"मालिक, आपको पता नहीं... बापू को टी.बी.होई गयी है... अगर इलाज नहीं करवाया तो वो काम कइसे..."

"टी.बी. हो गयी... तो मैं क्या करूं! मैंने कोई ठेका ले रखा है तेरे बाप की बीमारी का?" गरजे थे जगदीश सिंह.

"नहीं लंबरदार, लेकिन इलाज तो जरूरी है न."

"तो करवा जाकर इलाज!"

"कहां से करवायें.... हलवाही आपकी करें हैं तो पैसे भी आपसे ही मांगेंगे."

"मैंने कहा न, मेरे पास नहीं हैं! इलाज का ठेका नहीं ले रखा...!"

मक्कू अपने को रोक नहीं पाया. चीख उठा, "ठेका नहीं ले रखा... ये बात आप आज कहि रहे हैं, अब बापू चारपाई पकड़ने वाला है... बंधुवा मजूर की तरह आपने बापू को इस्तेमाल किया है और आज आप..."

वह आगे कुछ बोलता, इससे पहले ही उसके मुंह पर तेज मुक्का पड़ा था जगदीश सिंह का. दोनों हाथों से मुंह ढांप लिया था उसने.

जगदीश सिंह दहाड़े थे, "स्साले, जुबान चलायेगा तो बोटी-बोटी काटकर कुत्तों को खिला दूंगा! कल का छोकरा स्साला जुबान चलाता है!" जूते चरमराते वह चल पड़े थे.

मक्कू ने लपककर उनके पैर पकड़ लिये थे, "मालिक, बापू की जगह मैं सारी जिंदगी आपकी गुलामी करिहौं... आप बापू का इलाज करवा दें... उसे मरने न दें मालिक!" वह बिलख उठा था.

कुछ देर सोचते खड़े रहे थे जगदीश सिंह फिर उससे अपने पैर छुड़ाते हुए बोले थे, "सौ-दो सौ में उसका इलाज न होगा... अभी तू सोच ले... बाद में कहते न घूमना लोगों से कि जगदीश सिंह ने तुझे फंसा लिया."

"मैंने सोच लिया है लंबरदार..."

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान. एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले लिया था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, "जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा और बापू से कहना, वो अपना इलाज शुरू कर दे... जितने पैसों की जरूरत हो, आकर ले जाया करे."

वह ठगा-सा रह गया था. यह क्या कह रहे लंबरदार... वह समझ नहीं पा रहा था. खड़ा उन्हें टुकुर-टुकुर देखता रहा था. जगदीश सिंह उसे इस तरह खड़ा देख तीक्ष्ण स्वर में बोले थे, "जाता क्यूं नहीं... मैंने कहा न, जाकर बापू को भेज दे!"

मक्कू पैर पटकता लौट आया था अपनी झोपड़ी में. यह झोपड़ी उसके बाप ने कुछ महीने पहले ही गांव पंचायत से मिली जमीन पर बनायी थी. जब वह लौटकर आया, बापू काम पर जा चुका था. वह बेचैन-सा झोपड़ी में पड़ा रहा था और सोचता रहा था कि बापू से पूछे बिना उस कागज पर अंगूठा निशान लगाकर उसने अच्छा नहीं किया है शायद. लेकिन अब हो क्या सकता था. वह उठकर मंदिर की ओर चला गया और मंदिर की बाहरी दीवार पर बैठकर हनुमानजी से मन ही मन प्रार्थना करता रहा कि वह कागज लंबरदार से कहीं गुम हो जाये या उनके कुर्ते की जेब में पड़ा-पड़ा धुल जाये या गलती से वह उसे फाड़ डाले. उसे लग रहा था कि शायद उसने कुछ ऐसा कर डाला है जो गलत है और उसे नहीं करना चाहिए था. दस बार हनुमान की ओर माथा झुकाकर उसने प्रार्थना की, "महावीरजी, एक हजार रुपये... एक हजार न सही... पांच सौ ही.... कहीं पड़े मिलि जायें, जिनसे मैं बापू का इलाज करवा सकूं. आप ये न सोचें भगवान कि रुपये मिलते ही मैं आपको भूल जाऊंगा. बिल्कुल न भूलूंगा भगवान. उस पर सबसे पहला हक तो आपै का होगा. पूरे पांच रुपइन का परसाद चढ़ाऊंगा आप पर—सबसे पहले. आप कुछ अइसा जरूर कर दें ईश्वर... जिसे लंबरदार से रुपये उधार न लेना पड़े... और हां, यह भी भगवान... कि आज जिस कागज पर लंबरदार ने मुझसे अंगूठा चिपकवा लिया है, वह कहीं बरि जाये या सड़ि-गलि जाये!"

वह पता नहीं कब तक आंखें बंद किये यों ही प्रार्थना करता रहता अगर उसे मंदिर के नये पुजारी पंडित तिरलोचन की आवाज न सुनायी देती, "अरे पापी, तू यहां बैठा है और वहां लंबरदार तुझे ढूंढ रहे हैं... आज जानवर चराने नहीं जाना क्या? बहुत बौखलाये से लग रहे थे लंबरदार."

पुजारी नये-नये आये थे. उनके लाल चेहरे पर चमक थी, शरीर गठीला और उम्र कोई चौबीस-पचीस के आसपास. मक्कू को वह अच्छे लगते थे. कभी-कभी मौका मिलने पर उनके पास जा बैठता, ज्ञान की दो बातें सुनता, समझने की कोशिश करता जो उसकी समझ में कम ही आती थीं.

पुजारीजी उसे सदैव पापी कहकर ही बुलाते और मक्कू को बुरा न लगता. पुजारीजी कहते, "पिछले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारे शहर में 'बस लूट' में माल की लूट से अधिक और ही कुछ लूटे जाने की चर्चा थी—उसके साथ क्या हुआ, कैसे हुआ बार-बार पूछकर पुलिस भी जांच पूरी करने में लगी थी, घर के बाहर लोग ऊंची आवाजों में बस लूट कांड की चर्चा करते, कई दिन बाद भी विद्यालय जाते समय रास्ते में मानो सारी नजरें उसी पर केंद्रित थीं, कोई लुटेरों की संख्या पूछता—तो दूसरा कहता भैया, तीन थे पूरे तीन. उसके स्कूल पहुंचते ही भीड़ में सांप के आ जाने जैसी भगदड़ मच गयी थी, कमरों की खिड़कियों से उसे झांक-झांककर देखा जा रहा था—डाली से टूटे फूल की तरह कक्षा के एक कोने में बैठी थी वह—कोई बात भी करता तो सहानुभूति कम उलाहना ज्यादा! घर के लोग भी तो जैसे मौन ही हो गये थे सब! दोष किसका था? अनुत्तरित प्रश्न पतिता-पतिता की तेज आवाजों में खो गया था.

'बस लूट के हादसे की शिकार लड़की ने आत्म हत्या कर ली,' आंधी की तरह खबर दूर-दूर तक फैल चुकी थी—जगह-जगह भीड़ जमा थी... लड़की नहीं देवी थी वह तो

तमाम शहर में अब देवी के बलिदान के गुणगान हो रहे थे.

जन्म में पाप कर्म करने के कारण ही वह इस जन्म में एक मजूर के घर पैदा हुआ और पुण्य कर्म करने के कारण शंकर बाबू लंबरदार जगदीश सिंह के घर जनमे..."

पुजारीजी की बात उसे कभी समझ में नहीं आयी. लेकिन उसने इसका कभी प्रतिवाद भी नहीं किया. क्योंकि वह अपने को अपढ़, मूर्ख और उन्हें विद्वान मानता है.

"तू क्या सोच रहा है रे!" पुजारी ने टोका तो वह अचकचा गया था. दीवार से कूद वह सीधा जानवरों के घेर की ओर भाग खड़ा हुआ था.

बापू को जब शाम को पता चला कि मक्कू ने उसके इलाज के लिए लंबरदार के पास रुक्का लिख दिया है तब वह आग बबूला हो उठा था, लेकिन हिम्मत उसकी भी न पड़ी थी कि जाकर वह रुक्का जगदीश सिंह से ले ले. वह भी उनसे डरता जो था.

और दूसरे ही दिन जगदीश सिंह उसके बापू को लेकर अपनी जान-पहचान के डाक्टर के पास ले गये थे, पड़ोसी गांव आलमपुर. वह उनके साथ गया था. डाक्टर से बोले थे. जगदीश सिंह, "डाक्टर साहब, आप पैसों की चिंता न करें, जितना खर्च होगा, मैं दूंगा. बस आप इसका जमकर अच्छी तरह इलाज करके ठीक कर दें. मेरा नौकर है तो क्या, मेरे घर के सदस्य जैसा ही समझें डाक्टर साब इसे... और फिर आप तो खुद ही समझदार हैं..." उस दिन बहुत मेहरबान लगे थे लंबरदार जगदीश सिंह.

"मैं सब समझता हूं ठाकुर साहब... अगर ये तीन महीना इलाज करा लेगा तो बस समझो फिर से पहले की तरह आपका काम करने लगेगा." डाक्टर ने जगदीश सिंह को आश्वस्त किया था.

"आपकी मेहरबानी डाक्टर साहब... मुझे तो यही चाहिए... इसकी बीमारी से काम का हर्जा तो हो ही रहा है." मक्कू की ओर घूरकर देखते हुए जगदीश सिंह बोले थे."

मक्कू ने नजरें दूसरी ओर कर ली थीं.

डाक्टर ने कुछ टिकियां और पीने की दवा थमा दी थी और हफ्ते में एक बार दिखाने के लिए कहकर विदा कर दिया था. जगदीश सिंह ने कितने पैसे उसे दिये थे, यह बाप-बेटा दोनों ही न जान पाये थे. और उसके बापू का इलाज शुरू हो गया था. वह खुश था कि तीन महीने में बाप भला हो जायेगा. डाक्टर ने तीन महीने तक बापू को कुछ भी काम न करने की सलाह दी थी, लेकिन बापू के लिए आराम हराम था. जगदीश सिंह चाहते तभी तो आराम कर पाता बापू.

और वही हुआ जो उसने कभी सोचना न था. बापू की हालत दिन पर दिन खराब होती चली गयी. तीन महीने में हालत सुधरने के बजाय इतनी अधिक बिगड़ गयी कि बापू ने चारपाई पकड़ ली. अब वह जब भी खांसता, कफ के बजाय खून ही उगलता. उसकी जगह काम का सारा बोझ मक्कू के कंधे पर आ पड़ा. एक दिन उसने जगदीश सिंह से कहा, "मालिक, बापू को शहर के किसी अस्पताल में देखवा देते... ई डाक्टर साहब की दवा से तो तनिकौ फाइदा न..."

"तू समझता है शहर के अस्पताल में मुफ्त में इलाज हो जायेगा!"

मक्कू उनके चेहरे की ओर देखता रह गया था.

"अब तक डाक्टर को पूरे डेढ़ हजार पुजा चुका हूं. लेकिन जिसकी उम्र ही पूरी हो चुकी हो, उसे कौन...?"

मक्कू की चीख निकल गयी थी, "नहीं मालिक, अइसी कुभाख न बोलो मेरे बापू के बारे में!" आंसू छलक आये थे उसके.

"मूर्ख, इसमें मेरा या तेरा कोई बस है? डेढ़ हजार रुपये खर्च करके भी हम जिसे फायदा नहीं पहुंचा सके, उस पर दस हजार भी तू खर्च कर दे... लेकिन..."

लेकिन का अर्थ वह समझ गया था. वह यह भी समझ गया था कि अब तक बापू के इलाज में लंबरदार ने डेढ़ हजार खर्च कर दिये हैं और अब वह एक पैसा भी खर्च नहीं करना चाहते. उसे लगा था कि वह चीत्कार कर उठे, 'लंबरदार, उसके जिस बापू के परिश्रम के बल पर आप ऐश करते आये हैं, आज वही इस हालत में आपके लिए बेकार हो गया है... वर्षों से बंधुआ मजूर की तरह आपके यहां काम करते जिसने अपने शरीर को गला दिया... आज उसके लिए आपके पास कुछ नहीं!"

लेकिन वह कुछ कह नहीं सका. चला आया था वहां से और झोपड़ी में आकर सुबकता रहा था अपनी मजबूरी पर—दरिद्रता पर. और जिस बात की उसे आशंका थी, वही हुआ था. बापू की खून की उल्टियां बढ़ती गयी थीं. दिन में दो-दो, तीन-तीन वह उनकी देखभाल भी नहीं कर पाता था ठीक तरह से. थोड़ी देर उनके पास बैठ नहीं पाता था. बैठा नहीं कि जगदीश सिंह की बुलाहट आ जाती थी. इस स्थिति में उसका मन करता कि वह बाप को लेकर कहीं दूर चला जाये... जगदीश सिंह की पहुंच के बाहर...

एक दिन रात में उसने बापू से कहीं चले जाने की बात कह दी. सुनकर फीकी मुस्कान तैर गयी थी बापू के मुख पर. बोला, "तू तो निरा पागल है रे... अब मरते बखत कहां ले-जायेगा तू मुझे?"

वह बापू के चेहरे की ओर देखता रहा था, जो झुर्रियों का रेगिस्तान बन चुका था. शरीर पर मात्र हड्डिया ही शेष थीं. खून और लंबरदार जगदीश सिंह की सेवा में अर्पित कर खटोली के द्वीप में पड़े बापू के रूप में आदि मानव को पता नहीं कब तक देखता रहता मक्कू. लेकिन बापू की आवाज ने उसे चौंका दिया था.

"बेटा, मरने से पहले मेरी एक इच्छा तू पूरी कर दे."

वह बोला तो कुछ नहीं लेकिन चेहरे के भाव से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगदीश सिंह मुस्कराये थे—एक कुटिल मुस्कान. एक कागज में न मालूम क्या लिखकर उस पर उसका अंगूठा निशान ले लिया था उन्होंने, फिर गंभीर स्वर में बोले थे, ''जा, तू निश्चिंत होकर काम पर जा.''

स्पष्ट कर दिया, 'कह बापू, जो कुछ तू कहेगा... मैं पूरा करूंगा.'

''सावित्तरी है न... वो कनकिया-बिसंभरा की बेटी... विसंभरा पिछले साल मर गया था न...''

उसने सिर हिलाकर जताया कि वह जानता है कनकिया की बेटी सावित्तरी को.

''अपनी ही जाति-बिरादरी है वो.''

''साफ-साफ कह न बापू, पहेलियां काहे कू बुझा रहा है!'' वह भी जिज्ञासु हो उठा था.

''कनकिया एक दिन मिली थी रास्ते मा, सुबो-सुबो. रोने लगी थी बेचारी... हम गरीबन की किस्मत मा रोना ही बदा होता है.'' लंबी आह भरी थी बापू ने.

''का कह रही थी सावित्तरी की अम्मा?''

''कहना का बेटा, सावित्तरी के लिए ही रो रही थी बेचारी. वो तेरे साथ उसका बियाह... मना मत करना मक्कू... मैंने ओको हां कह दिया है. बिना बाप की बेटी है.'' छत की कड़ियां गिनने लगा था बापू.

वह चुप रहा था. लेकिन एक बात उसने अवश्य महसूस की थी कि अब वास्तव में वह बड़ा हो गया है. अपने बारे में उसे कभी सोचने का अवसर भी कहा मिला था. जब भी सोचा उसने तो लंबरदार के बारे में, शंकर बाबू के बारे में, जो इंटरमीडिएट पास कर शहर चले गये थे पढ़ने. और जो भी थोड़ा समय मिला तो बापू के बारे में सोचा उसने. लेकिन उस दिन उसने अपने बारे में सोचा और अपने बारे में सोचते समय सावित्तरी, उसके सामने थी. बापू से उसने हां कह दी.

उस रात उसे नींद नहीं आयी थी. वह सावित्तरी के बारे में सोचता रहा था. सुबह एक बार उसके घर के सामने से निकला था, लेकिन सावित्तरी उसे दिखायी न दी थी. दूसरे दिन ही बापू ने कनकिया को बुलाकर बता दिया था कि मक्कू रिश्ते के लिए तैयार है. कोई शुभ घड़ी देखकर बंधन में बांध देंगे दोनों को.

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती. एक दिन तो सामने पड़ने पर उसने कह भी दिया था, ''काहे को इतना सरमाती है तू... आखिर एक दिन तो तुझे...''

''धत्त!'' पायल छमछमाती भाग गयी थी सावित्तरी.

उसे लगा था जैसे सैकड़ों सुरीली घंटियां बज उठी हैं उसके कानों के पास. उसके मन के तार झनझना उठे थे. उस दिन उसने दूने उत्साह से काम किया था लंबरदार के खेतों में. जितने खेत की निराई दो दिन में होती, उसने एक दिन में ही कर डाली थी. जगदीश सिंह ने जानवर चराने का काम उससे छुड़ा दिया था. अब उसे वे सारे काम करने पड़ते थे, जो उसका बापू करता था.

वह सब करता, क्योंकि उसने रुक्का लिख रखा था.

उस दिन शाम जगदीश सिंह के जानवरों की सानी-चारा करके उनके घर हाजिरी बजा वह प्रसन्न मन झोपड़ी में लौटा. वह सोच रहा था कि जाते ही वह बापू को घुमा-फिराकर कहेगा कि शादी में अधिक देर न करे. जब कुछ ताम-झाम नहीं करना तब देर का क्या मतलब! लेकिन झोपड़ी के बाहर पहुंचने पर उसे आश्चर्य हुआ, झोपड़ी खुली पड़ी थी और अंदर घुप्प अंधेरा था.

बापू तो कभी ऐसा नहीं करता... खुली झोपड़ी छोड़कर कभी नहीं जाना और वहां होता है तो बिना चिराग जलाए नहीं रहता.उसका दिल धड़कने लगा था, तेजी से. झोपड़ी के दरवाजे पर पहुंचते ही उसने बापू को आवाज दी. कोई उत्तर न मिला तो वह उनकी चारपाई के पास पहुंचा. अंधेरे में टटोलकर देखा तो चारपाई खाली थी. उसका दिल धक-सा रह गया.

बापू कहां गया? वह नहीं सोच पा रहा था. चिराग जलाने के लिए वह माचिस खोजने लगा. तभी उसका पैर बापू से टकराया. बापू चारपाई के पायताने जमीन पर पड़ा था. उसने माचिस ढूंढ़कर चिराग जलाया. देखा, बापू मुंह के बल औंधा पड़ा है, निस्पंद, पास ही खून से जमीन गीली पड़ी है. वह विक्षिप्तों की भांति चीख-चीखकर रो उठा. मोहल्ला इकट्ठा हो गया था. सावित्तरी की मां कनकिया भी आयी और उसे दिलासा देती रही थी. जगदीश सिंह आये थे और पचास रुपये थमा गये थे बापू के क्रिया-कर्म के लिए.

न चाहते हुए भी उसने रुपये रख लिये थे. बापू के क्रिया-कर्म से निबटकर एक दिन उसने जगदीश सिंह से कहा था, ''अब मैं काम न कर सकूंगा लंबरदार, मुझे इजाजत दें तो...''

चौंके थे लंबरदार. बोले थे, ''काम नहीं करना तो मत कर, ले आ पांच हजार रुपये और मुक्त हो जा!''

''पांच हजार काहे के... ठकुर साब?''

''डेढ़ हजार तेरे बापू के इलाज के... और उसका ब्याज डेढ़ हजार... हो गये न तीन हजार...'' आंखें चढ़ाकर बोले थे जगदीश सिंह.

वह टकटकी लगाकर देखता रहा था उनकी ओर. मन किया था उसका कि आंखें निकाल ले उस अधम की.

''क्या सोच रहा है?''

''सोच रहा था कि अभी एक साल भी नहीं हुआ बापू के इलाज को... और डेढ़ हजार पर डेढ़ हजार रुपये ब्याज....''

''सो तो है... मैं तो इतना ही ब्याज लेता हूं.... जिसकी हजार बार की चूम होती है दौड़कर आता है कर्ज लेने... तेरी थी, तब तू भी आया था.''

''और दो हजार किस बात के?''

''एक हजार तोरे बापू ने दो साल पहले लिये थे...ब्याज सहित उसके.''

''आप मेरी झोपड़ी ले लें, जो बचेगा मैं जुगाड़

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके दे दूंगा.''

''झोपड़ी!'' मूंछों में ही मुस्कराये थे जगदीश सिंह, ''झोपड़ी तो हजार-डेढ़ हजार से ज्यादा की नहीं है. चल, मैं दो हजार लगा देता हूं उसके. आटा चक्की के लिए वह जगह बेहतर रहेगी. लेकिन तीन तो तब भी तुझे देने ही होंगे मक्कू.''

''देखता हूं.'' वह चलने को हुआ था.

उसे रोक समझाने के स्वर में बोले थे जगदीश सिंह, ''अभी तू बच्चा है मकुए... काहे को जिंदगी तबाह करना चाहता है. मेरे यहां रहेगा तो ऐश ही ऐश रहेगी तेरी. तेरा बापू सावित्तरी से तेरी शादी करना चाहता था... दो-चार महीने में उसकी मां से कहकर मैं वह भी करवा दूंगा. फिर दोनों मियां-बीवी रहना ठाठ से... रहने के लिए घेर के पासवाली कोठरी दे दूंगा तुझे... सोच ले.''

और वह भी सोचने लगा था कि जगदीश सिंह का प्रस्ताव माने या न माने. न मानने का मतलब था रुपयों का इंतजाम करना और इतनी रकम.. कठिन ही नहीं, असंभव लगा था जुटा पाना उसे. वह सावित्तरी की मां के पास गया था वहां से सीधे. सुनकर उसने भी सलाह दी थी कि लगा काम वह न छोड़े. सावित्तरी के बारे में सोचे... शादी कर कहां भटकता फिरेगा.

सावित्तरी का ख़याल आते ही उसकी सारी उत्तेजना ठंडी पड़ गयी थी. उसे लगा था कि वह कभी नहीं जा पायेगा वह गांव छोड़कर. और गांव छोड़कर न जाने का मतलब था लंबरदार के यहां ही काम पर रहना. उसने बहुत सोचा... और अंत में इसी निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह कभी कहीं नहीं जा सकता. जगदीश सिंह की हलवाही करेगा और सावित्तरी के साथ घर बसाकर वहीं जिंदगी बसर करेगा.

उसने जगदीश सिंह के सामने हथियार डाल दिये थे. सुनकर खिल उठे थे जगदीश सिंह.

''तू तो अपने बापू से भी अधिक समझदार है रे. मेरे पास रहेगा तो दुख काहे का होगा! और मैंने सोचा है कि तुझे सहारे के लिए दो-तीन बीघे खेत तिहाई पर दे दिया करूंगा.. जोतने-कमाने के लिए.'' मूंछों में मुस्कराते हुए बोले थे जगदीश सिंह.

यह प्रस्ताव उसे आकर्षक लगा था.

और एक दिन उसकी झोपड़ी पर कब्जा हो गया था जगदीश सिंह का. अपना ताम-झाम उठाकर वह आ गया था उनके घेर की कोठरी में. उसकी झोपड़ी तोड़कर पक्की ईंटों की दीवारें खड़ी करवा दी थीं जगदीश सिंह ने और धन्नियों की छत डलवा दी थी. आनन-फानन आटा-चक्की लग गयी थी. वहां—डीजल से चलने वाली. वह चक्की की ठक-ठक-ठक सुनता तो उसे लगता जैसे वह आवाज उसकी झोपड़ी में नहीं, उसकी छाती पर हो रही है.

उसके बापू को मरे मुश्किल से दो महीने ही बीते थे और झोपड़ी उसके हाथ से निकल गयी थी. शायद जगदीश सिंह को उसके बापू की मौत का ही इंतजार था. झूठा-धूर्त-मक्कार है यह आदमी जिसने उसके बापू के शरीर का ख़ून तो चूस ही लिया था, ''अब उसका ख़ून चूसने लगा था! और वह कितना विवश है, कितना असमर्थ...'' उसके अंदर एक टीस-सी उठती तो वह जगदीश सिंह को एक भद्दी-सी गाली देकर मन को संतोष दे लेता.

कुछ समय यों ही गुजर गया था. इस मध्य कनकिया ने दो-तीन बार उसे बुलाकर समझाया था, ''बेटा, मेरी जिनगानी का भी कुछ ठिकाना नहीं... मरने से पहले सावित्तरी... तेरे बापू की भी यही इच्छा थी...''

''तू घबड़ा न अम्मा... भगवान महावीर ने चाहा तो इस बार की फसल मा ई पिशाच जगदीश सिंह का पइसा अदा करि देब... तब ही ठीक रही.''

''कइसे अदा करिहा तू?''

''तीन बिगहा तिहाई मा जोता है इस बार. फसल लहलहा रही है... बोकी पैदावार ते... तीन हजार की ही त बात है... फिर शादी बियाह मा कुछ तो लेन-देन करहीं का पड़ी...''

कनकिया ने भी सोचा कि मक्कू ठीक ही कह रहा है. फसल आने में दो महीने की ही तो बात है. और वह भी कौन-सा इंतजाम करके बैठी है कि तुरंत शादी कर ही देगी.

वह भी ख़ुश था सोचकर कि अब तो कुछ ही दिनों की तो बात है... सावित्तरी को उसकी बनने में.

नींद यों हिरन हो गयी थी कि एक क्षण के लिए भी झपकी न लगी थी. वह करवट ही बदलता रहा. बदन अभी भी टीस रहा था उसका और ठंड थी कि इठला रही थी. पिल्लही रजाई, जिसमें घुसते ही वह ढेर हो जाया करता था, आज ठंड से उसे नहीं बचा पा रही थी. वह नहीं समझ पा रहा था कि आज ठंड कुछ अधिक है. या शंकर बाबू की मार के कारण वह ऐसा महसूस कर रहा है.

सत्तो भंगन के मुर्गे ने बांग दी तो वह उठ बैठा. दरवाजा खोल बाहर देखा तो लगा कि रात अभी कुछ अधिक ही है. भोर तो नहीं ही हुआ. पैरों में रजाई डाल वह फिर बैठ गया. घेर में कोई भैंस खड़ी पेशाब कर रही थी. किसी दूसरे जानवर के खड़े होने की आहट भी आयी, जो शायद भैंस की पेशाब की छींटों से खड़ा हो गया था.

उससे बैठा नहीं जा सका. उठ खड़ा हुआ. अंगड़ाई ली तो बदन जोर से टीस उठा. थोड़ी देर खड़ा रहा वह, फिर पैरों से टटोलकर फटे चमरौंधों में पैर डाले, सिरहाने रखी लाठी उठायी, दरवाजे पर कुंडी लगायी और बाहर निकल गया.

सड़क पर आते ही कुत्ते भौंक उठे थे. लेकिन वह चलता रहा. कुत्तों ने थोड़ी दूर तक उसका पीछा किया लेकिन इमली के पेड़ के पास आकर वे रुक गये और कूंकूं करते हुए लौट गये. वह सावित्तरी के घर की ओर से निकला. क्षण भर के लिए वहां

उस दिन के बाद जब भी सावित्तरी रास्ते में कहीं उससे टकरा जाती, शरमाकर छुई-मुई बन जाती. एक दिन तो सामने पड़ने पर उसने कह भी दिया था, ''काहे को इतना सरमाती है तू... आखिर एक दिन तो तुझे...''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

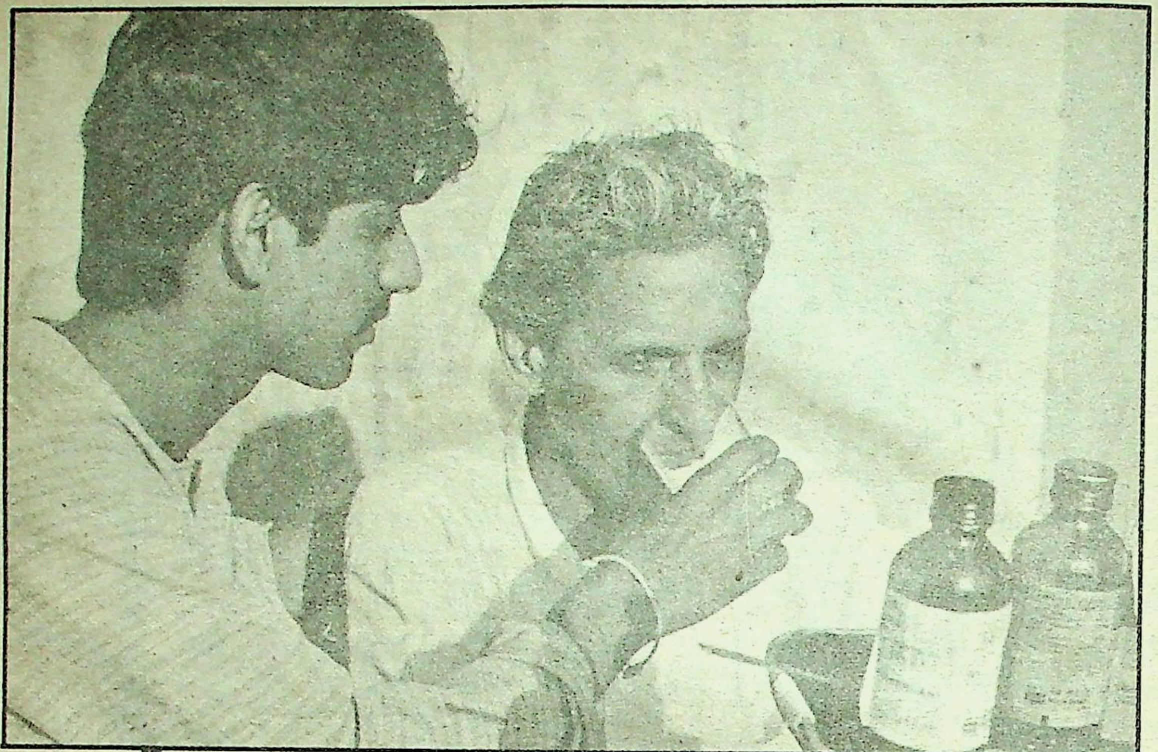

■ बापू को जोरदार खांसी आ गयी थी. खांसता रहा था वह. और खंखारकर बलगम उसने जमीन पर उगल दिया था. मक्कू ने देखा था, वह बलगम ही नहीं था केवल...खून मिला था उसमें.

ठिठका, आहट लेने के लिए कि मां-बेटी ठीक-ठाक तो हैं न. जब उनके सोने के खर्राटे सुने तो आश्वस्त हो गया और मंदिर की ओर मुड़ गया.

गांव पूरी तरह निस्तब्ध था... अंधेरे में खोया. कहीं किसी कुत्ते के भौंकने की या कूंकूने की आवाज ही सुनायी पड जाती थी.

वह जाकर मंदिर के बाहर चबूतरे पर बैठ गया और मंदिर की ओर मुंह कर हनुमान का स्मरण करने लगा, 'हे भगवान, शंकर बाबू, उनके दोस्तों से पिंड छुड़वा दो. जिसकी मांग वे लोग कर रहे थे, वह उनके लिए नहीं हाजिर कर पायेगा. हे प्रभू तुम सरबब्यापी हो, उनसे तुम ही मुक्ति दिला सकता हो.'

इस समय वह यह भी भूल गया था कि बाहर ओस में बैठे होने से ठंड के कारण उसका शरीर कांप रहा है. वह तो आज महावीर भगवान को प्रसन्न कर लेना चाहता था, जिससे सुबह शंकर बाबू की नजरों से दूर रह सके. वह सोच रहा था कि महावीरजी की किरपा हुई तो जरूर लंबरदार उसे खेतों में भेज देंगे.

वह आंखें बंद किये स्मरण में मग्न था कि मंदिर के पास वाली कोठरी का दरवाजा खुला. इस कोठरी में मंदिर के पुजारीजी रहते थे. उसकी आंख खुल गयी. उसने देखा, पुजारी कोठरी से बाहर निकले और तहमद उठा खड़े-खड़े ही मंदिर की दीवार गीली करने लगे हैं. उसे अजीब-सा लगा. पुजारीजी को तो ऐसा नहीं करना चाहिए. मंदिर में महावीर भगवान विराजमान हैं और पुजारीजी मंदिर की दीवार अपवित्र कर रहे हैं. अगर महावीरजी को गुस्सा आ गया तो? सुना है उनका गुस्सा बड़ा भयानक होता है पुजारीजी को पटरवनी दे-देकर मार भी सकते हैं...'

लेकिन महावीरजी ने पुजारी को पटखनी नहीं दी. पुजारीजी निवृत्त होकर लौटने लगे तो चबूतरे पर बैठे उस पर उनकी नजर पड़ी. वहीं से पूछा, "कौन है रे?"

"मैं हौं मक्कू, पुजारीजी."

"पापी, तू इस समय यहां क्या कर रहा है?" पुजारीजी चप्पलें चटखाते उसके पास आ गये.

चबूतरे से उतर उसने दूर से ही उन्हें पांय लागी की.

"क्या कर रहा है रे यहां?"

"कुछ नहीं महाराज, नींद नहीं आ रही थी, सोचा चलकर भगवान के थान पर ही बैठूं."

"ठंड भी नहीं लग रही तुझे? पुराने पापियों को ठंड नहीं लगती न." पुजारीजी हंसे.

वह कुछ नहीं बोला.

"चल, कोठरी में चल. भोर होने में अधिक देर नहीं है. चाय बनाता हूं, तू भी पी."

पुजारीजी ने चाय बनायी, गुड़ की. पीकर उसे लगा, ठंड कुछ कम होने लगी है. चाये पीते हुए पुजारीजी का धार्मिक उपदेश शुरू हो गया था. वह चुप सुनता रहा. लेकिन चाय खत्म करते ही पुजारीजी उपदेश बीच में ही छोड़कर उठे और बोले, "तू बैठ, मैं अभी आता हूं निबटकर." वे लोटे में पानी भरने लगे.

चाय पीने से उसे भी दबाव महसूस होने लगा था. पुजारी के साथ वह भी उठ खड़ा हुआ, "भोर होई रही है महाराज, मैं भी चलता हूं." वह बोला.

पुजारीजी कुछ नहीं बोले. कोठरी की कुंडी चढ़ायी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

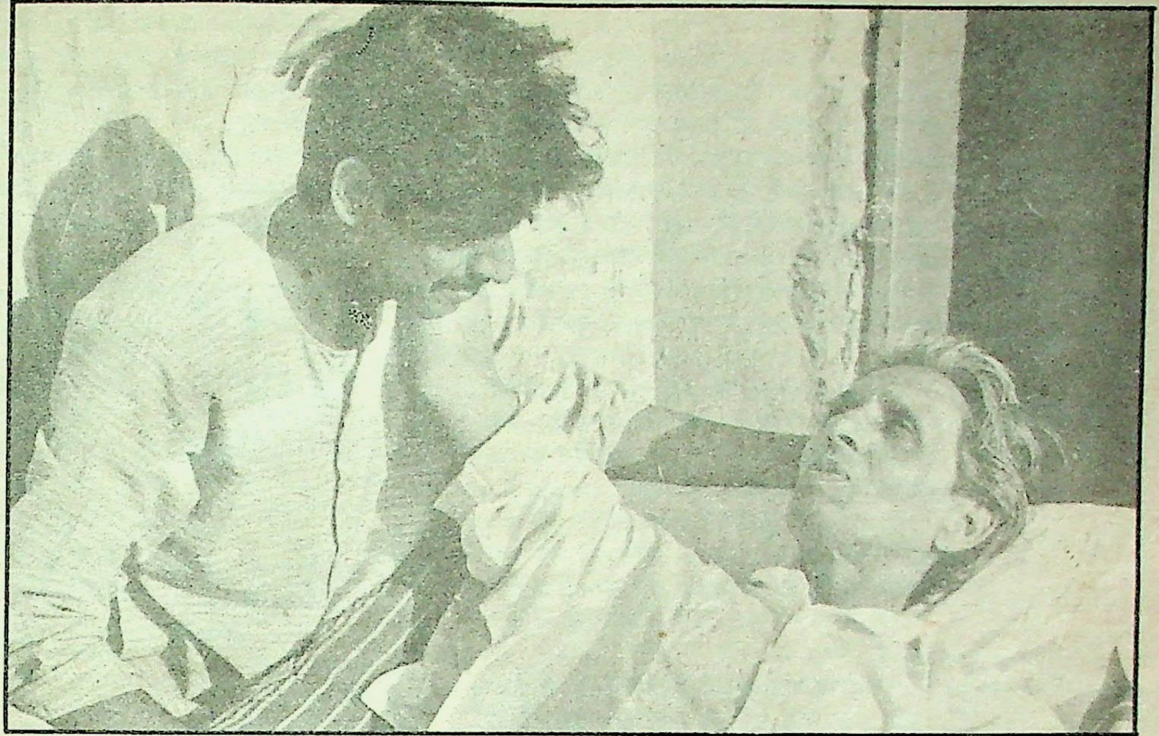

और लोटा थाम दौड़ पड़े. उसे हंसी आयी. अब उसका खुद का दबाव भी बढ़ रहा था. उसने भी चाल तेज कर दी और नहर की ओर बढ़ गया.

अभी हल्का-हल्का अंधेरा ही था जब मक्कू गोबर घूर में फेंक चुका था. बैलों और भैंसों को सानी कर चुका था. जगदीश सिंह के घेर में उन दिनों आठ जानवर थे. एक जोड़ी बैल, तीन भैंसें, दो पड़िया और एक पड़वा. केवल एक भैंस भरी.

जगदीश सिंह जब घेर में आये, तब वह भूरी को दोहने की तैयारी कर रहा था. पड़िया भूरी के थनों को चिचोड़ रही थी और भैंस सिर हिला-हिलाकर सानी में मुंह मार रही थी. उसने जगदीश सिंह को देखा और अंदर ही अंदर आशंकित हो उठा कि सुबह-सुबह आज वह उधर कैसे. कभी साल-छह महीने में एक बार जगदीश सिंह उतनी सुबह घेर में तभी आते हैं, जब कोई खास बात होती है. वह क्षण भर के लिए ठिठका, लेकिन तत्क्षण उसे याद आया कि उसे तुरंत पड़िया को खूंटे से बांध देना चाहिए नहीं तो वही सारा दूध पी जायेगी और बाल्टी में रोजाना से तनिक भी दूध कम निकला तो लंबरदारिन की भौंहें टेढ़ी हो जायेंगी

पड़िया बांधकर वह भैंस के नीचे बैठ गया और थनों में हाथ फेरने लगा. दूध उतर आया था उनमें. उसने बाल्टी टांगों में दाबी और छन-छन-छन दूध निकालने लगा. जगदीश सिंह आकर पास ही खड़े हो गये थे.

"जै राम जी की—मालिक." दूध निकालते हुए ही गर्दन टेढ़ी कर उनकी ओर देख वह बोला.

"राम राम..." जगदीश सिंह कुछ देर खड़े देखते रहे. उन्होंने काला ओवर कोट पहन रखा था और सिर पर लंबरदारिन के हाथ की बुनी रंग-बिरंगी ऊनी टोपी चढ़ा रखी थी. भैंस ने गर्दन घुमाकर उन्हें देखा और नथुनों से फुंकार छोड़ उन्हें मारने के लिए गर्दन बढ़ायी.

"भूरी, क्या बात है?" जगदीश सिंह आगे बढ़े भैंस की पीठ पर हाथ फेरने के लिए, लेकिन भैंस ने फिर भी उन्हें नहीं पहचाना. और गर्दन कुछ अधिक ही टेढ़ी कर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक जोर से फुंकारी. इस प्रक्रिया में उसकी एक टांग भी ऊपर उठ गयी. मक्कू गिरते-गिरते बचा.

"मालिक, आप बाहर चले जायें... भूरी बिगड़ गयी तो दुहना मुश्किल हो जायेगा."

"लगता है बदजात ने पहचाना नहीं." झुंझलाते जगदीश सिंह बाहर चले गये.

भैंस को शांत होने में कुछ समय लग गया. वह दूध फिर ऊपर चढ़ा ले गयी थी. काफी देर तक थनों को सहलाने के बाद उसने दूध उतारा, लेकिन फिर भी पूरी तरह से नहीं."

"आपके आवें ते भूरी बिचक गयी मालिक... पूरा दूध नहीं छोड़ि है." डरते-डरते मक्कू बोला.

"कसाइयों को पुजा दूंगा स्साली को! मेरे आने से बिचकती है!" नथुनों को फड़फड़ाते गुर्राये जगदीश सिंह, फिर कुछ रुककर बोले, "आज तू लौंडों के साथ नहीं रहेगा... बहेरवा हार का काम रह रहा है, न..."

"हां मालिक."

उसने जब से होश संभाला, अपने को जगदीश सिंह की सेवा में पाया. जब वह बहुत छोटा था, उसकी मां मर गयी थी आग में जलकर. सच तो यह था कि वह मरी नहीं, मार दी गयी थी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तो जाकर उसे पूरा करना... शंकर खुद ही दोस्तों को घुमा लायेगा."

"अच्छा मालिक." उसका भय कुछ कम हुआ. अभी तक तो वह यही सोचता रहा था कि शंकर बाबू ने जरूर उठते ही उसके बारे में उल्टे-सीधे लंबरदार के कान भरे होंगे तभी इतनी सुबह वह घेर में दौड़े आये. लाठी भी उनकें हाथ में थी. वह सोच रहा था, आज उसकी खैर नहीं. लेकिन अब वह सोचने लगा, शायद महावीरजी ने उसकी बिनती सुन ली है, तभी लंबरदार की मति मा ये बात आयी और वह दिन भर के लिए शंकर बाबू की नजरों से बचा रहेगा.

जगदीश सिंह चले गये. उसने कपड़े से बाल्टी ढकी और दूध लेकर घर की ओर चल पड़ा. उसे देखते ही लंबरदारिन बोलीं, "कब से दूध का इंतजार कर रही हूं... अब तेरी सुबह हुई?"

वह कुछ नहीं बोला. खड़ा रहा गर्दन झुकाकर और सोचता रहा, 'आज इन लोगों का सबेरा इतनी जल्दी कैसे हो गया? सूरज ने तो अभी ठीक से सिर भी नहीं निकाला. दूसरे दिनों से तो पहले ही वह आ गया है... फिर भी...'

"इस तरह क्यों खड़ा है? जाकर बबुआ और उसके दोस्तों को जगा. मैं चाय तैयार कर रही हूं."

उसे फिर अंदर कंपकंपाहट महसूस हुई. रात की चोट टीस उठी. उसने मना करना चाहा, वह नहीं जायेगा उनको जगाने, लेकिन कर नहीं सका. लंबरदारिन कूल्हे मटकाती रसोई में चली गयी तो वह भी शिथिल कदमों से बाहरवाले कमरे की ओर शंकर बाबू को जगाने चल पड़ा.

दरवाजा बंद था. वह कितनी ही देर दरवाजे के पास खड़ा रहा. सोचता रहा, कैसे आवाज दे. एक बार उसने दरवाजे पर कान लगाकर भी देखा, यह जानने के लिए कि वे लोग जाग रहे हैं या नहीं. उसे कुछ आभास नहीं मिला. वह सोचने लगा, हे भगवान, कोई उधर से गली में आ टपके तो उसी से कहकर उन्हें आवाज दिलवाए. लेकिन काफी देर खड़ा रहने के बाद भी कोई उधर से नहीं गुजरा. दरअसल वह कमरा मुख्य गली से दूर, एक कोलिया (संकरी गली) में था, जिससे प्रायः लोग कम ही आते जाते थे. उसमें दिन में भी अंधेरा-सा रहता था. उस समय तो वैसे भी गली में अंधेरा ही था. अभी तो सूरज की किरणें लंबरदार के घर के सामने वाले नीम के पेड़ की फुनगी पर आ बैठी थीं.

कितनी देर तू यों ही खड़ा रहेगा... लंबरदारिन का हुक्म तो बजाना ही पड़ेगा. उसने सोचा और धीरे से दरवाजे की कुंडी खटखटायी. अंदर से कोई आवाज नहीं आयी. उसने दोबारा कुछ जोर से कुंडी खटखटायी. फिर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई अंदर.

"शंकर बाबू... शंकर बाबू... मालकिन बुला रही हैं." दरवाजे पर थप-थप कर उसने आवाज दी. उसका गला खरखरा रहा था.

लेकिन अंदर कोई सुगबुगाहट नहीं हुई.

इस बार उसने दरवाजा पकड़कर भड़भड़ाना चाहा. सोचा कि ऐसा करने पर अधिक से अधिक फिर पिटना पड़ सकता है. लेकिन करे भी क्या वह.

दरवाजा पकड़ जैसे ही उसने भड़भड़ाना चाहा, दरवाजा खुल गया.

"यह तो खुला है... साइद बंद करना..." बुदबुदाते हुए उसने पूरी तरह दरवाजा खोल दिया और आवाज दी, "शंकर बाबू, मालकिन बुला रही हैं."

लघुकथा

चिड़ियां

□ रामस्वरूप दीक्षित

"तूने कितने बीन पाये?"

"दो रुपये बारह आने, और तूने?"

"बीने तो मैंने तीन रुपये हैं, पर अठन्नी की इसमें दुक्की-तिक्की हैं, जिनका चलन आजकल बंद हो गया है, इसलिए ढाई रुपया ही हाथ लगा."

"ये तेरी मुट्ठी में क्या है? जेब भी तनी है, क्या भरा है बताना जरा?

"जेब में मखाने और मुट्ठी में बतासे हैं. क्या तूने नहीं उठाये?"

"अरे कहां, मैं तो पैसे बीनने में ही लगा रहा. पूरे चार रुपये करना चाहता था पर पौने तीन ही हो पाये. तू यार बड़ा चालाक निकला, पैसे भी खूब पा गया और बतासे मखाने ऊपर से."

"कोई बात नहीं, चलो, वहां बैठकर बतासे और मखाने खायेंगे."

"वाह! मजा आ गया. मखाने तो बहुत मुलायम होते हैं रे?"

"और बतासे की मिठास भी तो देख?"

"मेरा बापू कह रहा था एक दिन कि रसगुल्ला बहुत मीठा होता है. पर वह झूठ है, बतासे से मीठा रसगुल्ला नहीं हो सकता."

"हां, बात तो सच है."

"कोई बड़ा सेठ

कोई उत्तर न मिलने पर उसने झांककर देखा, वहां चारपाइयां खाली थीं. वह अंदर चला गया. अंडे के छिलके फर्श पर पड़े थे और खाली बोतलें लुढ़की हुई थीं. आलमारी की ओर नजर डाली उसने. शंकर बाबू के मित्रों का सामान रखा था वहां. खूंटी पर दो पैंटें टंगी थीं और दो जोड़ी चप्पलें भी चारपाई के नीचे रखी थीं. वह समझ गया कि वे लोग दिसा-मैदान गये हैं. दरवाजा बंद कर उसने बाहर से कुंडी चढ़ा दी.

"लागत है, शंकर बाबू लोग जंगल गये मालकिन." लंबरदारिन के पास पहुंच वह बोला.

"यह सब तेरे देर से आने के कारण हुआ! हाय हाय, बेचारे बिना चाह पिये चले गये."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मैं तो... मैं तो... मालकिन..." शब्द उसके गले में ही फंस गये. उसे लंबरदारिन का यह दोषारोपण अत्यधिक घृणित लगा.

"चोप्प! तू नमक हराम है! जान-बूझकर देर से आया... भाग जा यहां से! मेरी आंखों के सामने से!" चीख उठी लंबरदारिन. उस क्षण उनकी बंटे जैसी बड़ी आंखें फैली हुई थीं और चेहरा सुर्ख हो रहा था.

उसने वहां रुकना उचित नहीं समझा. कहीं जगदीश सिंह आ गये तो... वे भी डरते हैं

साहूकार लगता है. भगवान करे बेचारा स्वर्ग जाये."

"अपन की भी यही हुआ है. मैंने तो पहली बार मखाने और बताशे खाये हैं."

"अच्छा, अब ये बता कि इन पैसों का तू क्या करेगा?"

"पहले तू बता फिर मैं बताऊंगा."

"मुझे तो चड्डी खरीदनी है. दो महीने से फटी चिथड़ी लटकाये हूं. बापू से कहता हूं तो मारता है, कहता है पैसे कहां से लाऊं? क्या डाका डालूं तेरे लिए? जो मजदूरी मिलती है उससे तेरा पेट तो भर रहा हूं."

"वाह दोस्त, क्या बात कही तूने, यही हाल तो अपना है. क्या तुझे मालूम था कि मैं यही कहने वाला हूं जो तू कह गया है?"

"अब जो तू समझे. पर यार ये तो बता, चड्डी दो-ढाई रुपये में तो आने से रही, कम से कम चार-चार रुपये की आवेगी. बाकी के पैसे कहां से लायेंगे?"

"ऐसा कर, पहले तू ले ले बाद में ऐसे ही कभी कोई और मरेगा तो मैं ले लूंगा."

"अरे नहीं यार, दोनों साथ ही लेंगे. जरा ठहर जा, वो जो कोने में मरोगा बाबू रहते हैं न, सुना है उनके पिता की तबीयत बहुत खराब है, शायद ही एक-दो दिन ठहरें. उनकी अर्थी के पैसे लूटकर ठप्पे से दोनों जन एक-सी चड्डियां खरीदेंगे." □

लंबरदारिन से... उनके आ जाने पर होने वाली स्थिति की कल्पना की उसने और चौपाल से फावड़ा ले बहेरवा हार के लिए तेज कदमों से चल पड़ा. पहले वह सोच रहा था कि चाय पीकर ही जायेगा... कुछ चबेना मिल जायेगा तो वह भी खा लेगा, लेकिन चाय-चबेना तो दूर, उसे लग रहा था कि अब शायद सारा दिन यों ही रहना पड़ेगा. यह कोई नयी बात न थी. पहले भी सैकड़ों बार ऐसा हो चुका है. अभ्यस्त हो चुका है वह, बिना खाये दिनभर खटने के लिए. जिस दिन भी लंबरदारिन गुस्से में होती हैं, उसके साथ यही होता है.

बहेरवा हार जाने का रास्ता मंदिर के पास से होकर गुजरता था. उसने दूर से ही देख लिया कि अपने दोनों मित्रों के साथ शंकर बाबू बाहर चबूतरे पर बैठे धूप सेंक रहे हैं. पास ही पुजारी भी बैठा है और सभी की उंगलियों में सिगरेट है.

सिगरेट का धुआं चकरिया की तरह मुंह बनाकर ऊपर की ओर छोड़ते हुए शंकर बाबू कुछ कह रहे हैं और दो उंगलियों के बीच सिगरेट दबाए होंठों में लगाते हुए पुजारी जोर-जोर से सिर हिला रहा है. शंकर बाबू के दोनों मित्र सिगरेट की राख झाड़ खिलखिला रहे हैं. उसका दिल धक-धक करने लगा.

"हे महावीर जी, शंकर बाबू लोगन की नजर न पड़े मुझ पर." मन ही मन सोचते हुए उसने कदम और तेज कर दिये. लेकिन कनखियों से इधर देखने की इच्छा को भी वह रोक नहीं पाया.

शंकर बाबू का एक मित्र उसकी ओर इशारा कर शंकर बाबू से कुछ कह रहा था. उसके दिल की धुक-धुकी और तेज हो गयी, लेकिन किसी ने कुछ नहीं कहा. वह निर्विघ्न वहां से गुजर गया.

"तुम सचमुच दयालु हो भगवान." उसने श्रद्धापूर्वक पीछे मुड़कर मंदिर की ओर देखा और आराम से चलने लगा.

सांझ ढलने के बाद वह लौटा. दिन भर बिना खाये काम करते रहने से पेट और सिर में दर्द हो रहा था. लेकिन घर पर पहुंचते ही पता चला कि लंबरदारिन दूध की बाल्टी लिये वहां पहले से ही मौजूद है. वह कुछ देर आराम करना चाहता था, लेकिन मन मारकर भूरी को दोहने बैठ गया.

दूध की बाल्टी लंबरदारिन को थमा वह कोठरी की ओर बढ़ने लगा कि लंबरदारिन की आवाज सुनाई पड़ी, "बैलन के लिए कटिया (कुट्टी) नहीं है मक्कू... हरियारी और कर्बी मशीन के पास पड़ी है."

उसे क्रोध तो बहुत आया. मन हुआ कि कहे, 'लंबरदारिन, बैलन की तो इतनी चिंता है आपको... और मैं जो दिन भर से...' लेकिन मन के उबाल को बाहर न निकलने दिया उसने. जाती हुई लंबरदारिन से धीरे से बोला, "अच्छा मालकिन."

लंबरदारिन के जाने के बाद वह दुविधा में पड़ा रहा कुछ क्षण कि कुछ देर आराम कर ले फिर कटिया काटे या लगकर पहले कटिया काट ले और तब निश्चिंत होकर आराम करे. खाना तो दस बजे से पहले नसीब होने से रहा. तभी उसे याद आया कि कुछ दिन पहले सावित्तरी की अम्मां ने थोड़े से भुने चने दिये थे उसे... रहे होंगे कोई पाव भर. भुने चने उसे बहुत पसंद हैं न.

कुछ देर आराम करके ही कटिया काटूंगा. अकेले ही दो बोझ काटना पड़ेगा. आराम भी कर लूंगा और थोड़े चने भी पेट में डाल लूंगा.

वह कोठरी में जाकर चिराग जला चनों की पोटली ढूंढने लगा. उस छोटी-सी कोठरी में थोड़ा-सा सामान था उसका. एक टीन का संदूक जो बापू ने कभी खरीदा था, जिसमें उसके फटे पुराने कपड़े रखे रहते

पुस्तकालय 08०5७६ गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, खटोली, दरी और पिल्लही रजाई. एक लुंगी, फटी बंडी, कुर्ता और उस पर कतिका (कार्तिक पूर्णिमा) के मेले से खरीदी गयी पुरानी जर्सी उसके शरीर पर थे... बस इतनी ही चीजों का धनी था वह.

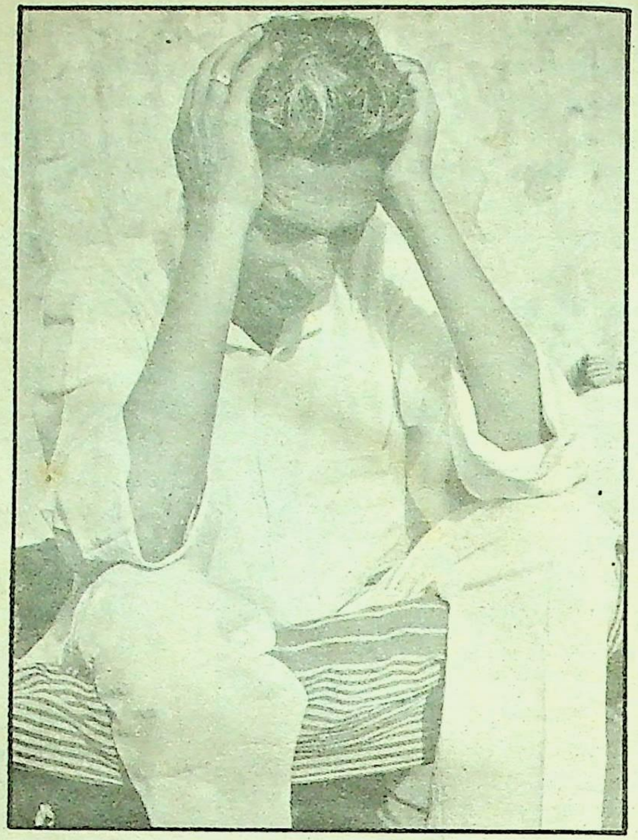

उसने चनों की पोटली आले में रखी थी. लेकिन उसे आश्चर्य हो रहा था कि पोटली वहां नहीं थी. 'कहां गयी पोटली? रखी तो आले में ही थी.' वह सोचने लगा. उसने खटोली के नीचे, दरवाजे की ओट में और दरी झाड़कर देखा... लेकिन पोटली गायब थी. तभी उसकी नजर एक कोने में इकट्ठा मिट्टी के ढेर पर पड़ी. ढेर के पास दीवार में बिल भी था. उसने देखा, कुछ चने मिट्टी के ढेर पर बिखरे हैं. स्पष्ट था कि चूहे पोटली बिल के अंदर खींच ले गये हैं. उसने मिट्टी के ढेर पर पैर पटका और कोठरी से बाहर निकल आया चिराग लिये. सोच लिया कि अब वह आराम भी नहीं करेगा.

वह आधा से अधिक बोझ काट चुका था. स्वयं हरियारी मिलाकर कर्बी का मूठा मशीन में ठूंसता और फिर मशीन चलाने लगता. खच्च... खच्च... कटिया का ढेर इकट्ठा होता जाता. पेट में दर्द होता तो वह थोड़ी देर के लिए खड़ा हो जाता.

ताजा मूठा लगाकर उसने अभी मशीन का डंडा

पकड़ा ही था कि सावित्तरी की अम्मां, कनकिया दौड़ती हुई आयी.

"मक्कू, बेटा मक्कू..." उसके स्वर में घबड़ाहट थी और वह हांफ रही थी.

"का अम्मां... का बात है?"

"बेटा, सावित्तरी... हाय मेरी बिटिया!" माथे पर दोनों हाथ रख वह बैठ गयी और बिलखने लगी.

"का हुआ सावित्तरी को...?" मक्कू घबड़ा उठा.

"बेटा, वो-वो... अभ्भी तलक...बेटा, मैं तो..."

"बोल अम्मा, बोल का हुआ हमारी सावित्तरी को?" उत्तेजित हो उसने कनकिया को झकझोरा.

"बेटा, वो अभ्भी तलक नहीं लौटी."

"कहां गयी थी?" उसे लगा घबड़ाहट के कारण उसकी आवाज भी कांप रही है.

"सांझ को बहिरे (दिशा-मैदान)... बेटा... पता नहीं साउज खा गा या धरती लील-गै मेरी बिटिया को! हाय, मैं तो कहीं की न रही बेटा... हाय सावित्तरी... तू कहां गयी?" कनकिया फिर विलाप करने लगी.

"अम्मा, तू मेरी मान, चुप हो जा... मैं देखत हौं सावित्तरी को."

"आस-पास के खेतन मा-औ धोबिन गड़ैया के पास तलक तो मैं देख आयी बेटा... पन... पता नहीं... हाय सावित्तरी..." वह फिर बिलख उठी.

"अम्मा, तू चुप रह... रो मत, नहीं त गांव इकट्ठा हुई जाई... तू घर चल, साइद सावित्तरी लौट आयी हो अब तक. पर तू रोना मत, थोड़ा धीरज रख. जब तक मैं पता न लगा लूं..."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनकिया चुप हो गयी. मक्कू ने काम छोड़ दिया. लाठी उठायी और निकल आया घेर से बाहर. सोच लिया, जो भी होगा देखा जायेगा... अधिक से अधिक मारेंगे ही न जगदीश सिंह. कल शंकर बाबू की मार सही थी, आज उनकी भी सह लूंगा. लेकिन सावित्तरी को ढूंढना जरूरी है. अगर उसे कहीं कुछ..., नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता! हो सकता है उसे चक्कर आ गया हो और कहीं बेहोश पड़ी हो. दो दो दिन हो जाते हैं कभी-कभी इन लोगों के पेट में अन्न नहीं जाता. कमजोर तो है ही वह... अब चाहे जो भी हो जाये, फसल कटते ही वह उससे शादी कर लेगा और अम्मा के साथ ही रहने लगेगा, उसका भी सहारा बनकर.

उसने चाल तेज कर दी. कनकिया उसके साथ घिसटने लगी. रास्ते में दो-तीन लोग मिले और उन दोनों को इस तरह जाते देख खड़े होकर देखने लगे, लेकिन वह कुछ बोले बिना निकल गया. वे झोपड़ी में पहुंचे, लेकिन सावित्तरी नहीं लौटी थी.

"हाय मक्कू...!" झोपड़ी खाली पा कनकिया फिर चीखने को हुई लेकिन उसने उसके मुंह पर हाथ रख दिया, "अम्मा, ई समय चीखने-चिल्लाने का नहीं है... महल्ला इकट्ठा करने का नहीं... किसको का जवाब देगी तू? हजार मुंह, हजार बातें होंगी. तू चुप बैठ घर मा. मैं पता करता हूं."

कनकिया कुछ कहे, इससे पहले ही कंधे पर लाठी रख वह सरपट दौड़ पड़ा.

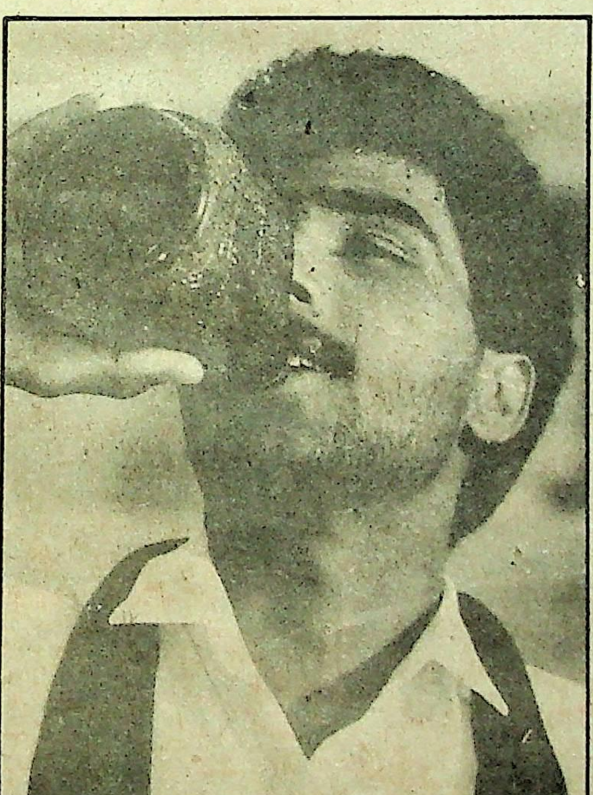

गांव के पास के एक-एक खेत उसने छान डाले. नहर से निकलनेवाली नाली के किनारे एक-एक झाड़ी के अंदर लाठी से टोह लेता वह नहर तक चला गया. नहर की पटरी पर खड़ा होकर वह सोचने लगा कि अब उसे किधर जाना चाहिए. रात का अंधेरा इतना गहरा था कि नहर में बहकर जाती लकड़ी सांप-सी दिख रही थी—काली. हवा चलने लगी थी और ठंड बढ़ गयी थी. जर्सी के बावजूद ठंड उसकी पसलियों में चुभ रही थी. लेकिन इस ओर उसका ध्यान नहीं था.. इस समय व्याकुलता थी उसके अंदर सावित्तरी को लेकर.

का हुआ सावित्तरी को... का सच में साउज.... लेकिन सालों से साउज कहीं आसपास जंगल में नहीं दिखा. हो सकता है आज आ ही गया हो—उसने सोचा—और यह भी तो हो सकता है, सावित्तरी किसी के साथ कहीं... उसके साथ शादी का वो नाटक ही करती रही हो. लेकिन किसके साथ? ऐसा तो कोई है नहीं उसके महल्ले में... यह जरूरी तो नहीं है कि गांव और महल्ले का ही कोई हो, आन गांव... भीखमपुर का भी तो हो सकता है कोई. खेत-पतार आते जाते नजरें मिल गयी हों किसी खाते-पीते बाप से बेटे से... पानी में कुछ गिरा छप से तो वह चौंका.

का ऊल जलूल वह सोचने लगा था सावित्तरी के बारे में. सावित्तरी ऐसा कभी नहीं कर सकती, चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये. वह तो केवल उसी की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है–दिल में गुदगुदी-सी हुई क्षणांश के लिए, फिर सावित्तरी की चिंता ने उसे आ घेरा. दूर इमलिहा बाबा की ओर सियार हुआ उठे तो वह धीरे-धीरे उधर ही चल पड़ा. इमलिहा बाबा का भय भी धीरे-धीरे उसके अंदर उभरने लगा था. इमलिहा बाबा को गांव में किसी ने देखा भी था, उसे संदेह है. लेकिन जिससे भी उसकी बात हुई, उसी ने देखने का दावा किया. कुछ को इमलिहा बाबा इमली के उस विशाल पेड़ के नीचे सफेद झक कपड़ों में टहलते दिखे रात में और कुछ को बुलाकर बाबा ने बातें भी की थीं. इमलिहा बाबा किसका भूत है, कोई नहीं जानता. इमली के पड़े के नीचे ही वे सबको दिखते रहे हैं, इसलिए उनका नाम इमलिहा बाबा पड़ गया.

जो कुछ होगा–देखा जायेगा–मक्कू ने सोचा और चाल कुछ तेज कर दी. रास्ते में पड़ने वाली झाड़ियों में लाठी से टोह लेता जा रहा था वह. एक झाड़ी में लाठी लगते ही कोई जानवर सर्र से निकल भागा. उसने अनुमान लगाया खरगोश या वनबिलाव होगा.

वह इमलिहा बाबा के पास तक पहुंच गया. एक खेत की मेड़ पर कुछ सियार बैठे थे. उसे देख वे भाग खड़े हुए. उसने इधर उधर देखा, कहीं कुछ नजर नहीं आया. सोच रहा था कि अगर सावित्तरी को भेड़िया या कोई दूसरा साउज ले गया होता तो खाने के लिए अधिक से अधिक इतनी दूर लाता... तब कुछ तो मिलना चाहिए था उसे, उसका अवशेष. इससे उसकी घबड़ाहट और बढ़ गयी. आशंकाओं के नाग फन उठाने लगे. वह इमली के पेड़ के नीचे तक गया मन में इमलिहा बाबा का नाम जपते हुए. सुना था, भूत प्रेत सर्वव्यापी होते हैं. अगर बाबा के दर्शन उसे हो गये तो वह उनसे कुछ पूछ सकेगा सावित्तरी के बारे में. लेकिन उसे निराशा हाथ लगी. कुछ देर वह पेड़ के नीचे रुका भी. लेकिन कहीं कुछ नहीं था. वह लौट पड़ा. लौटते समय उसे लग रहा था कि उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं और दिल बैठा जा रहा है.

उसे भी अब कहीं चला जाना होगा. जहां सावित्तरी नहीं, वहां रहकर वह क्या करेगा! उसने सोचा, 'लेकिन सावित्तरी की अम्मा... हो सकता है वह सावित्तरी को इधर ढूंढता रहा है... उधर सावित्तरी घर पहुंच गयी हो. जरूर वह कहीं चक्कर खाकर बेहोश हो गयी होगी और कहीं ऐसी जगह पड़ी रही होगी, जिधर वह नहीं गया.'

लेकिन फिर भी मंदिर की ओर तो वह गया ही नहीं. और वह मंदिर की ओर चल पड़ा. चारों ओर सांय-सांय हो रही थी और किसी पेड़ के नीचे से निकलने पर सूखे पत्ते चरर-मरर करने लगते थे. रात लगभग आधी होने को थी और चांद झांकने लगा था.

मंदिर से कुछ दूरी पर आमों का एक बाग था दर्शन सुकुल का. बाग मंझाकर वह सीधे सड़क पर पहुंचना चाह रहा था. बाग की झाड़ियां अंधेरे में दैत्यों की भांति दिखाई दे रही थीं. सूखे पत्तों की चरमराहट से किसी पेड़ पर के चमगादड़ चीखकर

पापी

'छायाकार
पवन महेंद्रू

मॉडल
मक्कू :
राजेश शर्मा
शंकर बाबू :
प्रदीप कुमार
बापू :
राजेंद्र शर्मा
लंबरदार जगदीश
अनिल कुमार
सावित्री :
अनीता कुमारी
लंबदारनी :
रेणु कुमारी
सावित्री की माँ :
सुरेंद्र शर्मा

पर फड़फड़ाते उड़े तो वह डर गया. एक क्षण के लिए वह रुक भी गया. तभी उसे एक पेड़ के पास किसी साये के हिलने-डुलने का आभास हुआ. वह उस पेड़ की ओर बढ़ा, दिल कड़ा कर. पेड़ की एक डाल धनुषाकार नीचे झुककर जमीन छूती ऊपर चली गयी थी. साया उससे हटकर तने के पीछे चला गया था. चांद के ऊपर आ जाने से उसे कुछ-कुछ समझ में आ रहा था.

पेड़ के निकट पहुंचा तो साया दूसरे पेड़ की ओर खिसकता नजर आया.

''सावित्तरी!'' धीरे से वह बोला.

साया ठिठक गया.

वह साये के निकट पहुंचा. वह सावित्तरी ही थी.

''तुम कहां थी सावित्तरी?'' वह पागलों की तरह चीख उठा. लाठी एक ओर फेंक वह उसे पकड़ने के लिए लपका.

''मुझे मत छूना मक्कू, मत छूना...!'' मुंह ढांप सावित्तरी बिलख उठी.

''का हुआ, तू यहां क्या कर रही है पगली?'' ठिठककर उसने पूछा. उसके स्वर में उत्तेजना थी. मन चाह रहा था कि सावित्तरी को हृदय में छुपा ले.

''मुझे छूना नहीं, मैं तेरे लायक नहीं रही... नहीं नहीं...''

उसने देखा, सावित्तरी के शरीर पर चिथड़े मात्र शेष थे. सावित्तरी सिकुड़ी-सिमटी उसके सामने खड़ी रो रही थी.

वह अपने को रोक नहीं सका. चेहरे से सावित्तरी के हाथ हटा उसने दृढ़ता से पूछा, ''मुझे सब कुछ बता सावित्तरी... तुझे मेरी कसम!''

''दरिंदों ने तेरी अमानत लूट ली मक्कू... अब मैं तेरे लायक... मुझे छोड़ दे तू... मैं... मैं...!'' सावित्तरी सिसकियां लेती बोली.

''सावित्तरी, तू अइसा मत सोच, तू अइसा मत सोच सावित्तरी! बस मुझे बता दे तू, कौन हैं वे दरिंदे...?''

सावित्तरी रोती रही.

''सावित्तरी, तुझे मेरी सौं... साफ-साफ बता...''

सावित्तरी अटक-अटककर बोली, ''बहिरै से लौट रही थी कि शंकर बाबू अउर दुई अवर जनों ने मुझे पकड़ लिया. पता नहीं का सुंघाया कि मैं बेहोश हो गयी. होश आया तो देखा, उन तीनों के अलावा मंदिर का पुजारी भी है. समझ में आया कि पुजारी की मोठरी में हूं... वो सब शराब पी रहे थे... और उसके बाद... उसके बाद मैं का बताऊं मक्कू...'' वह फिर बिलखने लगी, ''...और होश आया तो देखा, सब लुढ़के पड़े हैं नशे में धुत. मैं उठकर भाग आयी. अब...'' सावित्तरी फिर रोने लगी.

''तू चुप हो जा सावित्तरी!'' हांफते स्वर में वह बोला, ''थोड़ी देर और तू यहीं बैठ... कहीं मत जाना, तुझे मेरी कसम... मैं अभी आया लौटकर...'' उसने लाठी संभालकर कंधे पर रखी और दौड़ पड़ा मंदिर की ओर.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

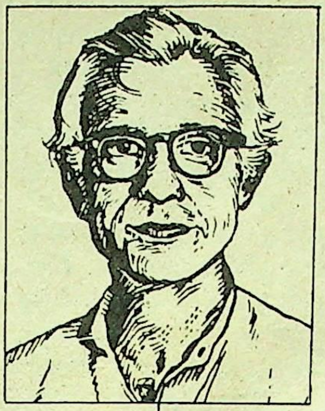

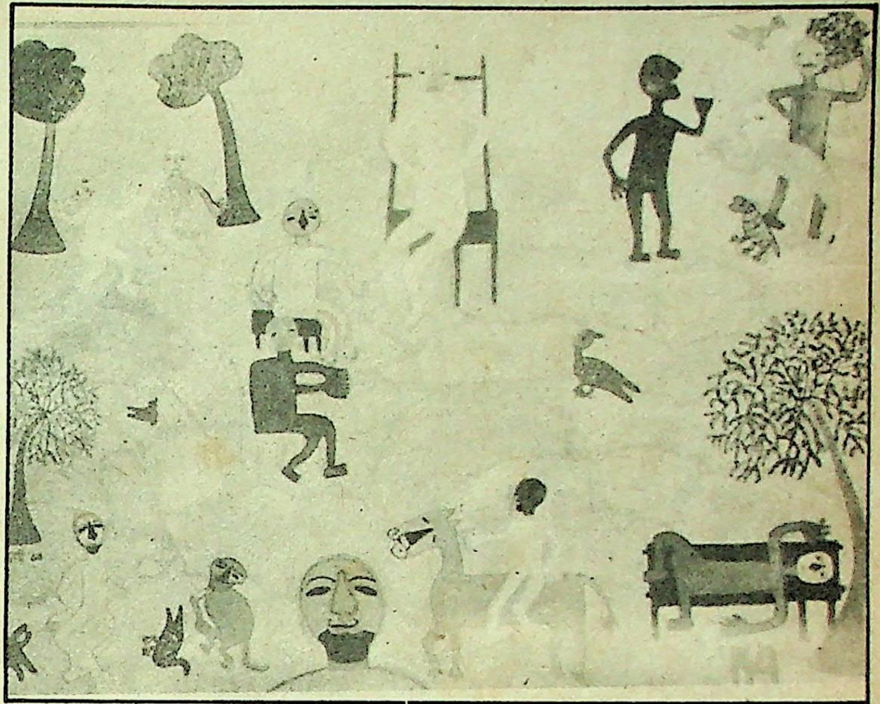

माधवी पारेख की कलाकृति

डाले नहीं हाशिये

बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.
समय के झकोरों में
खुले-खिले—
सुबह-शाम आये.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

आंखों में रसे-बसे
कानों में गुंजारित,
हृदय में समाये—
कागज में उतरे.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

जीवन जो जिया—
लिया-दिया, पूरा किया
कविता की सीमा में
डाले नहीं हाशिये.

प्रीति मिली प्राणों को
जन की प्रतीति मिली,
आतुर मुस्कानों में
जीवन की जीत मिली.
बीते दिन—
रीते नहीं, काम आये.

□ शील

जन्म: 14 अगस्त, 1914. कानपुर के पाली भोगीपुर नामक गांव में.
प्रमुख कृतियां: 'चर्खाशाला', 'अंगड़ाई', 'एक पग', 'उदय पथ', 'लावा और फूल' व 'कर्मवाची शब्द हैं ये' (काव्य). 'तीन दिन तीन घर', 'किसान', 'हवा का रुख', 'नदी और आदमी', 'रिहर्सल' (नाटक) तथा 'अर्थपिशाच' व 'चांद से गांव तक' (कहानी संग्रह).

कवि-कथाकार शील लंबे समय तक पृथ्वी थियेटर्स व 'इप्टा' से जुड़े रहे. आजकल वे एक उपन्यास पर काम कर रहे हैं. शील जी की चुनी हुई रचनाएं भी एक साथ प्रकाशित हो रही हैं.

यह कविता 22 फरवरी, 1990 को लिखी गयी.
संपर्क : 128/299, के. ब्लॉक, किदवई नगर, कानपुर, (उ.प्र.)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरदार

सब कुछ लुट गया था ... उसे बैठे-बैठे खयाल आया, इस तरह के हालात में तो कुछ भी हो सकता है. चाहे उन्हें घर छोड़कर भाग जाना पड़े ... कैसे हैं यह हालात कि आदमी पल-पल आतंक के साये में जीने को मजबूर है ...

□ कर्तार सिंह दुग्गल

जन्म : 1 मार्च, 1917
प्रमुख कृतियां: 'इक छिट्ट चानण दी' (कहानी संग्रह), 'कम बैक माई मास्टर' व 'विश्व की महानतम कहानियां' में संकलित.
पुरस्कार: अकादमी पुरस्कार (1965), 'गालिब पुरस्कार' (1976), 'सोवियत लैंड पुरस्कार' (1982)
संप्रति: स्वतंत्र लेखन.
संपर्क: बी-7, होजखास एनक्लेव, नई दिल्ली- 110016

उस दिन वह बहुत रोया था. उस दिन जब 'ऑपरेशन ब्लू-स्टार' हुआ था. समाचार पत्र की ओर देखता और उसकी आंखों से आंसुओं की झड़ी फूट पड़ती. उसकी पत्नी कभी उसके पलंग पर आकर बैठ जाती, बेबस उसकी ओर देखती रहती, मुंह से कुछ न बोलती, फिर उठकर बाहर आंगन में टहलने लगती. अकेले पति-पत्नी, उनकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. एक ही बेटा था जो शिमला में मेडिकल कालेज में पढ़ता था. बेटी ब्याही जा चुकी थी और अपने घर को बसा रही थी.

धत् यह परिवार नियोजन! सरदारनी सर्दूल सिंह बड़बड़ाती, "अगर दो-चार बच्चे और होते तो कोई न कोई तो हमारे साथ रहता, हमारी देखभाल करता." कमरे के भीतर पति की पलकें सूखने में नहीं आ रही थीं और बाहर पत्नी परेशान थी. उनकी सैर का समय हो रहा था. हर रोज पति-पत्नी सैर के लिये जाते थे.

हर रोज वे पार्क के चार चक्कर लगाया करते थे. कॉलोनी के बाकी लोग हमेशा उनका मजाक उड़ाते, "क्यों सरदारजी, आपके "लावां-फेरे" हो गये?" न तीन, न पांच, हमेशा, वे चार चक्कर ही लगाते और फिर घर की ओर चल देत थे. इस कॉलोनी में सरदारों के घर गिनती के ही थे.

उस दिन वे घर से बाहर निकले ही थे, सडक का पहला मोड़ काटकर, अगली सड़क पर अभी पांव रखा ही था कि सामने कोठी की छत पर खड़े कुछ बच्चे उन्हें देख कर गाने लगे "सरदारजी के बज गये बारह! सरदारजी के बज़ गये बारह!"

सरदार सर्दूल सिंह ने सुना और उनके कदम जैसे वहीं के वहीं ठिठक कर रह गये. वह कोठी किसी सेवानिवृत्त फौजी जनरल की थी. लेकिन उस कालोनी में सरदार सर्दूल सिंह को कौन नहीं जानता था? इस तरह की बेहूदगी करने की पहले कभी किसी को हिम्मत नहीं हुई थी. आज ही क्यों इन बच्चों ने कोठी की छत पर से यूं आवाजें कसीं! क्षण भर के लिये पति-पत्नी स्तब्ध से रह गये. ओर फिर उन्होंने छत के बच्चों की ओर देखा. वैसे के वैसे बेझिझक, निडर खड़े गा रहे थे. "सरदारजी के बज गये बारह! सरदारजी के बज गये बारह!" फिर सहसा वे हंसने लगे.

सरदार सर्दूल सिंह दांत भींचकर रह गये. और फिर उन्हीं कदमों से वे वापस लौट पड़े. खामोश! न उन्होंने सरदारनी से कोई बात की, न ही उनकी पत्नी ने बच्चों की बदतमीजी के बारे में कुछ कहा.

रास्ते में सरदार सर्दूल सिंह को बार-बार यह विचार आता, संभव है कि हम घर लौटें और उधर हमारी कोठी पर कोई कब्जा जमाये बैठा हो. या फिर सड़क पर से किसी ने बम फेंककर उसको तहस-नहस कर दिया हो. यह भी हो सकता है कि गेट फलांगकर यार लोग अंदर घुस गये हों और घर को लूटकर उसे आग लगा दी हो. आग तो बुझानी होगी और सर्दूल सिंह के कदम तेज हो गये, और तेज, फिर वह जैसे दौडने लगा हो.

"यह आप को हो क्या रहा है?" सरदारनी ने अपने घरवाले को पुकारकर पूछा. वह तो पीछे छूट गयी थी.

और सरदार सर्दूल सिंह को अचानक ध्यान आया कि वह यह क्या कर रहा था! सामने उसकी कोठी थी, वैसी की वैसी, जैसी उसे छोड़कर वे गये थे. एक ताला बाहर गेट पर, दूसरा ताला अंदर ड्योढ़ी के दरवाजे पर बाकी सब कमरे भीतर से बंद थे. घर से निकलने से पहले उसने एक-एक चटखनी को आपने आप देखा था.

तो भी उसका दिल धक्-धक् कर रहा था. "हमला करेंगे. बम फेंकेंगे, आग लगायेंगे, तड़-तड़ गोलियों से भूनकर रख देंगे." सरदार सर्दूल सिंह मुंह ही मुंह में बड़बड़ा रहा था, "गुरु के घर तक को तो उन्होंने माफ नहीं किया था."

सरदारनी सुन रही थी, लेकिन खामोश थी. घर पहुंचकर उसने बाहर के गेट का ताला खोला. अंदर घुसकर, उसने तरंत गेट को फिर ताला लगा दिया. यूंही, ड्योढ़ी का ताला खोला, अंदर कदम रखते ही चटखनी चढ़ा दी.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"किसी समय भी आ सकते हैं," सरदार सर्दूल सिंह ने कहा.

"कौन?" सरदारनी ने झुंझलाकर पूछा.

"तेरा मतलब है नहीं आयेंगे? .... तो फिर नहीं आयेंगे?" सरदार सर्दूल सिंह जैसे यह मानने के लिये कोई बहाना ढूंढ रहा हो कि उनके घर पर हमला नहीं होगा. और वह फिर अखबार लेकर घर के एक कोने में बैठ गया. पता नहीं, कहां से उसने अखबार ढूंढ लिया था.

"आपको यह कमबख्त अखबार फिर कहां से मिल गयी?" सरदारनी ने परेशान होकर पूछा.

उसने सुनी-अनसुनी कर दी. फिर एक-एक पंक्ति पढ़ रहा था. अखबार पढ़ते हुये टप-टप उसके आंसू गिर रहे थे. पत्नी कितनी देर इंतजार करती रही. इस तरह कब वह नाश्ता करेगा? कब वह तैयार होगा? आखिर हारकर उसने, उसके एक मित्र को टेलीफोन किया.

"मैंने कहा, इन्हें आकर समझायें. यह तो सुबह से अखबार पढ़-पढ़कर रो रहे हैं" उसकी आवाज चिंता से डूबी थी

"आप यह क्यों नहीं समझते कि हरिमंदिर आतंकवादियों का गढ़ बन गया था." उसकी पत्नी उसे याद दिला रही थी.

सरदार सर्दूल सिंह जैसे सुन ही न रहा हो.

"तौबा! तौबा! कैसे कैसे हथियार बरामद हुए हैं. छोटी-बड़ी मशीनगनें तक मिली हैं. और फिर ट्रांसमीटर..., हथगोले बनाने की अंदर फैक्टरी लगी थी."

मैं पूछता हूं, यह कैसी सरकार है, जिसे इस सब कुछ का इल्म ही नहीं था! सरदार सर्दूल सिंह झुंझलाकर बोला.

"इल्म था, तभी तो सरकार को फौजी कार्यवाही करनी पड़ी." सरदारनी अपने पत्नी को समझ रही थी.

"तो फिर आखरी दम तक यह क्यों कहा जा रहा था कि फौज हरिमंदिर साहब में दाखिल नहीं होगी. झूठ, यह सरकार झूठी है."

"प्रधानमंत्री कहती थी—हम कानूनी तौर पर हरिमंदिर साहब के भीतर घुस सकते हैं ...."

"लेकिन घुसेंगे नहीं." सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी के वाक्य को पूरा किया. उसकी आवाज आंसुओं से भीगी हुई थी.

और सरदारनी खामोश हो गयी. इस इल्जाम का उसके पास कोई जवाब नहीं था.

सरदार सर्दूल सिंह को याद आ रहा था कि अकालतख्त पर उन्होंने 'अमृत छका' था. इससे पहले कि हरिमंदिर साहब के परिक्रमा के एक बुंगे में उनकी शादी के फेरे हुए थे और वे पति-पत्नी बने थे. हरिमंदिर की दहलीज पर माथा रगड़कर उसने गुरु महाराज से एक बेटा लिया था. पहले उनके यहां एक बेटी थी. जब कभी भी उस पर कोई मुसीबत आती, वह हरिमंदिर साहब हाजिर हुआ करता था. अकालतख्त के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करता था, प्रसाद चढ़ाता था. और ऐसा कभी नहीं हुआ कि उसकी मनोकामना पूरी न हुई हो. वह अकालतख्त अब धराशायी कर दिया गया था.

रेडियो, टीवी और समाचार पत्रों में प्रतिदिन हरिमंदिर के प्रांगण में से प्राप्त हुए हथियार, गोला बारूद, गहने, नोटों से भरे हुये ट्रंक हीरे और मोती, तथा स्त्रियां जिनका कहना था कि उन्हें दासता बनाकर रखा गया था .... यह सब कुछ ब्रॉडकास्ट किया जा रहा था, छापा जा रहा था.

सरदार सर्दूल सिंह यह सब कुछ देखते, सुनते पढ़ते और बार-बार अपनी पत्नी से कहते, "यह सब झूठ है. यह सब हथियार सरकार ने आप अंदर रखवाये होंगे. इतना बड़ा ट्रांसमीटर बिना सरकार की जानकारी के अंदर कैसे जा सकता है! राशन तक के ट्रकों की तलाशी ली जाती थी. यह सब कुछ सरकार खुद करवाती रही है. सिखों को बदनाम करने के लिये. और अगर सचमुच सरकार को इस सबका पता नहीं चला तो इसे इस्तीफा दे देना चाहिये. ऐसी सरकार को कोई हक नहीं कि वह राज करे.

पड़ोस में राय साहब की बेटी ने अपना रेडियो ऊंचा लगाया हुआ था.

कोई लोकगीत के ये बोल गा रहा था:

"कि दरवाजे की कुंडी भीतर से किसने लगायी है
मेरा प्रियतम रूठ गया है, मैं उसे मनाने आयी हूं."

"यह इतना ऊंचा रेडियो क्यों बजाती है?" सरदार सर्दूल सिंह ने जैसे खीझकर कहा.

"जवान-जहान लड़की है. जैसा उसका जी चाहे, रेडियो सुने!" सरदारनी उसे समझा रही थी.

"यूं करेगी तो मैं उसका अपने बेटे से मिलना-जुलना बंद कर दूंगा."

"यह आज आप किस तरह की बातें कर रहे हैं?"

राय साहब की बेटी रचना उनके बेटे के साथ एक ही कक्षा में पढ़ती थी, बेटा, डॉक्टरी की पढ़ाई करने शिमला चला गया; रचना, लेडी श्रीराम कालेज में अंग्रेजी में ऑनर्स कर रही थी.

अचानक रेडियो बंद हो गया. शायद रचना का कालेज जाने का समय हो गया था.

"बात हुई न!" सरदार सर्दूल सिंह ने पड़ोस में रेडियो बंद होने पर, खुश होकर कहा, "लड़के-लड़कियों को बुजुर्गों का कहना मानना चाहिये. लड़की आज्ञाकारिणी है."

"आज्ञाकारिणी होगी तो सुख पायेगी." सरदारनी ने धीरे-से कहा.

सरदार सर्दूल सिंह फिर भावुक होने लगा, "हाय रब्बा! अकालतख्त पर टैंकों से गोलीबारी की गयी. जिस अकालतख्त से हुक्मनामा जारी किया जाता है, और सारे पंथ को उसकी पैरवी करनी होती है. और अब ..."

"जत्थेदार कृपाल सिंह ने बयान दिया है कि कोठा साहब को कोई आंच नहीं आयी." सरदारनी बीच में बोली.

"झूठ बकता है." सरदार सर्दूल सिंह गरज उठा. फिर थोड़ी देर बाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शांत होकर अपने आप से कहने लगा, "झूठ तो उसे बोलना था, जिसके दाये-बायें बंदूकधारी खड़े हों, उससे चाहे कुछ कहलवा लो."

इतने में उनका फोन बजने लगा. खबर आयी कि दरबार साहब की लायब्रेरी और अजायबघर को भी तहस-नहस कर दिया गया था. और वह भी तब जब आतंकवादियों ने हथियार डाल दिये थे. सफेद झंडी दिखाकर, विद्रोह बंद कर दिया था. सिख इतिहास की अनमोल पांडुलिपियां नष्ट कर दी गयी थीं. और फिर यह भी सच नहीं था कि स्वर्ण मंदिर की ओर एक गोली भी नहीं चलायी गयी थी ...."

उधर टेलीफोन पर कोई बोलता जा रहा था. सरदार सर्दूल सिंह ने कब से हुंकारा भरना बंद कर दिया था. कब से चोंगा उसके हाथ से छूटकर उसके घुटनों पर जा पड़ा था. चिंताओं में खोया. उसके हाथ-पांव ठंडे हो गये. जैसे बैठा था, वैसे ही बैठे-बैठे उसका सिर एक ओर ढुलक गया.

उसकी आंखों के सामने स्वर्ण मंदिर की लायब्रेरी में गुरु साहबान के अपने हाथों से लिखे नुस्खे, जिनके वह दर्शन कर चुका था, एक-एक करके तैरने लगे. पिछली यात्रा के दौरान सिख अजायबघर में देखे कुछ चित्र, कुछ हथियार, कुछ पोशाकें, कुछ गहने उसे याद आने लगे.

सब कुछ लुट गया था. जलाकर खाक कर दिया गया था. एक कौम के इतिहास को, एक कौम की विरासत को, स्लेट पर अंकित अक्षरों की तरह मिटा दिया गया था. उस दिन दोपहर का खाना उससे नहीं खाया गया. बैठे-बैठे उसे ध्यान आया, इस तरह के हालात में तो कुछ भी हो सकता है. चाहे उन्हें घर छोड़ना पड़े. घर छोड़कर भागना पड़े. उसकी गाड़ी में तो पैट्रोल तक नहीं. और वह उठकर कार में पैट्रोल डलवाने, चल दिया.

"इस वक्त?" उसकी पत्नी ने हैरान होकर उससे पूछा.

गरमी कहे जैसे आज ही आज है. पसीना धारा बनकर चू रहा था. पैट्रोल पंप सुनसान पड़ा था. उसने अपनी गाड़ी पंप के सामने जा लगायी. पैट्रोल पंप के पास दो कर्मचारी खड़े थे. एक, ऑपरेटर, दूसरा कैश लेनेवाला, कंधे पर चमड़े का थैला लटकाये हुये. सरदार सर्दूल सिंह उनके मुंह की ओर देख रहा था. दोनों के दोनों कर्मचारी उसकी ओर नजरें गाड़े हुये थे. लेकिन टस से मस नहीं हो रहे थे. उनकी फटी-फटी आंखें जैसे कह रही हों—'सरदारजी, हम अगर आपको पैट्रोल न दें तो आप हमारा क्या बिगाड़ लेंगे?" दो मिनट, चार मिनट, छह मिनट; वे जैसे खड़े थे, वैसे ही खड़े रहे. सरदार सर्दूल सिंह की गैरत का तकाजा. एक-आध मिनट और इंतजार के बाद, उसने गाड़ी स्टार्ट की और पैट्रोल पंप के अहाते से बाहर निकल गया. पैट्रोल पंप के कर्मचारियों ने उसे नहीं रोका; बल्कि जब उसकी गाड़ी जरा दूर हुई तो वे कहाकहा लगाकर हंस दिये. उनकी हंसी तीरों की तरह सरदार सर्दूल सिंह के सीने में आ गढ़ी.

उस शाम उसके जी में आया कि वह गुरुद्वारा रकाबगंज माथा टेकने जाये.

"आज ही क्यों?" उसकी पत्नी समझाने लगी, उसने सुनी-अनसुनी कर दी. हमेशा उसके साथ गुरुद्वारे जाया करती थी, लेकिन उस दिन वह टाल गयी.

क्योंकि मोटर में पैट्रोल काफी नहीं था, वह गुरुद्वारा दर्शन करने बस में गया. रकाबगंज बस में जाना ही उचित रहता था. पहले भी वह यूं ही करता था. बसें प्रायः केंद्रीय सचिवालय से होकर जाती है. वहां से बस मिलना भी आसान होता हे. लौटती बार बस भी जल्दी मिल जाती है.

गुरुद्वारा माथा टेककर, बस में लौट रहा था कि अपने विचारों में खोया सरदार सर्दूल सिंह अपने स्टैंड से आगे निकल गया. अचानक जब उसे इसका एहसास हुआ, वह सकपकाकर अपनी सीट से उठ खड़ा हुआ और कंडक्टर को अपने स्टैंड के लिये कहने लगा. यह सुनकर बस की बाकी सवारियां एक साथ हंस दी. बस के कंडक्टर की हंसी, इन सबमें ऊंची थी.

लघुकथा

अवकाश-ग्रहण

☐ महेश चंद्र सरल

छोटे साहब को सेवा से अवकाश मिल चुका था, फिर भी अभी वे अपने घर नहीं गये थे. सामान अवश्य भेज दिया था. अभी घर-घर विदाई की दावतें खा रहे थे और जो नहीं पूछता, तो उसके यहां बिना बुलाये स्वयं पहुंच जाते. कस्बे का मामला ठहरा. कहते—'क्या करें, बिना घर आये और बिना मिले जाने का मन नहीं करता. इतने दिनों का साथ रहा. फिर कभी जीवन में भेंट हो न हो, इसलिये किसी को शिकायत करने का अवसर नहीं दूंगा.'

लोगों ने देखा था—ट्रक में ऐसा-ऐसा सामान भरा था, जिसके विषय में कोई सोच भी नहीं सकता था. छोटे साहब जो ठहरे. अभी भी पिछली तारीखों में मामले तय

सरदार सर्दूल सिंह पानी-पानी हो गया. जब बस अगले स्टैंड पर पहुंची, उसने शुक्र मनाया. बस से उतरकर, तेज-तेज कदम, वह घर की ओर पैदल ही चल दिया.

उन्हें यह नहीं मालूम था कि सरदारजी विदेश विभाग में अतिरिक्त सचिव के पद से रिटायर हुए थे. वह चाहता तो दिल्ली का उपराज्यपाल बन सकता था. अगर दिल्ली का नहीं, गोआ या पांडिचेरी के लिये तो उसे पूछा भी गया था. एक ही एक, उसका ब्याहने को बेटा था. और कोई जिम्मेदारी नहीं थी. उसने यही फैसला किया कि वह रिटायर होकर बाकी सारी उम्र, भजन-पाठ में गुजारेगा. उसके बेटे के लिये रोज रिश्ते आते रहते थे. पड़ौसी, राय साहब की बेटी उसकी दीवानी थी. जैसे हाथ लगाने से मैली होती हो.

यूं विचारों में खोया हुआ, सरदार सर्दूल सिंह अपने ठिकाने पर पहुंच गया.

अगले दिन वह सैर को नहीं गया. न ही उसके अगले दिन. और फिर कई दिन गुजर गये. जहां तक संभव होता, आजकर वह घर से बाहर नहीं निकलता था. यही डर, कि कोई बदतमीजी न कर बैठे.

फिर एक दिन सरदारनी, हिम्मत बांधकर उसे सैर के लिये ले गयी. सुबह की सैर, इस उम्र में बड़ी जरूरी होती है. पिछले कई दिनों से उसे अपना घर वाला कुछ ढीला-ढीला लग रहा था.

कितने दिनों बाद वे पार्क में सैर के लिये आये थे. सरदार सर्दूल सिंह यह देख-देखकर हैरान हो रहा था कि किसी ने भी शिकायत नहीं की थी कि वे इतने दिन कहां गायब रहे थे? वह हर किसी के मुंह की ओर देखता.

और फिर उस दिन सैर के बाद जब वे घर लौटने लगे, पहली बार, यह किसी ने नहीं कहा था, जैसे वे हमेशा कहा करते थे— 'सरदार साहब आपके चार फेरे हो गये?'

इसका कारण, वह दूरी है जो हमारे बीच आ गयी है. सरदार सर्दूल सिंह अपने आपको समझा रहा था.

आजकल पड़ोसियों की लड़की रचना भी उनके यहां कम ही चक्कर लगाती थी. जब भी आती, 'आपरेशन बुडरोज़' की कहानियां ले बैठती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

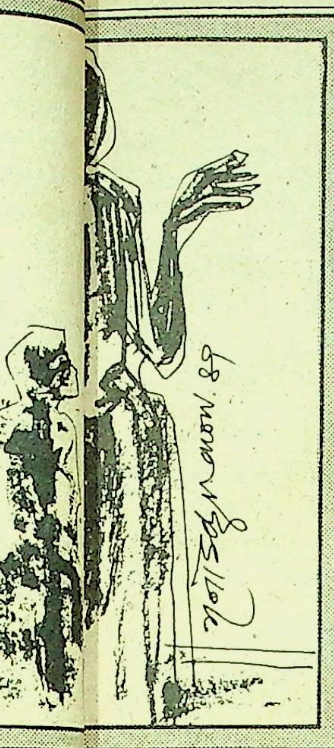

किये थे. लोग आ-जा रहे थे और उसके साथ ही गर्मी भी बढ़ रही थी.

जब जाने का एक दिन रह गया, तो एक व्यक्ति ने छोटे साहब से अपना घर पवित्र करने की विनय की. वे बोले, चलता जरूर, क्या करूं? लड़के सारा सामान लेकर चले गये, यहां तक कि वह बक्स भी ले गये, जिसमें पहनने के कपड़े थे. अब क्या मैं और मेम साब मैले कपड़ों में तुम्हारे यहां चलें? लोग देखेंगे, तो क्या कहेंगे?'

उत्तर मिला, 'कपड़ों का प्रबंध हुआ जाता है. शाम तक नये कपड़े सिल कर भी आ जायेंगे. कुछ थान टेरीकाट के टेलर के साथ भेज रहा हूं. आप पसंद कर नाप दे दें. मेम साब के लिये भी साड़ी पसंद करवा दें.'

छोटे साहब की तरकीब काम कर गयी. चलते-चलते हजार-बारह सौ के कपड़े और सही.

उसी शाम को लोगों ने देखा—नये कपड़ों में सजे-धजे छोटे साहब मेम साब के साथ जा रहे थे. □

कैसे फौजी, पंजाब के गांव-गांव में घूमकर आतंकवादियों की पकड़-धकड़ कर रहे थे. जत्थे के जत्थे, सिख नौजवान सीमा पार चले गये थे. लोग तो कहते कि भिंडरावाला भी, उधर जा निकला था. 'ब्लू स्टार' आक्रमण से पहले ही वह खिसक गया था. अकालतख्त के नीचे तहखानों में सुरंगें बनी हुई थीं. कई गांववाले कहते कि उन्होंने अपनी आंखों से भिंडरावाला को जाते हुए देखा था. सीमा पार से प्रशिक्षण लेकर वह लौट आएगा.

सरदार सर्दूल सिंह लड़की के मुंह की ओर देखता रह जाता. किस तरह बेपरकी लोग उड़ाते थे. रचना की बातें सुनकर सरदारनी यह फैसला न कर पाती कि लड़की भिंडरावाला का पक्ष ले रही थी, या सरकार का? उसे कुरेदने के लिये वह बीच में बोल पड़ी, "लेकिन उसकी लाश तो गोलियों से बिंधी, अकालतख्त के मलबे में से मिली है."

"जितने मुंह उतनी बातें," रचना जवाब देती, "कई तो यह भी कहते हैं कि भिंडरावाला ने आत्महत्या कर ली थी."

"इस तरह के लोग आत्महत्या नहीं किया करते. आक्रमण से पहले उसके साथियों ने जरूर उसे बाहर भेज दिया था."

हर बार जब वह इस तरह के किसी किस्से का जिक्र करके जाती, सरदार सर्दूल सिंह अपनी पत्नी से कहता, "लड़की बेशक कबूल सूरत है, मगर बोलती ज्यादा है."

"हां," सरदारनी सहमति में कहती, "बेशक बोलती ज्यादा है, मगर है बांकी. इस तरह की लड़की घर की रौनक होती है. हमारे यहां आती है तो घर सज जाता है." जैसे उसके मुंह में पानी आ रहा हो.

कितने दिनों से उनके बेटे बलजीत की, शिमला से चिट्ठी नहीं आयी थी. उस शाम पड़ोशियों की लड़की रचना उनके यहां आयी तो सरदारनी ने इसका जिक्र किया. "पिछले दिनों उसे जुकाम हो गया था. अब ठीक है. आजकल इम्तिहानों की तैयारी हो रही है." रचना ने इस विश्वास से कहा जैसे कि उस हर रोज चिट्ठी आती हो.

उस दिन रचना उनके यहां आयी. अंकल-आंटी को अपने कालेज में खेले जा रहे नाटक के लिये आमंत्रित कर रही थी.

उसने यह तो नहीं बताया कि उस नाटक में वह स्वयं भाग ले रही थी जाते समय वह उनके लिये दो टिकट छोड़ गयी. सरदारनी ने देखा, पचास-पचास रुपये के टिकट थे.

"खुले दिलवाली लड़की है." यह जानकर सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी से कहा.

"दिल तो हमने देखा नहीं, लेकिन देखने में बड़ी खूबसूरत है." जैसे सरदारनी बहाना ढूंढ रही हो. कितनी ही देर उसके रंग-रूप की प्रशंसा करती रही. मुस्कराती हुई मोटी-मोटी आंखें, गोरा रंग, ऊंची-लंबी, बूटे जैसा कद, झम-झम करते मुलायम रेशम से बाल. कितना प्यारा जूड़ा बनाती है—गर्दन पर झुका हुआ, जैसे खुल-खुल जा रहा हो. मीठे बोल. मुंह खोलती है तो जैसे नगमे फूट रहे हों. फिर कपड़े पहनने का कैसा सलीका है. क्या मजाल जो आजकल की सिर फिरी लड़कियों जैसा कोई ओछा फैशन उसने कभी किया हो. गाने-बजाने की शौकीन. गाती कितना सुंदर है. सितार कितना प्यारा बजाती है."

"पोठोहारिन है." सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी पत्नी को टोका. वह तो जैसे उसने नाम की माला जपने लगी हो, "पोठोहारिनों का जादू बला का होता है. तुम पर यह जादू चल गया है."

"और आप पर भी" और फिर पति-पत्नी एक दूसरे की ओर अर्थभरी निगाहों से देखने लगे.

परंतु वही पति-पत्नी, जब अगले दिन रचना के कालेज में नाटक देखकर आये तो उनके मुंह फूले हुए थे. अपने-आप में सरदारनी बुड़बुड़ा रही थी, अपने-आप में सरदार कुलबुला रहा था.

बात यूं हुई, कालेज के नाटक में रचना एक फिरंगी लड़की का अभिनय कर रही थी. ऊंची एड़ी वाली सैंडल, कोट-पतलून, बॉब किये हुए बालिश्त-बालिश्त बाल. ऊंची लंबी-सी वह, ज्यों ही मंच पर आयी, सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह के कलेजे में जैसे तड़-तड़ गोलियां दाग दी गयी हों. इस लड़की ने अपने बाल कटवा लिये. पति-पत्नी का खून खौल उठा. उन्हें कुछ दिखायी नहीं दे रहा था. थियेटर-हाल के अंधेरे में से राह टटोलते, ठोकरें खाते वे किसी तरह बाहर आये, और किसी से कोई बात किये बिना घर लौट आये.

सारी उस रात सरदारनी सर्दूल सिंह रचना के आबशार जैसे बालों को याद करते हुये, चूल्हे पर चढ़ी हांडी की तरह उबलती रही.

सारी उस रात सरदार सर्दूल सिंह बार-बार अपने आप से कहता—जो लड़की इस तरह एक नाटक के लिये अपने बालों की बेअदबी कर सकती है, वह इस घर में दुलहिन बनकर कैसे आयेगी? कभी नहीं! कभी नहीं!! 'गुरु सिख' के साथ उसकी कभी शादी नहीं हो सकती. 'मैं कभी उसे अपनी बहू नहीं बनाऊंगा!'

"मैं कभी उसे अपनी बहू नहीं बनाऊंगा." सोते-सोते सरदार सर्दूल सिंह उठकर बैठ गया, और आप ही आप बोलने लगा.

सरदारनी को भी कहां नींद आ रही थी. परेशान-परेशान नजर; वह उठकर अपने पति के पास आ बैठी.

"अच्छा हुआ, समय पर पता चल गया. अगर कहीं गांठ पक्की हो जाती तो न इधर के रहते, न उधर के." सरदारनी बोली.

और फिर बाकी सारी की सारी रात वे इस तरह लाचार से बैठे रहे जैसे नाव डूब जाने पर नाविक.

"सिखी धर्म बार-बार हाथ नहीं आता?" सर्दूल सिंह घूम-फिरकर अपने-आप से कहता.

"सिखी धर्म बार-बार हाथ नहीं आता!" घूम-फिर कर सरदारनी अपने-आपसे कहती. वे एक दूसरे की आंख से आंख नहीं मिला रहे थे.

बात ही कुछ ऐसी थी. मन ही मन में जिस लड़की को वे अपनी बहू बनाये बैठे थे, वह दगा दे गयी थी. उसने अपने बालों की बेअदबी करवा ली थी. 'गुरु सिख' तो अपना अंग-अंग कटवा लेता है, मगर गुरु केसों, इवासों के साथ निभाता है.

यूं कुढ़ रहे थे, यूं तिलमिला रहे थे कि सुबह हो गयी. किसी न किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तरह वे सैर के लिये निकले. सैर करके लौटे तो नौकर की तैयार की हुई चाय जैसे उन्हें जहर-सी कड़वी लगी.

सरदारनी नहा-धोकर पाठ करने बैठ गयी. सरदार सर्दूल सिंह के लिये अखबार पढ़ना बोझल हो रहा था. परेशान-परेशान-सा वह आंगन में टहल रहा था. "चाहे लाख मिन्नतें करे, मैं यह रिश्ता कभी नहीं होने दूंगा." सरदार बार-बार अपने-आपसे कहता.

"हमारा लड़का कोई भिखमंगा है. उसे लड़कियों की क्या कमी!" पाठ कर रही सरदारनी सोचने लगती.

इतने में रचना उनके घर आयी. कालेज जाने से पहले उसने सोचा, कि अंकल-आंटी से पूछे कि नाटक उन्हें कैसा लगा था. पिछली रात नाटक खत्म होने पर वे कहीं दिखाई नहीं दिये थे.

अभी-अभी धुले-संवरे चमचम चमकते उसके बाल, उसकी कमर तक लहरा रहे थे. यह देखकर सरदार सर्दूल सिंह की आंखें फटी की फटी रह गयीं.

"लेकिन नाटक में तो तुम्हारे बाल कटे हुए थे!" सरदार सर्दूल सिंह से रहा न गया, और आखिर उसने पूछ ही लिया.

रचना हंस दी. "अंकल! वह तो हमने रोल करके बॉब बना लिये थे." सरदार सर्दूल सिंह ने सुना तो उसकी बाछें खिल गयी. इतने में सरदारनी पाठ खत्म करके आ गयी. एक नजर रचना के वैसे के वैसे पहले जैसे बाल देखकर उसे छाती से लगा लिया.

दिन पर दिन रचना उनके करीब और करीब आती जा रही थी. रचना के पिता राय साहब की सरदार सर्दूल सिंह से दोस्ती बढ़ रही थी. रचना की मां और सरदारनी सर्दूल सिंह मुंह-बोली बहनें बन गयी थीं. चाहे रस्मी तौर पर उनकी सगाई नहीं हुई थी, लेकिन इस तथ्य मे दोनों पक्ष अपरिचित नहीं थे कि रचना और डाक्टरी पढ़ रहा सरदार सर्दूल सिंह का बेटा एक दूसरे को प्यार करते हैं और जैसे ही लड़का पढ़ाई खत्म करेगा, उनको विवाह-सूत्र में बांध दिया जायेगा.

पंजाब से हर रोज बुरी खबरें आ रही थीं. हिंदू और सिखों में खाई बढ़ रही थी. कोई कहता, 'यह सारी शरारत एक पड़ोसी देश की है.' कोई कहता, 'केंद्र खुद यह सब करवा रहा है. सिखों को बदनाम करने के लिये.' जितने मुंह उतनी बातें. सरदार सर्दूल सिंह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था. फिर कुछ दिन बाद जैसे एक बम फटा हो. देश के प्रधानमंत्री की उसके अपने ही दो सिख अंग रक्षकों द्वारा गोली मारकर हत्या कर दी गयी थी. सरदार और सरदारनी स्तब्ध होकर रह गये. "बड़ा अनर्थ हो गया." वे बार-बार कहते. अभी वे यूं बेहाल हो रहे थे कि पता चला शहर में दंगे भड़क उठे थे.

फिर खबर आयी, जो कुछ दिल्ली में हो रहा था, हू-बहू वैसा ही कानपुर में, इंदौर में, बोकारों में, कलकत्ता में हो रहा था. देश के और शहरों में हो रहा था.

देश की राजधानी दिल्ली में फसाद काबू में नहीं आ रहे थे. चारों ओर आग की लपटें आकाश को झुलसा रही थीं. सड़कों पर आग बुझानेवाले इंजनों की घंटियां लगातार सुनायी देती रहतीं. बार-बार उनके दोस्तों रिश्तेदारों के टेलीफोन आते—'घर से बाहर मत निकलना, बरामदे में भी न बैठना.' उनका नौकर दूध लेने गया और खाली हाथ लौट आया. दूध का डिपो बंद था.

जिस किसी को वे टेलीफोन करते, वहां से कोई जवाब न आता. घर वाले अपने-अपने घर छोड़कर कहीं निकल गये थे. जहां जिसके सींग समाये, जा छिपे थे. उनकी जान-पहचान के सारे सरदार अपने जान-पहचान के हिंदू दोस्तों के यहां सोते थे. सारी रात 'मुर्दाबाद-जिंदाबाद' के नारे सुनाई देते. भयानक नारे और हृदय विदारक चीखें और फरियादें.

फिर उनकी कॉलोनी की बारी आयी. उनके किसी परिचित का टेलिफोन आया, 'मार्केट में सरदारों की दूकानें लूटी जा रही हैं. उन्हें आग लगायी जा रही है. पुलिस ने अश्रु-गैस के गोले फेंके, फसादी फिर भी काबू में नहीं आये. पुलिस ने गोली चलायी."

बार-बार रचना और उसके घरवाले इन्हें अपने यहां ले जाने के लिये कह रहे थे. रचना तो इनका कुछ प्रमुख कीमती सामान उठाकर अपने घर ले भी गयी थी.—टीवी, बी.सी.आर., कालीन, गरम और रेशमी कपड़ों के सूटकेस, सरदार सर्दूल सिंह के आवश्यक पत्र, सेविंग सर्टिफिकेट और गहनों की संदूकची आदि.

अफवाह गरम थी कि आसपास के गांवों के गुंडे उस रात दक्षिणी दिल्ली पर हमला करेंगे. सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह पड़ोसियों के यहां जा छिपे. एक दिन के लिये अपना घर छोड़कर गये और फिर कितने ही दिन पड़ोसियों के यहां टिके रहे. फसाद थे कि काबू में ही नहीं आ रहे थे. कहीं न कहीं कोई दुर्घटना हो ही जाती. हजारों लोग उजड़कर शरणार्थी कैंपों में जा टिके थे. विधवा हुई औरतें, यतीम हुए बच्चे, 'गुरु सिख' जिनके 'कत्ल' कर दिये गये थे, दाढ़ियां—'कुतर' दी गयी थीं. चारों और हाहाकार मचा हुआ था.

जिस दिन वे अपने घर लौटे, सरदार सर्दूल सिंह को खबर मिली कि उसकी बुआ की बेटी, उसके दो जवान बेटे और दो पोते फसादियों ने यमुना पार की एक बस्ती में मौत के घाट उतार दिये थे.

अब सरकार झुग्गी-झोपड़ियों में से लूटा हुआ माल बरामद कर रही थी. गुरुद्वारों और स्कूलों की मरम्मत के वायदे कर रही थी. नागरिक संगठन, यतीम हुए बच्चों और विधवाओं की देख-रेख में लगे हुए थे.

किंकर्त्तव्यविमूढ़ सरकार सर्दूल सिंह को न अपनी आंखों पर विश्वास होता, न अपने कानों पर. सुबह-शाम, शिमला फोन करके अपने बेटे का, लंदन से टेलीफोन आता. यही कहती कि अब आप यहां आ जायें.

सचमुच सरदार सर्दूल सिंह अब यह सोचने लग गया था कि दिल्ली छोड़कर वह पंजाब में ज़ा बसे. जो दुर्गति सिखों की दिल्ली में हुई थी कोई गैरतमंद इस तरह के शहर में नहीं रह सकता.

कुछ दिन बाद, किसी बहाने सरदार सर्दूल सिंह पंजाब गया. वह देखना चाहता था कि कहीं कोई ठौर-ठिकाना मिल सकता है या नहीं.

पंजाब तो लबालब भर चुका था. बिहार और यू.पी., बंगाल और मध्य प्रदेश से लुटकर आये शरणार्थी कीड़ों की तरह कुलबुला रहे थे. गुरुद्वारे भरे हुये थे, सरायें अटी पड़ी थीं.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हत्या कर
ड़ा अनर्थ
क पता चला

बहू वैसा
देश के औ

ये. चारों ओ
बझानेवा
उनके दोस्तो
, बरामदे
लौट आय

न आता. घ
जिसके सी
ददार अपन
सारी रा
और हृद

परिचित क
हैं. उन्हें आ
ादी फिर

जाने के लि
ठाकर अपन
और रेशम
पत्र, सेवि

रात दक्षिण
पड़ोसियों
फिर कित
नहीं आ र
ा उजड़
बच्चे, 'गु
दी गयी थी

र मिली बि
फसादियों

मद कर रह
ी. नागरि
लगे हुए
पर विश्वा
के अपने बे
ां आ जायें
कि दिल्ली
में हुई थी

ब गया. व
है या नही
बंगाल औ
बुला रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभी वह पंजाब में ही था कि आतंकवादियों ने एक बस का रोककर कई निर्दोष सवारियों की निर्मम हत्या कर दी. सरदार सर्दूल सिंह ने अपनी आंखों से देखा—बस जैसे खून की तलैया में खड़ी हो.

यूं बेगुनाह लोगों की हत्या! वह अपना-सा मुंह लेकर दिल्ली लौट आया. उससे और वहां नहीं रुका गया. बार-बार कहता—इतनी मासूम जानें, इतने बेगुनाह लोग, औरतें, बच्चे, मर्द!

दिल्ली लौटा तो उसके बेटे की चिट्ठी उसे मिली. उसके बेटे ने केश कटवा लिये थे. उसने चिट्ठी पढ़ी तो जैसे उस पर बिजली आ गिरी हो. वह धड़ाम से पलंग पर औंधा जा गिरा. उसकी पत्नी, इतने दिन रो-पीट चुकी थी. बेटे की चिट्ठी तो जिस दिन वह पंजाब गया था, उसी शाम की डाक में आ गयी थी. सरदारनी ने अपने मन को समझा लिया था. आगे-पीछे, प्रलय आयी हुई है. केशों के साथ, साफे के साथ खतरा महसूस करता होगा—इसी डर से ऐसा किया होगा.

और मां गलत नहीं थी. उस शाम बेटे की दूसरी चिट्ठी आयी।— "भापाजी, आपने मेरी पहली चिट्ठी का जवाब नहीं दिया. न ही इतने दिन से आपका टेलीफोन आया है. मुझे लगता है कि आपको मेरी हरकत से सख्त रंज पहुंचा है. लेकिन मैंने यह सब कुछ बेबस होकर किया है. मुझे आशा है कि आप मेरी मजबूरी को समझते होंगे."

कुछ दिन बाद सर्दूल सिह को यह बात समझ में आ गयी.

फिर लुधियाना से उसके चाचा के बेटे की चिट्ठी आयी. उनके घर के ऊपर का हिस्सा खाली हो गया था. कोई हिंदू अफसर रहता था, जिसने अपना तबादला दिल्ली करवा लिया था. अगर सर्दूल सिंह के आने की इच्छा हो तो वे उसे किराये पर नहीं चढ़ायेंगे. तीन सोने के कमरे थे, बैठक थी, खाने का कमरा था, रसोई, स्टोर आदि. किसी को और क्या चाहिए. लेकिन सर्दूल सिह का मन नहीं माना. जब भी वह इस सुझाव के बारे में सोचता, उसकी आंखों में खून से लथपथ बस की तसवीर उभरने लगती—जिसके इर्द-गिर्द, मासूम मर्द, औरतें-बच्चों की लाशें यूं पड़ी थीं, जैसे लकड़ियां काट रहे लकड़हारे के इर्द-गिर्द ठूंठ बिखरे होते हैं.

उसको पत्नी ने एक से अधिक बार उसे याद दिलाया, लेकिन सर्दूल सिंह का मन नहीं माना. वह बात को टाल गया. कोई अपना घर भी यूं छोड़ा जाता है. बार-बार उसके भीतर से यह आवाज आती.

"कोई अपना घर भी यूं छोड़ा जाता है?" यही बात सरदारनी भी आजकल हर किसी से कहती.

जिंदगी फिर अपने ढर्रे पर आ गयी थी. दिल्ली फिर एक दुलहिन की तरह सजी-सजी लगती. हिंदू, सिख, मुसलमान, ईसाई—सब हंसते-खेलते, ब्याह-शादियों में इकट्ठा होते, क्लबों, काफी-हाउसों में मिलकर बैठते.

लेकिन कभी-कभी सरदार सर्दूल सिंह को एक धक्का-सा लगता. उसके भीतर एक धमाका-सा होता. उसका आत्मसम्मान जैसे विद्रोह कर उठता. उनकी कालोनी में एक राय बहादुर मुरलीधर थे. पिछले साल जब उनका देहांत हुआ तो उसके घरवालों ने अखंड पाठ करवाया. शहर के सब से मशहूर रागी जत्थे को कीर्तन के लिए बुलाया. राम बहादुर की पत्नी जब न रही तो घरवालों ने पंडित को बुलवाकर पूजा हवन करवाया. सरदार और सरदारनी सर्दूल सिंह दोनों उनके यहां गये.

आजकल सरदारनी आमतौर पर कालोनी में हिंदू पड़ोसियों के यहां पूजा में शामिल होती. जब लौटती तो उसके माथे पर टीका लगा होता.

शुरू शुरू में, सरदार सर्दूल सिंह जब यह देखा करता तो आंखें मूंद लेता. अब कभी इस ओर उसका ध्यान नहीं गया था. जब कभी इस प्रकार का कोई समागम होता, चाहे दूर हो चाहे पास, वे उसे कभी न टालते.

किसी के यहां मुंडन, किसी के यहां यज्ञोपवीत, किसी के यहां जगरण, किसी के कुछ और किसी के कुछ. कई बार यह सोचकर कि वे सब कुछ

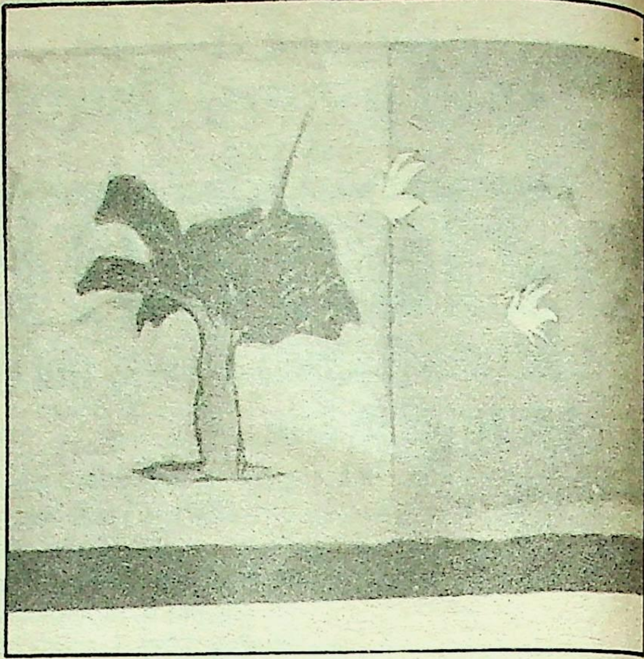

एक जरूरत समझ कर कर रहे थे, सरदार सर्दूल सिह पानी-पीनी हो जाता. उसे अपना आप बुरा-बुरा-सा लगने लगता. तो फिर क्या?

अब उनके बेटे बलजीत के इम्तिहान खत्म हो चले थे. अगले सप्ताह उसे दिल्ली लौट आना था. मां-बाप की समझ में नहीं आ रहा था कि वे अपने बेटे का मुंह कैसे देखेंगे. न जाने वह कैसा लगेगा.

और फिर बलजीत आ गया. जान-बूझकर ये उसे स्टेशन पर लेने के लिए नहीं गये. टैक्सी से उतरा. न मां ने उसे एकदम पहचाना, न बाप ने जैसे कोई अजनबी आया हो. फिर वह आंखों में आंसू लिये, अपने डाक्टरी पास करके आये बेटे से मिले.

वह दिन, अगला दिन, और उससे अगला दिन, घर में जैसे मरघट की सी चुप्पी छायी रहती. मां-बाप के एक ही एक बेटे बलजीत से अपने माता-पिता का क्लेश न देखा जाता. आखिर उससे रहा नहीं गया, और वह अपने पिता के पांव पड़कर सुबकने लगा, "पापाजी. मुझे माफ कर दो. आप कहें तो मैं फिर केश रख लूं." यूं वह छमछम आंसू रो रहा था कि उसकी मां ने उसे छाती से लगा लिया. वह उसे दुलारने लगी.

इतने में पड़ोस में, नौकरों के क्वार्टरों में एक शोर सुनाई दिया. हर किसी के कान खड़े हो गये. यह तो किसी औरत की चीखें थीं.

"कोई नहीं बेटा, यह तुलसी है. अपनी जोरू को पीट रहा है. दारू पीकर आता है और अपनी घरवाली को डंडे से पीटने लगता है." उसकी मां बलजीत को बता रही थी.

"लेकिन, यह तो जैसे किसी का कोई खून कर रहा हो." बलजीत का अंग-अंग कंपकंपा रहा था. एकदम उसके पुट्ठे अकड़ गये.

बलजीत ने न इधर देखा न उधर, और सामने कमरे के कोने में पड़ी, अपने बाप की छड़ी को उठा लिया.

"न बेटा. आजकल वक्त नहीं इस तरह के झगड़ों में दखल देने का." उसकी मां ने यह कहते हुए उसे रोका, "इसका तो ढब ही यही है. पीट-पीटकर उसे अधमरा कर देता है."

"कोई सरदार किसी निर्दोष पर जुलम होते हुए कैसे देख सकता है?" यह कहते हुए बलजीत कमरे में से बाहर निकल गया.

"न बेटा, न बेटा यूं रात गये....." सरदारनी अपने बेटे को रोकती ही रही कि वह फसील फलांग कर नौकरों के क्वार्टर में जा पहुंचा.

"कोई सरदार किसी निर्दोष पर जुल्म होते हुए कैसे देख सकता है?" बलजीत का बाप, बलजीत की मां को समझा रहा था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाल पसीना

अभिमन्यु अनत

पिछले अंकों में आप हरि, रामबरन, परकाश, सहदेव ठाकुर आदि आदि से मिल चुके हैं. इन सबकी अपनी-अपनी समस्याएं तो हैं पर एक समस्या साझी भी है—गोरे मालिकों और उनके सरदारों के अत्याचार से जूझने की समस्या. अब गास्तों की ही बात लें. पांच साल के इस बच्चे के साथ जो दुर्घटना घटी थी उसकी जिम्मेदारी मालिकों की ही थी पर वे कहां तैयार थे उसे निभाने के लिए. फिर क्या किया हरि और उसके साथियों ने ... पढ़िये धारावाही उपन्यास की पांचवीं किस्त.

दो दिन बाद खेतों में मजदूरों को गास्तों की हालत का पता चला. उसका एक पांव और एक हाथ टूट गये थे. माथे की चोट हल्की थी. खबर लाने वाला सुग्रीम चाचा था. बोला था कि डाक्टर को विश्वास है कि हाथ की हड्डी जुड़ सकती थी पर पांव की हड्डी का जुड़ना कठिन था. जुड़ भी गयी तो गास्तों को जीवन भर लंगड़ाते रहना होगा.

"नाहक टांग गंवा बैठल! छोटा-सा छोकरा. किस्मत ही खोटी थी उसकी."

हरि यह मानने को तैयार नहीं था कि उसकी किस्मत ही खोटी थी और न ही उसने नाहक में टांग गंवायी थी. वह अपने दोस्तों से कहता रहा कि छोटे मालिक की वजह से उसका पांव बेकार हुआ था. रामबरण चाचा ने उसे चुप रह जाने की हिदायत दी, "क्यों उटपटांग बातें करके अपना जीना हराम करना चाहते हो?"

हरि ने सिर हिलाते हुए कहा, "जब भी उधर से हुए किसी अन्याय के बारे में कुछ बोलने की कोशिश की जाती है कि बस आप सभी लोग उसे या तो पागलपन करार बैठते हैं या उसे उटपटांग बातें कह जाते हैं.

हरि का बदन जितना काम और धूप के कारण पसीने से तर नहीं हुआ था उससे कहीं अधिक छोटे मालिक की उस हरकत को सोचकर, जिसकी वजह से गास्तों को टीले पर चढ़ने के लिए मजबूर होना पड़ा था. खेतों में मजदूरों ने पहले दिन उस घटना पर बातें कीं फिर दूसरे दिन बात ऐसे भुला दी, गोया वह मुद्दत पुरानी घटना थी. हरि ने उस मामले में दोनों सरदारों से बात तो की पर उन्होंने कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी. बस्ती में सुग्रीम चाचा के पड़ोस में जिन दो मुर्गियों की चोरी हो गयी थी, उस पर तीन दिनों तक चर्चा होती रही थी. हरि ने सरदारों के सामने बड़े मालिक से बात करने की इच्छा जाहिर की तो दोनों ने अपने अपने ढंग से डांट दिया.

हरि को उस इलाके में काम सौंपा गया था, जहां नयी नस्ल के गन्ने बोये जा रहे थे. गड्ढों में औरतें आगे-आगे खाद डाले जा रही थीं और हरि अपने अन्य साथियों के साथ ईख की गुलियों को इस सावधानी से बिछाये जा रहा था ताकि अंकुर निकलने वाले हिस्से, जिन्हें आंख कहते थे, ऊपर को रहें. उन गुलियों पर माटी भी उतनी ही सावधानी के साथ चढ़ायी जा रही थी. माटी थोड़ी-सी कम या अधिक भर जाने पर गुलियों को फिर से बाहर निकालकर नये सिरे से रोपना पड़ता था. सरदार ने जब हरि को बाहर रोककर कहा कि वह दरियों में अधिक माटी चढ़ा रहा था तो हरि आवेश में आ गया. उसने अपने हाथ की कुदाली को जमीन पर फेंक दिया. वह सरदार औरतों की टोली का था. हरि के द्वारा कुदाली फेंके जाने पर वह अपनी जगह पर ठिठका रह गया. उसने रोब दिखाने के लिए गलती निकाली थी. अपनी गलती का एहसास करके वह वहां से टल गया. हरि ने माथे के पसीने को पोंछकर फिर से कुदाली उठा ली.

उसे भी अपनी निरर्थक नाराजगी पर पछतावा हुआ. गास्तों के खयाल से अगर दिमाग थका हुआ नहीं होता तो वह उतनी जल्दी आवेश में आने वाला नहीं था. सरदारों की जलील हरकतों पर चुप्पी साध लेने की आदत पड़ गयी थी. जब भी आपे से बाहर हुआ, मालिक के सामने भी जवाब देना पड़ा. अभी पिछले दिनों जब बड़े मालिक ने उसे यह कहकर डांटा था कि गन्नों को वह एक इंच अधिक ऊपर से काट रहा था तो हरि ने काम रोककर बड़े ही धीमे स्वर में कहा था, "मैं इन खेतों में सात बोआई कर चुका हूं, सात फसलें काट चुका हूं. आप आगे आइये और इन कंकड़ों से भरी जमीन पर गन्नों को इससे नीचे काटना संभव हो तो काटकर बता दीजिये."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने अपने हाथ के गंडासे को मालिक की ओर बढ़ा दिया था.

हरि की उस शांत मुद्रा की गंभीरता को देखकर मालिक से आगे बोला नहीं गया था. आंखें गुरेरकर देखा था और टल गया था.

सोचा, आज वह नये सरदार के सामने चुप रह सकता था. लेकिन महकती धूप और जेहन में गास्तों के खयाल की गरमी का वजह से वैसा कर बैठा. पछतावे के बावजूद उसे इस बात का संतोष रहा कि उसने अच्छा ही किया. कम से कम वह आदमी आइंदा उस तरह की दखलअंदाजी की छूट तो न लेगा. खाने के समय वह संतोष और दो दूसरे मित्रों के साथ जिस जामुन के पेड़ के नीचे जा बैठा, वह एक ऊंची जगह थी. जहां से उत्तर प्रांत के खेतों की हरियाली दूर तक दिखाई पड़ती थी. विविधता लिये उस हरियाली के पार्श्व में एक ओर ग्रांगोब का समुद्र उफनता दिखाई पड़ता था तो बायीं और समुद्र के भीतर के दो छोटे द्वीप दूर होते हुए भी करीब से प्रतीत हो रहे थे. उन द्वीपों पर नजर पड़ते ही हरि को अपने किसी समय के गहरे दोस्त गाब्रियेल की याद आ गयी. गाब्रियेल उन दोनों द्वीपों में आता-जाता रहता था. हरि की बड़ी इच्छा थी कि एक दिन वह भी गाब्रियेल के चाचा की नांव से उन द्वीपों पर पहुंचेगा. अगर वह शाकाहारी न होकर मछली गोश्त खाने वालों में होता तो अब तक उन द्वीपों पर पहुंच गया होता. एक बार जब उसने संतोष और मूसा के सामने अपनी वह ख्वाहिश रखी थी तो दोनों हंस पड़े थे.

संतोष ने कहा, ''लोग कहेंगे, ब्राह्मण का बेटा गाब्रियेल के साथ मछली पकड़ने गया था !'' हरि कुछ देर के लिए गास्तों की याद को बिसार बैठा था लेकिन उन सामने के द्वीपों को देखकर उसे गास्तों के पिता की याद आयी फिर गास्तों की. खाने के पहले कौर के साथ भी वह यही सोच रहा था कि अगर वह सोलाज से उस दिन मिलने का साहस नहीं कर सका तो कम से कम गाब्रियेल से तो मिल लेता. वह हरि से कोई दस-बारह वर्ष बड़ा था. हरि का फर्ज होता था कि वह उससे मिलकर उसके बच्चे का हालचाल जान लेता, उसने सोचा, अभी देर नहीं हुई थी. मन-ही-मन तय कर लिया कि काम से छूटते ही वह गाब्रियेल से मिलने जायेगा. वैसा करके उसके शक्कर कारखाने के लिए निकलने से पहले ही उससे घर पर मिल सकता था.

उसने दाल-भात को सानकर कौर को मुंह में पहुंचाया. इसके बाद पात्र के कोने से इमली की चटनी को चुटकी में लेकर कौर के गले के नीचे उतर जाने का इंतजार करता रहा. वह जब नीचे उतर गया तो उसने उंगली की चटनी को जीभ पर रख लिया. वह जितनी खट्टी थी, उतनी ही तीती भी थी. उसकी चटनी में उसकी मां हमेशा अलग से मिर्च मिलाती थी. अलग से चावल के ऊपर भी दो-चार छोटी मिर्च रख दिया करती थी. शुरू में उसकी मां उसे इतनी मिर्च खाने से रोकती रहती थी. हरि जब छोटा था और जब तरकारी में मिर्च पड़ जाने पर रो उठता तो उसका बाप उसे मनाने के लिए कहता, ''अरे ना बेटे! मिर्च खाने से तो बच्चे जल्दी बड़े होते हैं.''

और जब कुछ बड़ा होने पर वह खुद मिर्च लेकर बैठ जाता तो उसकी मां डांटती हुई कहती, ''बच्चों को मिर्च नहीं खानी चाहिए. मिर्च खाने से गुस्सा आता है. लेकिन जब उसने देखा कि मिर्च के अभाव में वह अपनी पूरी खुराक नहीं खाता था तो फिर उसने उसे मिर्च खाने से रोकना ही बंद कर दिया.

गाब्रियेल का घर बस्ती के दूसरे छोर पर था. काम से छूटकर घर को लौटते हुए हरि दायीं ओर की पगडंडी से न होकर बायीं ओर की पगडंडी से चल पड़ा. सूरज के डूबने से पहले वह गाब्रियेल के घर पहुंच जाना चाहता था ताकि वह उसे घर पर ही मिल जाये.

जुर्म

□ युगल

सरकारी वकील के सवाल को खुद जज ने दुहराया, ''तो तुम जुर्म कबूल करते हो?''

बंसी हजरा बोला, ''मैंने कोई जुर्म नहीं किया हुजूर!''

''तुमने दारोगा रछपाल ठाकुर को छुरा मारा. उसकी हत्या की.''

''जी, मैंने एक आततायी को दंड दिया था.''

''दंड देना तुम्हारा काम नहीं था.''

बंसी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा, ''हुजूर, मेरा अपराध यही था कि मैंने दारोगा के खिलाफ आपकी इसी अदालत में गवाही दी थी. लेकिन एक कड़वी बात पूछने के लिए माफी चाहता हूं. आपकी मां को थाने की कोठरी में नंगी कर आपको पीट-पीटकर उकसे ऊपर सोने को मजबूर किया जाये... तो...''

अदालत की अनुशासित शांति में एक अशांत गर्मी आयी. जज का चेहरा लाल हो गया. सरकारी वकील बोला, ''अदालत के इस अपमान के लिए...''

बंसी के हाथ वैसे ही जुड़े थे, ''मुझे फांसी दी जाये हुजूर! ग्लानि के मारे मेरी मां छप्पर से लटक कर मर चुकी है. ऐसी बेगैरत की जिंदगी जीना कौन चाहेगा?'' उसने जज की आंखों में देखा.

उस दिन की कार्यवाई मुल्तवी कर अदालत उठ गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

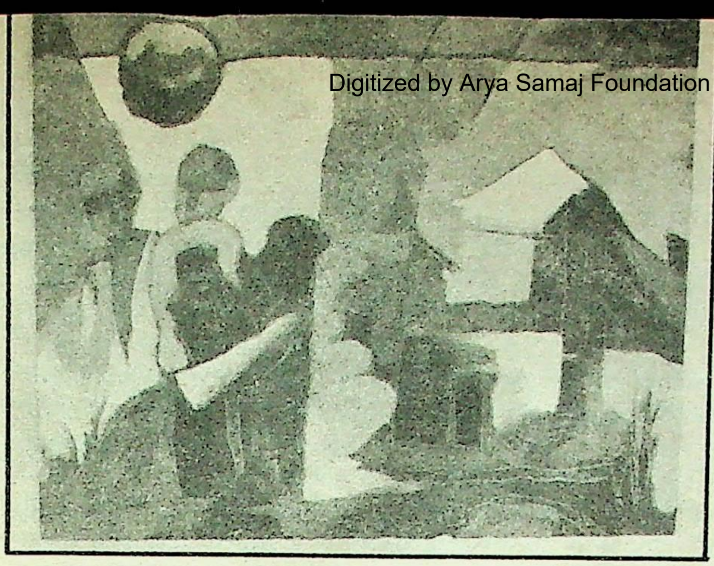

लेकिन ऐसा करके भी उसने वैसा नहीं पाया. गाब्रियेल के घर के सामने एक गड्ढा था जिसके पानी में कुछ बत्तखें तैर रही थीं. आंगन में फ्री आर्पे का जो पेड़ था, उससे किसी बड़ी मछली का जबड़ा टंगा हुआ था. उसके नीचे केकड़ों की सूखी टांगें और सूखी सीपियां बिखरी हुई थीं. आंगन आज भी वही बिसाईंध लिये हुए था.

घर की ओड़ियानी सजी हुई थी लताओं और फूलों की पौधों से. गमलों के रूप में पुराने हो गये टीन के बरतनों का इस्तेमाल हुआ था. घर पर सिर्फ सोलांज मिली. उसने बताया कि गाब्रिएल इसलिए कुछ पहले निकल गया था ताकि वह अस्पताल होकर काम पर पहुंचे.

हरि ने ज्यों ही गास्तों की बात छेड़ी, सोलांज़ रो पड़ी. उसने बताया कि उसका पांव हमेशा के लिए बेकार हो गया था. गाब्रियेल के साथ वह छोटे मालिक से मिल आयी थी. दोनों ने अनुरोध किया था कि गास्तों को शहर के अस्पताल में दाखिला दिलाने में उनकी मदद की जाये. छोटे मालिक ने दोनों को फटकार के साथ अपने यहां से निकलवा दिया था. बोला था कि गास्तों अपनी चुहलबाजी के कारण घायल हुआ था. वैसी हालत में कोठी की ओर से उसे कुछ भी नहीं मिल सकता.

पिछली रात हरि को भी यह खयाल आया था कि अगर शहर के अस्पताल में गास्तों का इलाज हो तो संभव है उसके हाथ के साथ-साथ उसका पांव भी ठीक हो जाये. छोटे मालिक के उस इनकार पर उसे क्रोध हो आया पर सोलांज के सामने उसने जाहिर नहीं होने दिया. सोलांज का घर गांव का एकमात्र टीन का घर था. बाकी तो सभी ईख के सूखे पत्तों के छप्पर वाले घर थे. वह घर कभी मारतें सरदार का था. पर जब उसे कारखाने के अहाते में बेहतर घर मिल गया था तो उसके उधर चले जाने पर बड़े मालिक की इजाजत पाकर सोलांज उसमें रह रही थी. उस घर में रहने के ही कारण गाब्रियेल उस दूसरे कारखाने की नौकरी के लिए नहीं जा सकता था जहां उसे दो-चार पैसे ज्यादा मिलने की उम्मीद थी. जब उसने हरि के सामने अपनी मजबूरी रखी थी तो हरि ने कहा था, "पर यार, घर तो तुम्हें वहां भी मिल सकता है."

"वहां घर नहीं मिल सकता. अगर मिलता तो चला ही गया होता."

"अच्छा, तुम एक बात बता सकते हो मुझे?"

"क्या?"

"हम खेतों की धूप और बारिश में काम करनेवाले मजदूरों को कोठी में घास-फूस के छप्पर वाले ही घर मिलते हैं जब कि तुम लोगों को टीन की छत वाले घर मिलते हैं. ऐसा क्यों?"

"यह बात तो तुम्हें मालिकों से पूछनी चाहिए."

हरि लज्जित हो गया था. ग्राबिएल के उस उत्तर से जाहिर था कि वह प्रश्न उसे भाया नहीं था. हरि ने अपने आप से कहा, अरे हां, यह प्रश्न तो मुझे मालिकों से करना चाहिए था. इस बेचारे से क्यों कर गया?

हरि ने एक बार अपने बाप से सुना था कि जो उनके धर्म के थे, उनके साथ गोरे मालिकों का व्यवहार उतना बुरा नहीं होता था. जब हरि के मां-बाप कोठी के घर में रहते थे, उस समय हरि तीन-चार वर्ष का ही था. बेल-वी आरेल की उस कोठी को छोड़ने के बाद ही उसका बाप अपने जीवन के चंद अच्छे वर्षों का लाभ उठाकर काटेज में एक घर बना पाया था. पर वह घर भी टीन का नहीं हो सका था. कोठी के घरों से फिर भी वह अच्छे ही थे. ईख के सूखे पत्तों की मुट्ठियों की छाजन थी. दीवारें पीछे की ओर रावेनाल और पत्थरों की थीं. आगे की और बीच की दीवारें सिर्फ रावेनाल की थीं.

बात

■ गंभीर सिंह पालनी

कानपुर में अपने ही विभाग में अपनी जाति का और साहित्यिक अभिरुचि का एक लड़का है, इस बार बिटिया की शादी की बात उससे चलायेंगे. पांडेजी ने सोचा.

बात की शुरुआत कैसे की जाये. पांडेजी की समझ में नहीं आया तो पत्नी ने समझाया कि आप भी साहित्यिक अभिरुचि के हैं और वह भी साहित्यिक अभिरुचि का है. नया वर्ष आने को है. आप ऐसा करें कि नये वर्ष की शुभकामनाओं का एक कार्ड उसे भी भेज दें. कुछ दिनों बाद जब उसका जवाब आ जायेगा, तब परिचय और भी बढ़ायेंगे, तदोपरांत इस रिश्ते की बात मौका आने पर शुरू करेंगे.

नव वर्ष का शुभकामना-कार्ड भेजा गया. उसके कुछ ही दिन बाद दफ्तर में यूं ही बातचीत के दौरान एक दिन उन्होंने सुना कि उस लड़के का विवाह शीघ्र ही कहीं होने जा रहा है.

पति-पत्नी दोनों को बड़ा अफसोस हुआ कि ग्रीटिंग-कार्ड बेकार चला गया. शुरुआत में ही बात खत्म हो गयी. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोलांज के यहां से वह घर पहुंचा. कंधे से टोकरी और कुदाली को उतारकर ओड़ियानी में रख दिया. अमरक के पेड़ के नीचे मिट्टी का जो बड़ा-सा गड्डा था, उसमें से डोल भर पानी लेकर उसने हाथ-पांव धोये. कमीज उतारकर आधे बदन को झपला लिया. शरीर की थकान कुछ कम हुई पर सिर का बोझ अपने उस दर्द को लिये रहा. बड़े आदमियों के द्वारा उस तरह के जुल्म होते रहना तो सभी के लिए आम बन गया था. अपने इर्द-गिर्द की घटनाओं के देखकर फिर उसी सहजता के साथ भूल जाने की उन्हें आदत पड़ गयी थी. लेकिन इस बार जब एक बच्चे के हाथ-पांव मालिक की वजह से टूटे थे और उतनी ही निष्ठुरता से वह बच्चे का दोषी ठहराकर अपने को बेगुनाह बता रहा था. साथ ही जब उसने किसी मदद तक से भी इनकार कर दिया था तो हरि उस बात को इतनी आसानी से बिसार देने की स्थिति में अपने को नहीं पा रहा था.

दूसरे दिन उसने बैठक में उस बात का चर्चा की. कुछ ने उसकी बातों को महत्व दिया, कुछ ने नहीं दिया. सुग्रीम चाचा ने कहा, "ठीक है, ठीक है. तू जो कहत बानी ठीक है पर हम लोग मुंह खोलेंगे तो नौकरी से हटा दिये जायेंगे. नाहक में अपना खनवा में माटी डाल लेवे के बात हम लोग काहे करीं."

फिर शनिवार को उसी सुग्रीम ने उसे बताया कि लोयों घास के कारण इस सप्ताह चार मजदूरों की दो-दो दिन की मजूरी काट ली गयी. हरि ने खीज के साथ कह दिया, "ठीक है चाचा, कटते रहने दो. हम लोग नाहक अपने खाने में माटी क्यों डालें! औरों पर बीत रहा है, चुपचाप देखते रहें."

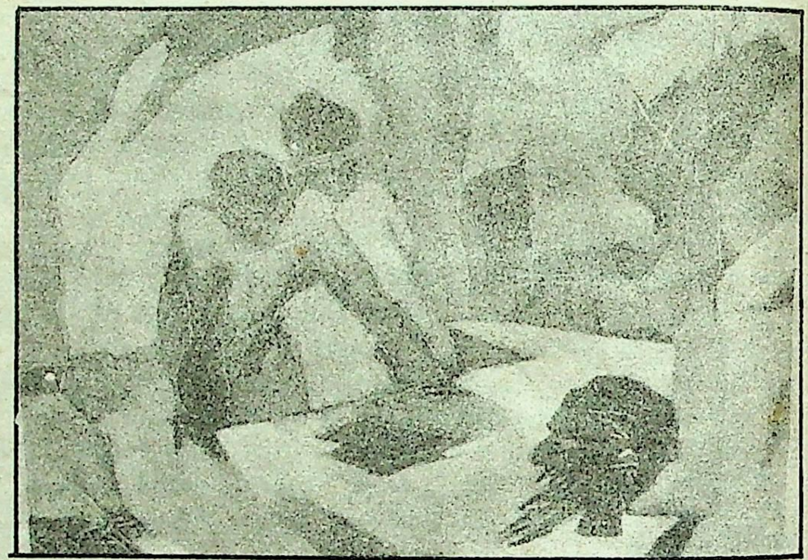

उस समय हरि सुग्रीम चाचा के घर सतुआ छोड़ने गया था. पिछली चार-पांच रातों से आसपास की औरतों से मिलकर उसके घर चक्की चलायी थी, जंतसार गायी थी और सतू पीसा था. चक्की जंता चलानेवालों में सुग्रीव चाचा की पत्नी भी थी इसलिए उसे अपना हिस्सा तो मिलना ही था. हरि जब उसके घर पहुंचा था तो उसके यहां दाल छौंकी जा रही थी. सूखी मिर्च के छौंक की उस चुभती गंध के कारण हरि खांसता छींकता रह गया था.

रात में जब हरि दो रोटियों की जगह एक ही रोटी खाकर उठने लगा तो उसकी मां पूछ बैठी, "क्या बात है हरि?"

"आज पेट पहले ही से भरा-सा लग रहा है मां."

रात भर अपनी खाट पर करवटें लेता हुआ वह उपाय सोचता रहा. कोई उपाय मन में आता पर फिर लगता कि वैसा तो पहले भी कई बार कर चुका है. अगर कभी वो उपाय सूझे भी थे तो औरों के सामने रखने पर वे बेकार ही जाते रहे थे. पड़ोस में हर रात देर तक चक्की चलती रहती थी, औरतें सतवे पीसती हुई जंतसार गाती थीं. दोनों की मिली-जुली आवाज़ें उसे असहय कोलाहल सा प्रतीत होता. वह एक कान पर दोनों हाथों को रखकर दूसरे को खाट से दाबकर उस कोलाहल को अनसुनी करने की कोशिश करता. ऐसा करके वह औरतों के गानों को सुनने से तो अपने को बचा लेता था पर जांते की उस घड़घड़ाहट से अपने को नहीं बचा पाता. अभी जब उसके यहां चक्की चली और औरतों ने कजरियां गायीं

हार-जीत

□ रामनिवास मानव

दोनों में बहस छिड़ गयी.

"मेरी पार्टी का उम्मीदवार जीतेगा." अ ने कहा.

"नहीं. मेरी पार्टी का जीतेगा." ब ने दावा किया.

"तुम्हारे उम्मीदवार के जीतने का तो प्रश्न ही नहीं." अ में बड़ा आत्म-विश्वास था.

"प्रश्न हो या नहीं, जीतेगा वही." ब भी अपने मत पर दृढ़ था.

"लेकिन कैसे? वोट तो मिलेंगे नहीं उसे."

"वोट हमें लेने आते हैं."

"वो कैसे?"

"ऐसे!" कहकर ब ने एक तेज धार चाकू अ की आंतों में उतार दिया.

अगले दिन इधर अल्प-संख्यक समुदाय के व्यक्ति की हत्या की खबर फैली, तो उधर सारे वोट ब के उम्मीदवार की मत-पेटी में जा गिरे. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थीं तो हरि उन गानों के भीतर की उस पीड़ा से कांप उठता था. न जाने कब से ये औरतें उस दर्द को सहती, देखती, सुनती, गाती चली आ रही थीं.

उमस भरी रात होने के कारण जांता देर तक चलता रहा. खाट पर के गोनी के बिछावन के सूखे कुश के कारण हरि को गरमी और भी अधिक लग रही थी. दो दिन पहले उसकी शिकायत पर उसकी बहन देवी ने उस बिछावन की सिलाई खोलकर उसे धूप में रख दिया था ताकि पिस्सू और खटमल उससे बाहर आ जायें. पर वे पूरी तरह से खत्म नहीं हुए थे और हर समय हरि को तंग कर रहे थे. गरमी और ठंड दोनों मौसमों में हरि बिना कमीज के सोने का आदी था. गरमी की अकुलाहट में पसीने से तर उसकी कमर के नंगे भाग का खटमलों ने भरपूर लाभ उठाया था.

वह कई तरह से अपने मस्तिष्क की बातों को घुमा-फिराकर सोचता रहा. कभी प्रश्नों के उत्तर तलाशता और कभी उत्तर कोई दूसरा प्रश्न पैदा कर देता. उस रस्साकशी से बचने के लिए उसने नींद की चाह में आंखें बंद कर लीं. करवटें ले-लेकर नींद के लिए संघर्ष करता रहा. नींद नहीं आयी पर एक खयाल ऐसा जरूर उसके जेहन में कौंधा जिससे दिमाग की मांस पेशियां अपने आप क्षण भर पहले के तनाव से मुक्त होकर शिथिल हो गयीं. उसे अचानक पैदा हो आया वह खयाल पसंद आ गया. आगे सोचा, कल शनिवार होगा. क्यों न कल ही उस पर अमल किया जाये. उसने तय कर लिया कि वैसा ही करना था. मस्तिष्क की मांस पेशियों में नर्मी आ जाने से गर्मी भी कुछ खुल गयी हैं. उसे जम्हाई आयी. और जब तक उसे नींद न आ गयी, वह कल की योजना पर सोचता रहा.

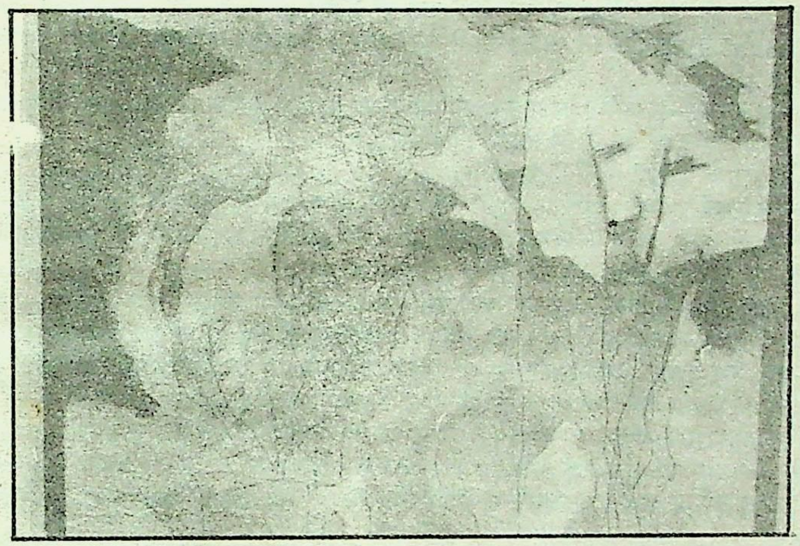

सुबह उठते ही उसने हर रविवार की तरह खुद अपने हाथों गाय-बकरियों को चारा पानी दिया फिर रोजाना की मौलिक आवश्यकताओं से निवृत्त हुआ. जब देवी चाय और परांठे लेकर सामने आयी तो वह कागज के एक टुकड़े पर कुछ नाम दर्ज कर रहा था. उसने अपनी बहन के हाथ से दोनों चीजें लेकर संदूक पर रख दीं. अब तक वह आठ नाम लिख पाया था. परांठे खाकर उसने चाय पी. जब घर से बाहर निकला तो सूरज की किरणें नारियल के चिलमनी पत्तों से छनकर आंगन में लोट रही थीं. वह सीधे मूसा के घर पहुंचा. उसकी बीवी ने बताया कि वह इबादत कर रहा था. हरि आम के पेड़ के नीचे बैठ गया. मूसा की बीवी ने हांडी साफ करने से पहले जो बासी भात और बची-खुची तरकारी बरतन मंजवे के पास फेंकी थी, उस पर कुछ मुर्गियां जुटी हुई थीं. तभी एक काला कुत्ता पिछवाड़े से आया और मुर्गियों पर झपट गया, मुर्गियां पंख फरफराती, कड़कड़ाती तितर-बितर हो गयीं. कुत्ते को रात की वह जूठन चाटने में मिनट भी नहीं लगा.

मूसा बाहर निकला. अपने सिर पर की काली टोपी को उतारकर हाथ में थामे हरि के पास आ गया. उतने सवेरे हरि के उस आगमन पर वह अपनी हैरानी जताता कि इससे पहले हरि ही उससे पूछ बैठा, "क्यों भाई, आज तुम्हें कहीं निकलना तो नहीं है?"

"आज घर ही पर हैं?

"क्यों?"

"बहुत जरूरी काम है तुमसे."

एक राजनीतिक चुहल

□ बलराम अग्रवाल

राज्यों के मुख्यमंत्रियों के एक सम्मेलन में एक मुख्यमंत्री पर कटाक्ष किया गया कि सबसे ज्यादा 'कर' उनकी सरकार ने थोपे हैं.

'थोपने का तो पता नहीं.' जवाब में बोलते हुए संबंधित मुख्यमंत्री ने कहा, 'लेकिन इतना तय है कि सबसे ज्यादा 'कर' इन दिनों महाराष्ट्र में हैं और वहां हमारा दल सत्ता में नहीं है.'

'मसलन?'

'मसलन!...गिनो...' वे उत्साहित स्वर में बोले, 'गावस 'कर', तेंदुल 'कर' अथरे 'कर', अमरापुर 'कर', वेंगसर 'कर'... क्रिकेट जैसे लोकप्रिय खेल में ही कई तरह के 'कर' हैं. उनका तो कोई विरोध नहीं करता!' □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

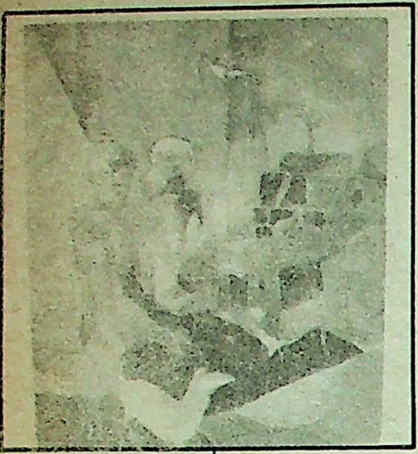

"चाय पीकर आये हो?"

हरि के हां कह जाने पर उसने अपनी बीवी को अपने लिए बाहर ही चाय ले आने को कह दिया. पेड़ के नीचे जो दूसरा पत्थर था वह उसी पर बैठ गया. फिर पूछा, "बताओ अपना जरूरी काम. गास्तों के मामले में मालिक से मिलने का कोई मतलब नहीं है. जब उसने गास्तों के मां-बाप की नहीं सुनी तो हमारी क्या सुनेगा."

मूसा की चाय आ गयी. अपनी बीवी के हाथ से उस गरम गिलास को लेकर मूसा ने उसे अपने दूसरे हाथ में पहुंचाया. उसकी गरमी के कारण गिलास को इस हाथ से उस हाथ को पहुंचाता रहा. हरि ने उसे पहली चुस्की ले लेने दी तब कहा, "हमें एक संघ बनाना है."

"क्या बनाना है?"

"मजदूरों का एक संघ."

"यह क्या होता है?"

"बन जाये फिर देखना."

"चाय की दूसरी चुस्की लेकर मूसा बोला, "मैं समझ गया."

"क्या समझ गये?"

"जिस तरह हिंदुओं की अपनी और मुसलमानों की अपनी-अपनी जमात हैं उसी तरह तुम मजदूरों की भी एक जमात बनाने को सोच रहे हो."

"सोच नहीं रहा हूं, बनाने जा रहा हूं. आज ही तुम्हारी मदद से. बोलो, तुम तैयार हो?"

"पर मजदूरों की यह जमात बनाकर करेंगे क्या?"

"तुम्हारी जो जमात है, उसमें तुम लोग क्या करते हो?"

"उसमें तो हम मजहब की बातें करते हैं. एक दूसरे के दुख-सुख में हिस्सा लेते हैं. बच्चों को पढ़ाते है और...."

"बस! मजदूरों की जमात का मकसद भी यही होगा. मजदूरों के हित, उनके दुख-सुख में भाग लेना उनकी मदद करना, उनमें संगठन लाना."

"अगर ऐसी बात है तो मैं पीछे क्यों रहूंगा?"

कोई दस बजे के करीब हरि उन आठों व्यक्तियों को चान-लोंग की दूकान के पास इकट्ठा करने में सफल हो सका. दूकान की बगल में इमली का पुराना पेड़ था जिसके नीचे जानूभाई हजामत बनाता था. वहीं पर शाम के वक्त गांव के अधेड़ लोगों का जमाव होता था. कभी अखबार पढ़े जाते, कभी गांव की किसी घटना पर बातें होतीं. और जब सुग्रीम चाचा रौब में होता तो आल्हा सुनाने लगता. वैसा न होता तो जानू भाई इर्दगिर्द के लोगों को दुनिया भर की बातें सुनाना शुरू कर देता. वह जिस आदमी के बाल काट रहा था, उसे किसी दूसरे से सुनी अखबार में आयी एक खबर इस तरह सुना रहा था, गोया वह घटना के समय उसका चश्मदीद गवाह रह चुका था. दो-तीन लोग अपनी बारी की प्रतीक्षा में बैठे हुए थे. जानूभाई उन दोनों के साथ दूर तक खड़े-बैठे लोगों को भी अपनी वह कहानी सुनाने के खयाल से जोर-जोर से बातें कर रहा था. इमली के पेड़ से कुछ ही दूरी पर वह गुलैची का पेड़ था जिसके नीचे हरि ने गांव के चुने हुए आठ व्यक्तियों की बैठक बुलायी थी.

जानू भाई के उस तरह जोर-जोर से बातें करने के कारण हरि को अपनी बात रोककर कहना पड़ा, "ए जानू, हम भी जरूरी बात कर रहे हैं तुम जरा धीरे तो बोलो."

कोई घंटे भर की उस बातचीत के अंत में हरि ने अपने आठ साथियों से सवाल किया, "तो हम मान लें कि आज इस गुलैची के पेड़ के नीचे हमने मजदूरों के संघ की स्थापना कर ली?"

सबसे पहले मूसा ने उत्तर दिया, "एकदम"!

बाकी सात व्यक्तियों ने भी हामी भरी.

हरि ने संकल्प भरे स्वर में सभी से कहा, "तो फिर मजदूरों के इस पहले संघ का नाम भी हम रख लें. रामबरण चाचा, आप ही बतायें."

"मैं क्या बताऊं?"

"हमारी इस सभा के लिए एक अच्छा सा नाम."

"तुम जो नाम कहो, वही रखते हैं."

"हम इसका नाम रखते है—उत्तर प्रांत मजदूर संघ."

सभी ने मंजूरी दी ओर जब हरि ने आगे कहा, "इस खुली जगह में हमने अपने मजदूर संघ की नींव तो डाल दी पर आगे की बैठकों के लिए गांव की बैठका की मांग करनी होगी. क्योंकि अब जो काम हमें करने होंगे, उनके सारे निर्णय बंद जगह में होना जरूरी है."

जानू नाई उसी बुलंदी के साथ अपनी ही धुन में अपनी बातें सुनाता रहा.

क्रमशः

अगले अंक में

मालिकों और सरदारों के विरुद्ध मजदूर संघ के संघर्ष का क्या स्वरूप रहा? ... कितनी सफलता मिली इसमें हरि और उसके साथियों को? ... और क्या नयी समस्याएं खड़ी कीं मालिकों ने? ... इन्हीं और ऐसे ही सवालों के जवाब ....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्पना के पंखों पर

छोटी-सी यह कथा आपके विवेकजनित कुतूहल को जगाए तो संभावना है कि आपका इन कथा-पात्रों से कुछ निकट का नाता बने ...

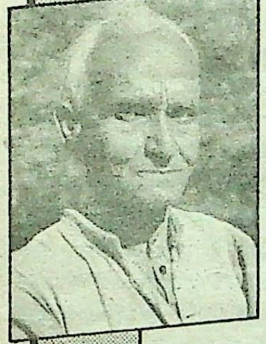

□ रावी

वरिष्ठ कथाकार रावी ने पंद्रह वर्ष की उम्र से ही कविता, डायरी, कहानी लिखना शुरू कर दिया था. तब से निरंतर लिख रहे हैं. पच्चीस से भी अधिक पुस्तकें प्रकाशित व चर्चित.

संप्रतिः स्वतंत्र लेखन

संपर्कः नया नगर, पोस्ट कैलास, आगरा (उ.प्र.)

नाम उसका दीपमाली, आयु पंद्रह वर्ष. उन दिनों एक हाईस्कूल में कक्षा 10 की छात्रा; और इसका रॉनू, आयु अठारह वर्ष, एक कालेज में कक्षा 11 का छात्र. पड़ोस के नाते परिचय और कुछ आना-जाना भी था. हिंदू वर्ण व्यवस्था के हिसाब से दोनों की जातियों में कुछ अंतर था.

एक दिन एकांत में रानू ने उससे कहा, ''दिम्मो, तुम्हारे पिताजी वर की तलाश में हैं. मैं भी कोई अच्छा-सा तुम्हारी जाति का लड़का खोजकर बताऊं?''

इस पर उसका चेहरा एकदम उदास हो गया, आंखों में आंसू भर आये और बरसने से पहले ही वह भागकर दूसरे कमरे में चली गयी.

बीस वर्ष बाद, संयोगवश इसकी उससे फिर भेंट हुई. वह अब एक स्कूल में अध्यापिका थी. बहुत थोड़ी बातचीत हुई. छात्राओं और पड़ोस के लड़के-लड़कियों की वह अब 'दीदी' थी. बाद में ऐसा कुछ सुनने में आया कि उसका विवाह हुआ, एक बच्चा भी, और विवाह के छह वर्ष के भीतर ही उसके पुत्र और पति की एक यात्रा दुर्घटना में मृत्यु हो गयी.

अगले बीस वर्ष बाद, एक रेलवे स्टेशन पर इन दोनों की फिर भेंट हुई. छात्राओं का एक झुंड उसे भेजने आया था. अब वह पचपन की थी और वे लोग उसे 'दीदी मां', कहकर पुकारतीं थीं. दोनों ने देखते ही एक दूसरे को पहचान लिया. रानू ने 'दीपा' संबोधितकर उसे हाथ जोड़कर और फिर एक हाथ उठाकर नमस्कार किया. उसने भी करबद्ध सिर झुकाकर इसे प्रणाम किया. ट्रेन आ रही थी, बात कुछ नहीं हुई, आवश्यक भी नहीं थी.

लेकिन बातचीत भरपूरी हुई. इन पंक्तियों के पाठक-पाठिकाओ आप कल्पना कर सकें तो करें कि बात कितनी हुई.

बीस वर्ष और और बीतने पर पिछले ही दिनों, उसके घर पर तीसरी बार दोनों की भेंट हुई क्योंकि वह होनी ही थी. घर उसका निजी था, एक-दो नौकर-नौकरानी तथा एक जोड़ा गोद लिया बेटा और बेटी भी उसके घर में थे.

दिम्मो जब चौदह की थी तब रानू के साथ उसका केवल एक चुंबन का आदान-प्रदान हुआ था. उस चुंबन की पकड़ और गहराई कितनी थी, बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिकों के लिए भी उसका मापना संभव नहीं है.

इस बार दोनों के बीच खूब घुलमिलकर बातें हुईं और जो निर्णय लिये गये उनकी पूर्ति के लिए दोनों मिलकर अब साथ रहने लगे हैं.

लेकिन यह अभी आधी मंजिल तक पहुंची कथा आपके लिए नीरस और निरर्थक है, यदि यह आपके वैयक्तिक और विस्तृत पारिवारिक जीवन से पूरी तरह संबद्ध न हो. दिम्मो 15 से 75 की उम्र तक पहुंच गयी है और रानू उससे तीन वर्ष बड़ा भी है, पर वह, एक अन्य गणना के अनुसार बराबर 18 वर्ष का ही है और दिम्मो भी 15 की ही. गुह्य इतिहास और ज्योतिष विज्ञान के शास्त्रों के अनुसार यह बात हम आपको फुर्सत से हमारे पास बैठने पर दिखा सकते हैं, और जानने के लिए उत्सुक पाठिकाओं का दिम्मो से और पाठकों का रानू से प्रत्यक्ष साक्षात्कार भी करा सकते हैं. यदि वे हमारे साथ कल्पना के पंखों पर कुछ लंबी दूरी तक उड़ने में सक्षम भी हों.

दिम्मो और रानू की दूसरी, तीसरी और चौथी भेंट बीस-बीस वर्ष के अंतराल से हुई हो या कुछ कम, दस-पंद्रह के अंतराल से, दिम्मो इस समय 75 की हो या 75 और 50 के बीच किसी आयु की, उसकी जीवन कथा कथित विवरण से कुछ भिन्न भी हो तो भी उसकी व्यापक वास्तविकता में कोई अंतर नहीं पड़ता. कथाओं की अपेक्षा इतिहास में ऐसी ढीलें अधिक चलती हैं. दिम्मो और रानू का इतिहास के निर्माण में महत्वपूर्ण स्थान रहा है और भविष्य के निर्माण में और भी अधिक महत्वपूर्ण होने वाला है.

यह दुरुह-सी लगनेवाली इतनी-सी कथा आपके विवेकजनित कौतूहल को जगाये तो संभावना है कि आपका इन दोनों से कुछ निकट का नाता हो और इनके प्रत्यक्ष संपर्क में आकर आप भी आज से प्रारंभ भविष्य में कुछ महत्वपूर्ण कार्य करने की स्थिति में आ गये हों. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीपिका

हृदय में उठते युद्ध को तो हम आधुनिकता के कृत्रिम साधनों से झुठलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन में उमड़ते महासागर का हाहाकार क्या रोकने से भी रुक पाता है ...?

□ परेश

अपनी पीढ़ी के महत्वपूर्ण कथाकार रचनात्मक अनुभव के विषय में परेश का कहना है—मूलतः यह मन का एक धुंधला भय है, जिसे हम छेनी, शब्द, रंग या रेखा के माध्यम से मूर्त करते हैं. भय से छूटने का और कोई उपाय नहीं है, इसके अतिरिक्त कि हम उसे आकार देकर देख सकें कि भ्रम और सही का अंतर कितना है.

संपर्क: 1217/8 सी, चंडीगढ़

सुबह एक बड़े आकार के बोइंग ने बिल्कुल छत पर आकर जैसे अपनी उड़ान को बिल्कुल स्थिर कर लिया—एक जानवर की तरह जो किसी निश्चित लक्ष्य पर उतरने के लिये हाथ-पांवों को सिकोड़कर चौकन्ना हो जाता है. खिड़की का पर्दा वापस खींच दिया. उसकी कर्णबेधी आवाज से टी.वी. पर आते 'रामायण के सीरियल के युद्ध-संगीत की ध्वनि बिल्कुल दब-सी गयी थी.

हृदय में उठते युद्ध को हम आधुनिकता के कृत्रिम साधनों से झुठलाने की कोशिश करते हैं, लेकिन मन में उमड़ते महासागर का हाहाकार रोके नहीं रुकता. सीरियल में राम एक बार फिर युद्ध को टालने की किंचित् कशमकश दिखाते हैं. लक्ष्मण ही नहीं, दर्शक भी क्रोध में आकर यह बोलने लगता है कि भगवान अब और सहन नहीं होगा-आक्रमण कर दो. वत्सल ईश्वर फिर भी अपने मन के कोने में दबी करुणा और क्षमा के वश कहते हैं कि किसी जन्म में यह भी मेरा सेवक रह चुका है, किंतु अहंकार और अज्ञान के वश रावण की तरह आचरण कर रहा है. एक 'फ्लैश' सीता बनी 'दीपिका' का दिखाते हैं—जिसमें युद्ध के टलने की एक ही प्रपत्ति कि सीता मान जाये, सुनकर उसके होंठ कांपने लगते हैं—आंखों में पानी भर आता है. क्या एक स्त्री की देह के लिये रावण उतने लोगों की बलि देने जा रहा है. क्या देह देकर निरपराध राक्षसों के परिवारों की रक्षा की जाये. नहीं, वृहत्तर मूल्य की रक्षा के लिये, स्त्री के शील की रक्षा के लिये कितना भी विराट् नरसंहार छोटा है. मेरा मन कहता है, सीता देह नहीं, प्रेम की दीपशिखा है. इसे बुझने नहीं देना है. इसे आलोकित रहना है. राम के हृदय में यह अखंड आलोक कभी बुझेगा नहीं. जगत में देह-धारिणी सीता केवल भीतर की आलोकशिखा की प्रतिमूर्ति है.

'युद्ध'—अंततः सुग्रीव को आदेश देना ही पड़ा. 'युद्ध'—कैलाश पर कैलाशपति ने विस्मय से आंखें खोलीं. 'युद्ध'-देवाधिदेव इंद्र ने समस्त देवताओं को भाग लेने का आदेश दिया. 'युद्ध'—तपोवन में रहते तपस्वियों ने मनःचुक्षओं से देखा. 'युद्ध'-'युद्ध'—निरंतर मन में हाहाकार करता युद्ध दांपत्य में अर्थ-भार से चीखते पति-पत्नियों का आपस में युद्ध. पुरानी प्रेमिकाओं-प्रेमियों की निरंतर स्मृति से उठता मौन द्वंद्व. अचाहे आये अतिथियों से चिड़चिड़ा हुआ मन. छात्रों के झुंड में बेरोक टोक बढ़ती काम-पिपासा के सार्वजनिक प्रदर्शन से मन में कई दिनों से उठती उदासी और खीझ. एक असहाय और अपमानित-सी स्थिति. प्रांत में कितना अधिक खून-खराबा, कैसी बेबसी, कैसी दुरभिसंधि. पर्दे के पीछे राजसत्ता के हाथ क्यों बंधे हैं, कोई नहीं जानता.

घर से बाहर बहुत ही खिन्न मन लिये निकलना हुआ. एक शिव-भक्त मित्र पड़ोस में रहते हैं. उन्होंने बिना मेरे मन की भावना देखे 'नमःशिवाय' का कार्ड हाथ में थमा दिया कि अपने ड्राईंग रूम में लगा दूं. क्या नरसंहार बहुत समीप है? हो तो रहा है रात-दिन. मन में कितना तो युद्ध चल रहा है. दांपत्य की बेड़ियों में पति-पत्नी रात-दिन तिलमिलाते रहते हैं, कितनी तो हिंसा हो रही है. पड़ोसी दंपति दरवाजे तक छोड़ने आये. नमस्कार करते समय टन्न से सोटी सिर पर जमा ही दी, "बहनजी को भी साथ लाया कीजिये.

'बहनजी!.... ईश्वर ही बचाये. और युद्ध किससे चल रहा है."

उनसे विदा हो लोकल बस के स्टाप तक आ गया किंतु उनका ड्राईंग रूम मन से उतरा नहीं. वे वहां अकेले ही बैठे थे. थोड़ी देर पहले देखे 'सीरियल' में डूबे थे कि 'राम' के माध्यम से प्रोड्यूसर ने बहुत-सी ज्ञान की बातें कही हैं. वस्तुतः यह सब 'काम' पर 'अध्यात्म' की विजय है—उन्होंने पत्नी को चाय के लिये कहकर अपने विरेचन को विराम दिया.

उनकी बात से थोड़ी तसल्ली हुई. पत्नी-पुत्र में भी अधिक न उलझना चाहिये. सब एक 'सीरियल' है. टी.वी. देखकर बंद कर देने जैसी ही तटस्थता रखनी चाहिये. संयोग से कोई पुत्र बन गया है, कोई

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

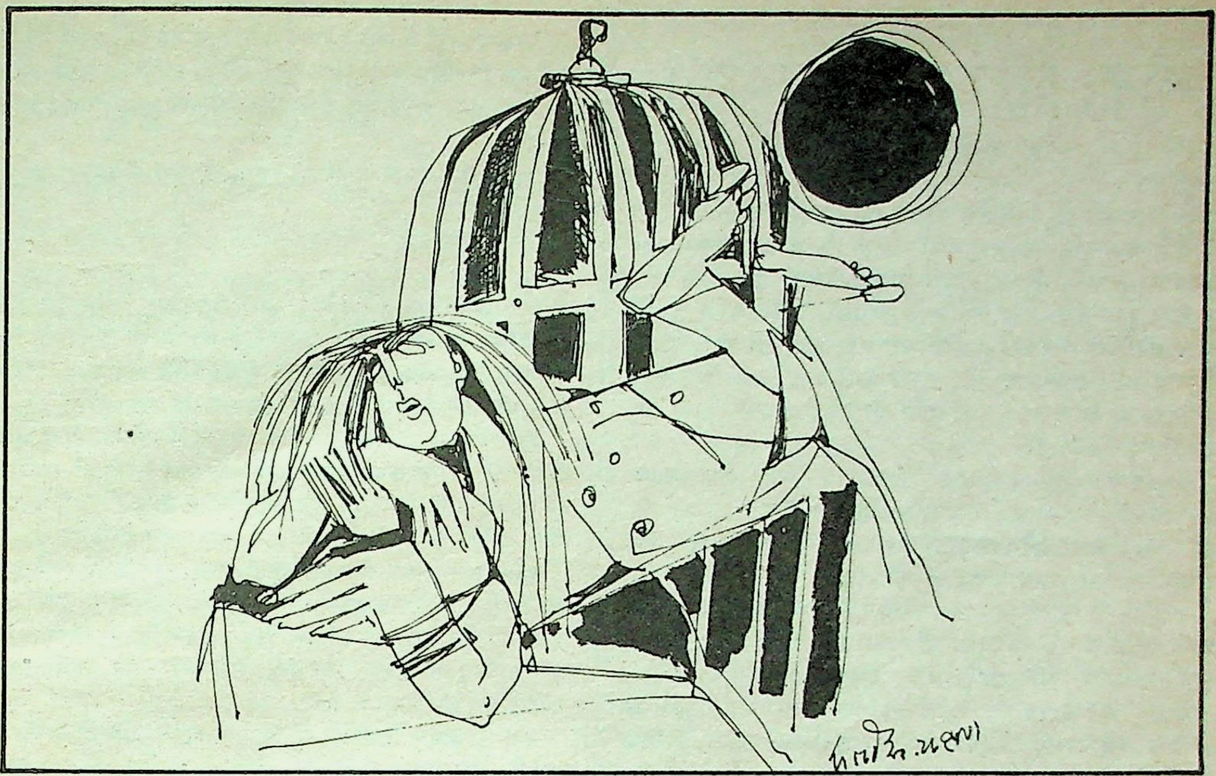

पत्नी. वस्तुतः सबकी यात्रा अलग-अलग है.''

मैं इस भरोसे उनसे मिला था कि इनके घर में तो प्रेम होगा, कलह न होगी. कलह तो नज़र नहीं आयी. लेकिन उनकी शिव-भक्ति भी मुझे तो उनकी अपनी सीता से झगड़ा न हो जाये, का ही एक उपाय लगी.

बस देर से आयी. विश्वास था—कंडक्टर 50 पैसे वापस न करेगा. ऐसा ही हुआ. किंतु यह देखकर आधी तसल्ली हुई कि उसने टिकिट वापस न लिया. छुट्टी वाले दिन उन्हें कुछ अतिरिक्त पैसों की जरूरत होती है. पंद्रह सैक्टर की लायब्रेरी पर उतरा. बाहर किसी पुस्तक प्रदर्शनी के पोस्टर लगे हुए थे. इच्छा न थी कि प्रदर्शनी देखेंगे. नाम मात्र की होगी. आकर्षण आजकल देश की राजधानी में होते 'पुस्तक-मेलों' का नहीं होता. यहां इस छोटे संस्करण में क्या धरा होगा. किंतु वाचनालय-कक्ष में पुरानी पत्रिकाओं के व्यंग्य-विशेषांकों के अतिरिक्त कुछ भी नजर नहीं आया. मनुष्य ऊपर से ही बन-संवरकर रहता है. इसमें संदेह नहीं कि उसका भीतरी चेहरा वैसा ही है—जैसाकि कार्टूनिस्ट बनाते हैं. सारे पेज टेढ़े-मेढ़े चेहरों से भरे हुए. प्रदर्शनी में आक्सफोर्ड से छपी किपलिंग की कहानियों के दो भाग नजर आये. शिलिंग य पाउंड में छपी कीमत से अनुमान न हुआ कि भारतीय मूल्य कितना है. कुछ क्रूर मुद्राओं में बैठे पुस्तक-विक्रेताओं से पूछने का साहस नहीं हो रहा था. एक-दो महिलाओं के आगमन से उनकी मुद्रा कुछ बदली तो साहस कर पूछा.

''दोनों का डेढ़ सौ रुपया.''

''एक?''

कमीशन काटकर आपको 67 रुपये में पड़ेगा.'' जेब में दस का एक नोट था जो पत्नी से झगड़कर जीता था, इस ताने के साथ आज तो अपनी बदबू से सनी रोटियों से मुक्ति दो. कहीं दोसा खा लेने दो.

लायब्रेरी जल्दी ही बाहर आना हुआ, सो दोपहर की भूख अभी न लगी था. स्नान-ध्यान भी बाकी था. मन हुआ, क्यों न घर चलकर पत्नी को चकित किया जाये. कसाई घर को जाते गरीब मेमने से दस के नोट का खयाल आया. कंडक्टर फिर 50 पैसे के बजाय एक रुपया काट लेगा और इतने बड़े नोट के लिये बहुत कुछ अपमानजनक कहेगा.

किसी तरह दूसरी तरफ के बस स्टाप पर गया. छुट्टी का दिन होने से जल्दी बस आने की उम्मीद न थी. एक महिला ने निराशा से मुझसे समय पूछा और हताश भाव से पैदल ही एक ओर को चल दी.

जाने मुझमें साहस जैसे भाव का उदय अचानक क्यों हुआ. इसी स्टाप पर कुछ समय पूर्व नगर-पुलिस ने दो खूंखार आतंकवादी मार गिराये थे. रसोई जैसे धुएं से अजीब-सी गंध देती है. यहां का कोना भी मुझे कुछ घुटता-सा लगा. तो भी मैं सीमेंट की बेंच पर बैठ गया. बसों के आने-जाने की तरफ से ध्यान हट गया. कुछ समाधि-सी आने लगी. एक बस आंखों के सामने से जा रही थी. नंबर पढ़ा तो चौंका कि यह तो मेरे वाली ही बस थी. लेकिन जाने क्यों किसी क्षति की नहीं बल्कि मुक्ति की ही अनुभूति हुई. तात्पर्य, काल की रस्सी से गर्दन छूटी. कुछ समय निर्बाध बिताया जा सकता था. युनिवर्सिटी कॉफी हाउस में खाद्य पदार्थ सस्ते मिलेंगे—सोच एक रिक्शेवाले को रोका. रिक्शे पर बैठते ही मन और हल्का हो गया. बस और कंडक्टर के आतंक से मुक्ति हुई.

रिक्शा रेस्तरां से कुछ पहले ही रोक लिया. ताड़ के पंक्तिबद्ध पेड़ हवा में फड़फड़ा रहे थे. स्टूडेंट सैंटर एक घनवादी पेंटिंग-सा पूरे खुलेपन में शांत टिका हुआ था. कोई छात्र, वाहन इत्यादि न होने से मन और शांत हुआ. फूल और पार्किंग प्लेस के बीच तारों को हटाकर आने जानेवालों ने छोटा-सा रास्ता बना रखा था. सावधान न रहने से कपड़े उलझते हैं. अचानक पीली कमीज में एक युवा छात्रा आम के घने पेड़ों के नीचे नजर आयी. लगा मुझे ही देख रही है. पूरे परिवेश में वह अकेली पीली पंखुड़ी-सी स्थिर खड़ी थी—एक आलोक शिखा सी. यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वह मुझे ही देख रही थी. इससे सुबह से अभी तक का बना हुआ विषाद अचानक घुलकर साफ हो गया. मन में एक अनजानी खुशी हुई. उसने मुझसे नजरें हटायी नहीं और बिल्कुल पास पहुंचने पर नमस्ते की. मुझे आह्लाद हुआ. मेरी ही छात्रा थी.

''अरे, तम क्या कर रही हो आज यहां, अकेले?'' मैंने कहा.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और, और आतंकवादी

□ जगवीर सिंह वर्मा

तीन सौ के लगभग गांवों के उस तहसीली क्षेत्र में बलात्कार की यह पहली घटना थी. बलात्कृत बालिका बारह-तेरह साल की थी, जबकि बलात्कारी बाइस-तेइस साल का भरा पूरा जवान था. बालिका ब्राह्मण परिवार की थी तो युवक अहेरिया परिवार से संबंधित था. उस गांव में ब्राह्मण परिवार अल्पसंख्यक थे. और छोटी मोटी ज्यादतियां सदा से ही सहते आ रहे थे. मगर यह अनहोनी थी. इस घटना ने सबको बुरी तरह हिला दिया था.

बलात्कारी परिवार आपराधकर्मी था और कुछ स्वजन हिस्ट्रीशीटर भी थे. स्थानीय पुलिस से उनकी मिलीभगत थी. इसी से बलात्कार की प्रामाणिक रपट पर भी उसने गिरफ्तारी विभागीय ऊपरी दबाव पर ही की थी.

मुजरिम तीसरे ही दिन जमानत पर घर लौट आया था. उसने अपने कुछ संगी साथियों सहित वादकारियों, गवाहों को आतंकित करना शुरू कर दिया था. वह लोग फिर वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक की शरण में पहुंचे थे. वहां भरपूर संरक्षण के आश्वासन के बावजूद भी स्थानीय पुलिस की निष्क्रियता ने उनके होश उड़ा दिए थे।

फिर भारी मन और भयभीत हृदय से उन लोगों ने अपनी मान मर्यादा, पीड़ा, मानवता जाति वगैरह का वास्ता देकर पास पड़ोस के आठ दस गांवों के प्रभावी, सम्मानित इंसाफपसंद आदमियों से सुरक्षा की, इंसाफ की, आतंक की समाप्ति की गुहार की थी.

पंचायत में प्रतिवादी पक्ष के बूढ़े, बालक और बेशऊर लोग ही आ पाये थे. बाकी गांव से बाहर चले गये थे. पंचायत ने उन लोगों के इस कृत्य की खूब भर्त्सना की थी और दंड भी निश्चित कर लिया था. यों दंड पुलिस कार्यवाही से बाहर नहीं था. अनेक जगह पुलिस ने बलात्कारी का मुंह काला करके गधे पर बिठाकर जनता के बीच घुमाया था. बलात्कृत परिवार भी ऐसी ही कुछ चाहता था.

उधर बलात्कारी पक्ष ने स्थानीय पुलिस से पंचायत की सूचना देने के संग साथ सलाह भी मांगी थी. पुलिस ने सलाह दी कि गांव में वे एक दो झोपड़ी जलाकर रपट दर्ज करा दें. यदि कोई पंच या पड़ोसी गांव का अलम-बरदार ज्यादा 'नेतागीरि' दिखाये तो उसकी भी नाम घसीट दें, हम सब देख लेंगे.

और गांव में लौटकर शाह गाढ़ी होते ही बलात्कारियों के पक्ष ने एक झोपड़ी में आग लगा दी थी. बाद में बलात्कृत बालिका के पिता की छाती पर अनाधिकृत दोनाली कोंच पर धमकाया था—"खामोश बैठ जा घर, पंच पंचायत या ज्यादा गुल-गपाड़ा मचाया न, तो वह जो छोटी है न, नौ दस बरस की ... समझ ले, उसकी भी यही अंजाम होगा! करता रहना तुझे जो करना है, ऐसा ही एक केस, ऐसे ही दो!"

और तब उस गरीब, निर्बल, बूढ़े और असहाय पिता को सहसा लगा था कि वह आजाद भारत के उत्तर प्रदेश के किसी गांव में न रहकर विदेशी पंजाब के किसी आतंकवादियों द्वारा सताये गांव में रह रहा है ... □

"अकेली नहीं हूं सर! इनडोर गेम्स चल रहे हैं." उसने उत्तर दि
"मुझे बिल्कुल आइडिया न था. यों ही कॉफी के लिये आया ह
"सर, गेम्स में चलिये. हम काफी आपको वहां पिलायेंगे." उ
आग्रह किया.

"नहीं हल्ले-गुल्ले से दूर ही रहूंगा. रेस्तरा में रहूंगा, आना."

"थैंक्यू सर."

"होस्टलर हो न!"

"यस सर!"

लगा कोई दीपक है उज्ज्वल. काली पैंट स्मार्ट, लेकिन बिल्कुल हि हुये कमल-सा चेहरा. बहुत पतले होंठ. लिपस्टिक हल्की-सी. आंखे चमकता हुआ आकाश—जैसे सीप में बंद मोती. संवारी हुई भौंहें. जू आम्र बौर की गंध-तुर्श-हल्की बूंदाबांदी से घुली-सौंधी.

कॉफी से मन और भी खुल गया. गोलाई में बने रेस्तरां में खाली कुर्सी मेजें भी एक कला-दीर्घा का-सा आभास दे रही थीं. कहीं से छ का एक झुंड और आ गया और एक कोने में बैठकर 'हैप्पी बर्थ डे' लगा. जाहिर है 'हैप्पी बर्थ डे' उस दिन उनमें से किसी का न थ

खाद्य सस्ता मिला, लेकिन सत्रह सैक्टरवाली ताजगी उसमें न थी. दस रुपये में से कुछ बचाकर क्या करना था. बस के 50 पैसे रख श रुपये का नोट वेटर को दे दिया. टिप देखकर विपन्न चेहरे के वेटर एक आदरयुक्त सौम्यता आ गयी. मुझे लगा, उसे अपनी हल्दी क कमीज पर थोड़ी शरम आयी.

मुझे भी अपनी किसी-किसी छात्रा से शरम आती है. कभी कोई देती है, "सर आपने कन्वेंस नहीं रखी हुई. कन्वेंस माने कार या स्कू छात्र कब समझेंगे, ये चीजें व्यापारिक तबके के पास होती हैं. दो क का किराया नगर में हजार रुपये हो गया है.

सेंटर से उतरते समय गेम्सवाले छात्रों का झुंड मिल गया. इनफौरमल ड्रेस में देख उनका मन भी प्रसन्न हुआ. संकरे पुल पर से आते एक जोड़े के लिये सिकुड़कर रास्ता देना पड़ा. जोड़ा थोड़ा चला गया तो छात्रों ने समवेत स्वर में गाया, 'लेफ्ट राइट, लेफ्ट रा जाते जोड़े के कूल्हों के उतार चढ़ाव पर. अध्यापक होने के नाते डांटना पड़ा, "यह क्या, तुम लोग जब जोड़ों में घूमते हो तो बाकी फब्तियां कसेंगे."

"सर, ऐसी नोक-झोंक तो चलती ही रहती है."

"अच्छा, 'अब मैं नीचे जाऊंगा, तो मेरे लिये तो नहीं कहोगे— अकेला हूं!"

"मैं आपके साथ नीचे तक चलूंगी." वह पीली कमीजवाली छात्रा गयी थी.

मैंने आभार वाली आंखों से उसकी ओर देखा. एक मामूली-सी ति में भी उसकी ममता है कि उमड़ पड़ी, साहस कि वह यह फब्ती सहने तैयार है, कामना कि आपका साथ दूंगी, आदर कि कुछ न्यौछावर सकती हूं. नारी गुणों की खान होती है. यह नारी केवल आदर की पा इसके शील की रक्षा के लिये कोई भी मूल्य छोटा है. यह आलोक-दि है—यह प्रेम की लौ है. यह राम के हृदय में अखंड जलती है. ऊपर का छाया है. मन में बसी सीता की मूर्ति को कोई छू नहीं सकता. देह- का जिसने अपहरण किया है, उसका विनाश आवश्यक है.

जीवन युद्ध चल रहा है. सूने रेस्तरां को देख मन हुआ था—अपने में बसी प्रतिमूर्ति को भी यहां आमंत्रित करूं—सामने बिठाऊं देखूं—उसकी अभ्यर्थना करूं. कितना कठिन है यह लोक-मर्याद देखते हुए यह कितना असंभव है. मन में बसी मूर्ति को मन में ही पू होगा. दीपिका! तुम्हारी आभार! तुम्हारा मर्यादा की रक्षा हो— लिये रात दिन युद्ध कर रहा हूं देवी! रात-दिन जल रहा हूं—ते तुम्हारे मीठे आलोक में जी रहा हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

डा. बीबर

तर्कबुद्धि यानी रेशनलिज्म, मनुष्य जाति की बदतरीन बीमारी है. 'तर्क' सृजन को बिल्कुल उलट देगा. मानव इतना चतुर हो जायेगा कि वह प्रजनन या खानपान सब कुछ भूल जायेगा. उसे शायद मरना भी सीखना होगा ... एक सशक्त अमरीकी कथा

□ इसाक बाशेविस सिंगर

महत्वपूर्ण अमरीकी लेखक. जन्म: 4 जुलाई, 1904 पौलैंड प्रमुख कृतियां: 'गिंपल द फूल', 'द मैजीशियन ऑफ लुबिन', 'द स्पिनोजा ऑफ मार्केट स्ट्रीट', 'द स्लेव', 'शॉर्ट फ्राइडे', 'इन माई फादर्स कोर्ट', 'द मैनर', 'द एस्टेट', 'अ फ्रेंड ऑफ काफ्का'

अनुवाद : इंदुप्रकाश कानूनगो

वारसा के राइटर्स क्लब में डा. मार्क बीबर को हर कोई जानता था—लंबा कद, चौड़े कंधे, कनपटियों पर भूरे बाल. घनी भौंहों के नीचे उनकी भूरी-भूरी आंखें मदिरा के प्यालों में तिरती छोटी-छोटी चेरी की मानिंद दिखतीं. वे प्रोफेसरी अंदाज में चौड़े किनार की मखमली हैट पहनते. उन्हें अक्खड़ कहा जता, हालांकि उनका जन्म धनी हासिद परिवार में हुआ था. पहली जंग के पहले वे स्विटजरलैंड में दर्शन पढ़ने गये थे. सालों वे बेरोजगार रहे. गैर-यहूदी इलाके में कहीं किसी किराये के कमरे में वे रहते थे.

राइटर्स क्लब के सदस्य चकित रहते, डा. बीबर कैसे बिना कमाये गुजारा चला लेते हैं. अपने पिता की टूटी-फूटी जायदाद से थोड़ा-बहुत मिलता होगा! (उनके पिता मेदेल बीबर ने बड़ी उम्र में उन्नीस बरस की लड़की से विवाह किया था जिससे उनके ग्यारह बच्चे थे.) या फिर वे 'जिगोलो' हैं, बूढ़ी स्त्रियों के संग नाचनेवाले, उन्हीं के सहारे पलते हुए! कुछ सदस्यों को यह पता लगा था कि येशिवा-छात्र की तरह उन्हें रोज-रोज किसी-न-किसी के घर खाना मिल जाता है, पुराने दोस्त और रिश्तेदार दोपहर के या रात के खाने पर, या कभी वारसा और ओटवाक के बीच बने अपने ग्रामघरों में ले जाते हैं. कभी-कभी छुट्टी पर गये पत्रकार या प्रूफरीडर की जगह काम करने का अवसर राइटर्स यूनियन की मेहरबानी से उन्हें मिल जाता.

बहरहाल वे कायम थे, हरदम खुशमिजाज, जीजीविषा से सराबोर भोले-भाले. बढ़िया सिगार पीते. ढीले-ढाले कपड़े पहनते, मगर इंग्लिश ट्वीड के. घंटों स्विटजरलैंड के किस्से सुनाते. वे कई हस्तियों को जानते थे: लेनिन, क्रोपोत्किन, बर्गसां, क्यूनो फिशर, वूंत्द, जार्ज कैसर—राजगद्दी के तथाकथित दावेदारों और राजकुमारों को भी. मांटे कार्लो में उन्होंने घूमते-चक्र पर जुआ खेला था. कालेज के दिनों में उन्होंने प्रशियन सामंतों के साथ मिट्टी के प्यालों में छककर बीयर पी थी और शायद द्वंद्व-युद्ध में किसी के बदले खुद खड़े हो गये थे. विचार और कर्म से वे भोगवादी थे. राइटर्स क्लब के सदस्यों को उनकी डाक्टर की उपाधि पर संदेह होता. उन्होंने कोई शोध निबंध नहीं लिखा मगर जर्मनी के सारे दार्शनिक आंदोलनों की जानकारी उन्हें थी. वे स्वयं को आनंदवादी मानते, फिर भी डेविड ह्यूम, कांट और शापेनहावर के विचारों की कद्र करते. उन्होंने अपने मित्रों, प्रोफेसर मेस्सेर और पोफेसर बॉश की लिखी किताबें मुझे दीं. दोनों लेखक कांट के अनुयायी थे. किताबों पर बर्न विश्वविद्यालय लाइब्रेरी की मुहर थी.

वे मुझसे बीस बरस बड़े थे, फिर भी हम दोनों मित्र थे. मैं उन्हें 'आप' कहता, वे मुझे 'तुम'. उन्होंने मेरा नाम त्सुत्सिक (पप्पी) रख दिया था. वे कहते, ''खूब लिखो, त्सुत्सिक. मैंने कोशिश की लेकिन संयम नहीं है. जैसे ही पेन उठाता हूं, टेलीफोन खनखनाता है. कलम घिसने में दिलचस्पी नहीं रही. और फिर कौन पढ़े इतनी सारी किताबें? मर्जी से खाता हूं, मर्जी से पीता हूं. स्त्रियां अनेक मिल ही जाती हैं.''

वे सच बोल रहे थे. तलाकशुदा, विधवा, अविवाहिता और मोहब्बत की तलाश में घूमती अन्य स्त्रियों से दोस्ती करने में वे माहिर थे. राइटर्स क्लब में प्राय: उनके लिए फोन आते रहते. रोमांटिक, बातूनी स्त्रियां उन्हें बेचैन करती रहतीं. उनमें से उन्हें चुन लेते जिनके लिए जैसा वे कहते, 'भूमिका और उपसंहार' की जरूरत न थी.

मेरी आय उन दिनों बढ़ने लगी थी. मैंने यिद्दिश प्रेस के लिए थामस मान की 'द मैजिक माउंटेन' और कुछ अन्य जर्मन उपन्यासों का यिद्दिश में अनुवाद किया था. कभी-कभी मैं डा. बीबर को दोपहर के खाने पर बुलाता. वे किसी बढ़िया मदिरा का नाम लेते और कई तरह के खाने का आर्डर देते. मेज पर आया सारा खाना फटाफट खा जाते. खाने के दौरान सिगार पीते-पीते अनेक किस्से सुनाते. उन्होंने लंबी यात्राएं की थीं, यूरोप की लगभग सारी राजधानियों में रह चुके थे यिद्दिश के अलावा जर्मन, रूसी, फ्रांसीसी और इतालवी भाषाएं जानते थे. हिब्रू भी. छुटपन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वे येशिवा में पढ़े. कुछ समय पहाड़ चढ़ना सीखा. उन्होंने अपनी आल्प्स की चढ़ाई का वर्णन सुनाया. उनके सारे किस्सों का एक ही निष्कर्ष निकलता : सब मिथ्या है, सभी दार्शनिक गलत हैं, सारे आदर्श खोखले और कपटी हैं.

जैसे-जैसे समय बीतता गया, वे प्रायः बिगड़े मूड में दिखाई देने लगे. अपनी समस्याएं बताते—बूढ़े होते जा रहे हैं, सारे अवसर गवां दिये. बीमार और कमजोर रहने लगे हैं. डाक्टर ने हृदय के अंदर चर्बी बढ़ जाने का रोग बताया है, सिगरेट, शराब और चर्बीयुक्त खाने पर पाबंदी लगा दी है. ज्यादा इश्कबाजी के विरुद्ध भी खबरदार कर दिया है. कहते हैं अब उन्हें आत्मा की शांति चाहिए. लेकिन शांति मिले कैसे, जब हर सवेरे एक ही सवाल मंडराये-दिन कैसे गुजरेगा. सबसे ज्यादा सताती उनकी बढ़ती उम्र. सारे बाल सफेद हो जायेंगे तब क्या करेंगे? कौन उनकी चिंता करेगा? बीमार हो गये तो क्या होगा? किसी अस्पताल में उपेक्षित पड़े रहेंगे. उन्होंने परिवार त्याग दिया, परिवार ने उन्हें त्याग दिया, अपने ही भाई-बहिन सड़क पर अजनबी-से चले जाते हैं.

उनके बाल पकने लगे. पहनावा लापरवाह रहने लगा. लंबे अंडरवियर की नाड़ियां पेंट के नीचे से निकलती हुई जूतों तक चली जातीं. सस्ती, बदबूदार सिगार पीने लगे. खाते वक्त कपड़ों पर छींटे उड़ जाते. उनके किस्से और मजाक पुराने पड़ने लगे. यदि वे स्वयं को ठीक से व्यवस्थित न कर पाये तो बिलकुल बिखर जायेंगे. एक दिन मैंने कह दिया, वारसा में कुछ एजेंट हैं जो ठीक जोड़ा-बिठा देते हैं.

धुएं के छल्ले उड़ाते, शरारती नजरों से उन्होंने मेरी ओर देखा. "रहने दो त्सुत्सिक. अभी मैं इतना नहीं गिरा हूं."

मैं कुछ दिन बाल्टिक समुद्र किनारे एक गांव में छुट्टियां मनाने चला गया. लौटा तो पता चला डा० बीबर ने शादी कर ली. दूसरे दिन उनका फोन आया. फोन पर पहले कभी उनसे बात नहीं हुई थी, आवाज जरा भी पहचान में नहीं आयी.

"त्युत्सिक", वे बोले, "मैं तुम्हें ही खोज रहा था. मैंने तुम्हारी सलाह मान ली. इस वक्त तुम वारसा के एक भद्र नागरिक से बात कर रहे हो."

"माशा अल्लाह! यह तो बढ़िया खबर है. बहुत अच्छा किया आपने."

"एकाएक हो गया. किसी ने यूं ही पहचान करा दी और बात बन गयी. तुम तो जानते हो, खूब देर तक बात खींचना मुझे पसंद नहीं. तालमुद में किसी स्त्री से ज्यादा बात करने की पाबंदी है, यानी सिर्फ हां ना तक ही महदूद रहो. मेरी पत्नी बुर्जुवा है लेकिन भली है, मुझसे ज्यादा ऊंची क्लास पढ़ी है—हायर सेकेंडरी! दिखने में बुरी नहीं है. मुझसे बहुत प्रेम करती है. इस उम्र में और इस स्थिति में मैं अधिक क्या अपेक्षा करता? अब मेरा एक घर है—सारी दुनिया. यकीन नहीं होता मैं कभी बेलगाम था. सच में बड़ी मजबूत काठी का रहा होगा! ठहरो जरा—साल्त्शे से बात करो. वह तुम्हें जानती है. मैंने तुम्हारी एक कहानी उसे पढ़ने को दी थी. उसे बहुत पसंद आयी. लो, बात करो."

फोन में ठेठ पोलिश-यिद्दिश उच्चारण सुनाई दिया—"त्सुत्सिक यही नाम है ना? बड़ा सुंदर. मुझे साल्तशे कह सकते हो. मार्क ने मुझे बताया है. उसके दोस्त मेरे दोस्त. शादी में शामिल होते बड़ी खुशी होती. बड़ा अफसोस रहा. तुम्हारी कहानी पढ़ी. बहुत बढ़िया. आज शाम कहीं जाना तो हो नहीं है?"

"कोई जरूरी नहीं."

तब तो खाना हमारे यहां. मना मत करना भाई. ये तो हमेशा तुम्हारी बातें करते हैं. सारी शरारतों की पोल खोल रखी है. तुम्हारी प्रतिभा का बड़ा आदर करते हैं. कब तक आ सकते हो? जल्दी क्यों नहीं? हमारा काफी बड़ा अपार्टमैंट है, सब सुविधाएं हैं, रात रुकना चाहो तो अलग कमरा है. मार्क तो तुम्हें गोद लेने की बात करते हैं."

शाम छह बजे, दाढ़ी बना, बाल संवार मैंने बढ़िया सूट और टाई पहनी. दुकान से गुलाब का गुलदस्ता बनवाया और ड्रास्की किराये की. बीबर दंपत्ति ईसाईयों और यहूदियों के संपन्न इलाके में रहते थे. उनके अपार्टमेंट तक एलिवेटर था. शीशम के ऊंचे दरवाजे पर नेमप्लेट थी—'डा० मार्क बीबर'. दरवाजा एक भद्र नौकरानी ने खोला. बीबर और उनकी पत्नी ने स्वागत किया. साल्त्शे चवालीस-पैंतालीस की होगी, ठिंगनी, सांवली, फूला वक्षस्थल और बड़ी-बड़ी काली आंखें—अनमनी हंसमुख यहूदी आंखें, यहूदी निर्वासन जितनी पुरानी. उन्होंने अपना हाथ इतना आगे बढ़ाया जैसे गले-लगना चाहती हों. नौकरानी को गुलदस्ता देते हुए उसे फूलदान में रखने को कहा. उनकी गोल-मटोल गर्दन पर मोतियों की माला झूल रही थी. बायें हाथ की उंगली में हीरे की अंगूठी चमक रही थी.

डा० बीबर रंगबिरंगा आसमानी जैकेट और स्लिपर्स पहने थे, जवान दिखाई दे रहे थे, झुर्रियां गायब थीं, आंखों के नीचे के काले घेरे नदारद थे, सफेद बाल काले हो गये थे. उनकी सिगार एक एंबर होल्डर में खुंसी हुई थी. घनी भौंहों के नीचे आंखें शरारत से भरी थीं. "साल्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये है त्सुत्सिक.''

''मे आई किस हिम?''

''जरूर, जरूर.''

बैठक में सब कुछ सलीके से सजा था, कालीन, कुर्सियां, सोफा, दीपदान और चित्र. कुछ समय बाद हम डाइनिंग-रूम में थे. कांच की एक विशाल अलमारी चीनी और चांदी के बर्तनों से भरी थी. डा० बीबर को धनी स्त्री मिल गयी थी. एक भौंह तानकर वे मुस्कराये. ''देख लो, मेरी जिंदगी बदल गयी है. अब मैं फटेहाल नहीं हूं.''

''गरीब बने रहकर दुख झेलने से क्या फायदा?'' साल्त्शे ने कहा, ''मार्क जैसे आदमी को तो किताबें पढ़ने-लिखने का काम करना चाहिए, किसी अटारी में पड़े बरबाद क्यों हों? जब मैंने उनका कमरा देखा तो गश आ गया. मैंने उन्हें वहां से सिवाय उनकी पांडुलिपियों के और कुछ भी लाने नहीं दिया. इतना प्रतिभाशाली पुरुष अपने ही बारे में इतना लापरवाह? ओह, लोगों को खुद पर ही दया नहीं आती! अब तक तो वे बिलकुल चूर-चूर हो चुके होते. त्सुत्सिक, तुम तो अभी जवान हो. भला पाठ सीख लो—शादी कर लो, घर बसा लो. अपने मित्र के कदमों पर मत चलो. खाली पेट भजन नहीं होगा. आखिर इनकी जिंदगी सुधर ही गयी. अब तो अपने कमरे में दोपहर तक जमे रहते हैं. उन्हें कोई परेशान नहीं कर सकता. टेलीफोन मैं संभालती हूं. अभी तक उनके संबंधी दूर-दूर छिटके रहते थे, एकाएक सारे भाई-बहिन, चाचा-मामा दौड़े आये. उनसे बचना होगा. सच्चा दोस्त वही जो वक्त पर काम आये, वह नहीं जो अवसर देख लाभ उठाने आ पहुंचे. इसलिए त्युत्सिक ...''

''बस, बहुत है साल्त्शे. रसोइया से कहो मेहमान के लिए बढ़िया खाना लगाये.''

''क्यों, चिंता क्या है? उसे इतनी भूख तो नहीं लगी होगी?''

साल्त्शे ने सुनहरी घंटी खनखनायी. सफेद लिबास और टोपी पहने रसोइया दरवाजे पर खड़ी हुई. नौकरानी तो एक है ही, अलग-से रसोइया भी, वास्तव में रईस हैं! खाने में उस रात क्या नहीं था! मसालेदार मछली, खट्टी-मीठी चटनी, पनीर, कोफ्ते, बिरयानी. डा० बीबर बड़े चाव से खाना खा रहे थे. वे तरह-तरह के पकवानों की ओर इशारा करते रहे और उनके नाम और बनाने की विधि बतलाते हुए मदिरा की चुस्की लगाते गये.

''ये मुझे नौ से दो बजे तक बंदी बनाये रखती हैं,'' उन्होंने कहा. ''मैंने कुछ पुरानी पांडुलिपियां पढ़ीं. एकदम चौंक गया. उन दिनों का लिखा आज बड़ा बेरंग लगा. लगता है अब स्मृति चल दी. और फिर ठीक से जर्मन समझ नहीं पाता. हिब्रू जमती नहीं—उसमें आधुनिक जीवन-दर्शन की शब्दावली नहीं है.''

''यिद्दिश में लिखिये ना.''

''किसके लिए? येशिवा छात्रों के लिए? खैर, कुछ न कुछ तो करूंगा. दरअसल, अब किसी बात का एतबार नहीं रहा. मुझमें लेखक बनने का दृढ़ संकल्प नहीं है.''

''बहाने खोजो हजार हैं,'' साल्त्शे ने कहा. ''लगातार लिखते जाओ देखो सब अपने आप ठीक हो जायेगा. मूढ़ और अज्ञानी भी प्रसिद्ध हो गये हैं, मगर काम से जी चुराने वाला कभी नहीं पनप सकता चाहे कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो. मैं जर्मन पढ़ लेती हूं, समझती हूं. इनका लिखा हर वाक्य जबर्दस्त है. ये प्रतिभावान हैं, एकदम माहिर हैं.''

''कुछ मीठा भी बनाया है ना?'' डा० बीबर बोले.

''रुको जरा. आता ही होगा. और कुछ लो त्सुत्सिक. तुम्हें त्सुत्सिक कहती हूं, बुरा मत मानना. बहुत मीठा नाम है. मेरे पिता, ओह मेरे पिता, मेरे भाई को इसी नाम से पुकारते थे. दोनों ही नहीं रहे.'' साल्त्शे ने रेशमी रूमाल से आंसू पोंछा.

उस शाम जिस तरह बातचीत चली, मुझे लगा मैं बीबर दंपत्ति के घर अक्सर जाता रहूंगा. वहीं खाऊंगा, सोऊंगा, लिखूंगा. लेकिन हफ्तों, महीनों नहीं जा पाया. बीबर और साल्त्शे ने कई बार टेलीफोन किया, खाने पर बुलाया, लेकिन या तो मैं व्यस्त था या फिर भारी खाना खाने और रात देर तक बैठने का मूड ही नहीं बना. डा० बीबर ने राइटर्स क्लब आना छोड़ दिया. लोग कहने लगे घमंडी हो गये हैं.

एक दिन डा० बीबर फोन पर बोले, ''त्सुत्सिक, मुझे भूल गये, यार.''

''नहीं जनाब. आपको कैसे भूलूंगा! कैसे हैं?''

उन्होंने लंबी सांस ली. ''लोग मुझसे द्वेष करने लगे हैं,'' वे बोले, ''सोचते हैं, मुझे खजाना मिल गया है. ऐसा लगता है राइटर्स क्लब में मेरी बड़ी चर्चा चलती है. दरअसल, जो कुछ हुआ उसका मुझे अफसोस होने लगा है.''

''क्यों, क्या बात है? आप दोनों के बीच सब ठीक तो है ना?''

''बहुत ज्यादा ही ठीक है. लेकिन उससे मुझे ऊब हो गयी है. वह मुझे अमर बनाने पर तुली हुई हैं. त्सुत्सिक, तुम जानते हो, मुझे कोई भ्रम नहीं है. एकाधी किताब छप जाये तो क्या? कौन पढ़ेगा? आज ही मैंने श्लीएरमाचीर पर निबंध लिखा. किसे परवाह है श्लीएरमाचीर की?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घटना-कथा

बदलते जीवन मूल्य

□ मनोरमा भटनागर

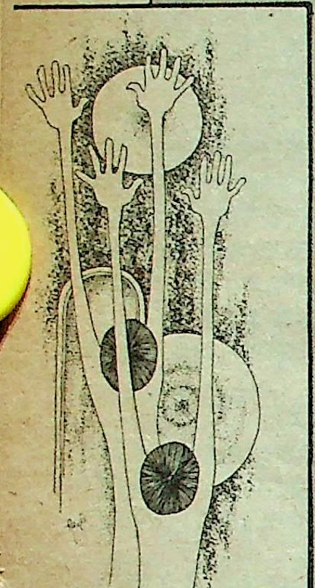

इलाहाबाद लखनऊ से आनेवाली एक ट्रेन में एक संभ्रांत दंपत्ति अपने सात-आठ साल के बेटे के साथ फर्स्ट क्लास के एक कंपार्टमेंट में सवार हुए. उन्होंने कंडक्टर से कहा, "कृपया हमारे बेटे का लखनऊ से सहारनपुर तक का टिकट बना दीजिए. हम इसका टिकट जल्दी में ले नहीं पाये.

कंडक्टर 'अच्छा बना दूंगा.' कहकर चला गया पर सारी रात वापस नहीं आया. फिर प्रातः जब गाड़ी लक्सर पहुंचकर रुकी तब कंडक्टर आया और उनके टिकट चैक करने के बाद कहने लगा कि बच्चे का टिकट इलाहाबाद से सहारनपुर तक पेनल्टी के साथ बनेगा इसने बिना टिकट सफर किया है."

बच्चे के पिता ने कहा, "हमने आपसे लखनऊ में ही इसका टिकट बनाने को कहा था."

"मुझे क्या पता यह इलाहाबाद से बैठा या लखनऊ से," कंडक्टर की दलील थी, "आपको इलाहाबाद से सहारनपुर तक का ही टिकट पेनल्टी देकर लेना पड़ेगा."

ऊपर की बर्थ पर एक सज्जन बड़ी देर से इनकी बातें सुन रहे थे. उनसे चुप न रहा गया. नीचे उतरते हुए वे|से बोले,

"कृपया मेरे सामान का ध्यान रखिएगा, मैं अभी दस मिनट में वापस आ रहा हूं." और चले गये.

वे थोड़ी देर बाद लौटे और बच्चे के पिता को एक टिकट लक्सर से सहारनपुर तक का थमाते हुए कंडक्टर से बोले, "यह बच्चे का टिकट है, बच्चा तो लक्सर से बैठा है, अब आप चाहें जो करें." बच्चे के माता-पिता ने कृतज्ञता से उनकी ओर देखा. उधर कंडक्टर को इस तरह मुंह की खाने और रिश्वत न ले पाने की ऐसी निराशा हुई कि वह लज्जित होने की बजाय विवेकहीन होकर बड़बड़ाता हुआ चला गया. □

सुबह से रात तक वह मुझे बांधे रखती हैं. खाने के बाद एक घंटा सोना पड़ता है, खाना पचाने के लिए. रसोइया संसार का आठवां अचंभा है. इतना बढ़िया खाना बनाता है कि जबान ललचायी रहती है. इतना ठूंस लेता हूं कि पेट फटने-सा हो जाये. शाम को फिर दावत. रात में साल्त्शे की तबीयत घूमने को करती है—सिनेमा, थियेटर, ऑपेरा. उसके कई रिश्तेदार हैं जो मिलने आते ही रहते हैं, बदले में हमें भी जाना पड़ता है. कब्र में से निकलकर मेरे रिश्तेदार भी प्रगट हो गये हैं. सारी घिसी-पिटी बातें चलती हैं. मैंने शायद बताया था तुम्हें, साल्त्शे उम्र की बिनब्याही स्त्री थी—वयोवृद्ध कुमारी. अब वह अभाव करना चाहती है. मैं ऊब गया हूं. मुझे तो किसी हरकत की तलाश है. वह मुझे फोन उठाने का मौका ही नहीं देती, उसे खटका लगा रहता मेरा ध्यान भंग होगा." डा० बीबर हंसे भी और कुड़कुड़ाये भी.

"सब ठीक हो जायेगा जनाब." मैंने कहा.

"कैसे? हर दिन मुझे अपना अभ्यास बताना पड़ता है. वह मेरा लि हर शब्द पढ़ती है. उसने एक प्रकाशक भी खोज लिया है. भगवान क्या करना चाहती है. जब कोई स्त्री किसी पुरुष की जिंदगी चलाने समझो बेड़ा गर्क. मैं तो इतना गुलाम हो गया हूं कि नौकरानी से ही भिड़ा ली हैं."

"जरा ध्यान से भाई."

"त्युत्सिक मैं फिर लौटना चाहता हूं."

सर्दियां बीत गयीं, गर्मियां आ गयी. मैं छुट्टियों में फिर से बा चला गया, इस बार ज़ाकोपेन, पहाड़ों पर. अगस्त में लौटा. ही राइटर्स क्लब पहुंचा, किसी ने कहा, "डा० बीबर का ताजा एडवें सुना?"

"क्यों, क्या हुआ?"

"जोपोट के केसिनों में चालीस हजार ज्लोट्या हार गये."

"चालीस हजार?"

"अपनी बीबी की सारी नकदी रकम. बैंक में दोनों का संयुक्त खा था. वे जोपोट गये और सब चौपट कर दिया."

"वे कहां थीं?"

"पूरा ब्यौरा नहीं मालूम."

मैंने डा० बीबर को फोन किया, लेकिन कोई जवाब नहीं मिल एक-दो दिन बाद पृज़ेजाज़्द-मार्ग पर टहल रहा था कि डा० बी दिखाई दिये: ढीले-ढाले, निष्प्रभ, अस्तव्यस्त, आंखों के नीचे फिर काले साये. पहले कभी उनके हाथ में छड़ी नहीं रहती थी, पर अब और शायद वे लचक रहे थे. घनी भौंहों को ऊपर उठा उन्होंने कि अनिष्ट के अंदेशे से भरी मौन आत्मग्लानि के साथ मेरी ओर ऐसे दे जैसे हमारी भेंट तय थी और मैं देरी से पहुंचा हूं.

"डा० बीबर! ये आप ही हैं?"

"त्सुत्सिक, मैं तुम्हें ही खोज रहा था. कहां चले गये थे? मैं ब मुसीबत में हूं. तुम्हें पता चला मेरे साथ क्या घटा?"

"हां, हां."

"ओह, मेरा दिमाग खराब हो गया होगा, भगवान जाने क्या हु मुझे लगता है मैं पूरा झक्की हूं. सब कुछ ऊब से हुआ. उसने ज़ोपोट किराये का एक घर लिया और सारी पांडुलिपियों के साथ मुझे उ बसाया, क्या नहीं किया उसने! एकाएक उसे वारसा जाना पड़ा—उ बहनोई सख्त बीमार पड़ गये थे. बिचारे मर गये. और इधर मैं कैसि चला गया, हालांकि महज देखने के खातिर, पर वह तो दलदल है! ज पैर गिरा कि फंसे. वह चेकबुक दे गयी थी, और ज़ापोट में बैंक की शा है. कहीं जाने की जरूरत ही नहीं थी. पैसा हार गया."

"साल्त्शे कहां है?"

"उसने मुझे निकाल दिया. कहा कुछ नहीं. उसके रिश्तेदार तो पागलखाने भेजना चाहते थे."

"सही कर रहे थे.."

"त्सुत्सिक, मैं कंगाल हो गया हूं. मेरे पास रात बिताने के बिछौना तक नहीं है. कानूनी तौर से वह मुझे निकाल नहीं सकती मगर पुलिस से कौन उलझे? उसका चाचा वकील है, उसने मुझे भेजने की धमकी दी. त्सुत्सिक, क्या मैं तुम्हारे यहां सो सकता हूं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"मेरे यहां तो सिर्फ एक ही पलंग है?"

"कुछ ज़्लोट्या उधार दे दो?"

"चालीस हजार ज़्लोट्या खेल गये?"

"तिरतालीस हजार. पता नहीं कैसे बिलकुल पता नहीं. मैं सोचता था मैं स्वयं को जानता हूं, लेकिन अब यकीन हो गया कत्तई नहीं जानता. समूचा आधुनिक मनोविज्ञान फूंक भर धुएं से ज्यादा कुछ नहीं. किसी भूत या राक्षस ने मुझे वश में कर लिया होगा. अब मैं समझा हूं तुम प्रेतों के विषय में क्यों लिखते हो. यह महज लोककथा नहीं, सच है. यार, कम से कम दस ज़्लोट्या तो दे दो."

"मेरे पास दस ज़्लोट्या हैं नहीं. खैर, आज रात आप मेरे कमरे में सो सकते हैं."

"क्यों? कहीं बाहर जा रहे हो? चलो, ठीक है. दो रात से न तो सोया हूं न कुछ खाया है. सिगार के लिए कम-से-कम तीन ज़्लोट्या ही दे दो. अच्छा सुनो, मैं अकेला तुम्हारे कमरे में नहीं जाऊंगा—अपनी मकानमालकिन से मेरा परिचय तो कराना ही होगा, कहीं वह मुझे चोर न समझ ले. जब पांसे उलटे पड़ रहे हों तो कुछ भी हो सकता है."

"चलिये, थोड़ी-थोड़ी काफी पीते हैं."

"क्या कह रहे हो? मेरे पैर लेकिन टूट रहे हैं. चलो, चलें. मुझे अक्सर लगता था यह दिन आयेगा. ठीक ही हुआ. सब कुछ किसी पिशाचिन की शरारत है—नहीं तो कहां है भगवान? अब मैं क्या करूंगा? धन के बिना काम चला लेने में बड़ा माहिर था मैं, लेकिन अब सारी अक्ल खोखली हो गयी. फिर से कैसे शुरू करूं? थोड़ा भी साहस होता तो खुदकुशी कर लेता."

"शायद आप दोनों के बीच फिर से समझौता हो जायेगा."

"कोशिश करो. तुम्हारी बड़ी कद्र करती है. दरअसल, जो जिंदगी मैं जी रहा था वह मुझे ले मरी. कौन किसी स्त्री के संग रोजाना चौबीसों घंटे रह सकता है? मुझे अकेलापन खलने लगा. कोई कुंवारा कई प्रेमिकाओं से दोस्ती बनाये रखकर भी अपने आपको संभाल सकता है. त्सुत्सिक, तुम कभी ब्याह मत करना. उससे ऐसे बचना जैसे आग से. हां, बाप बनने की इच्छा हो तो अलग बात है."

"कत्तई नहीं."

"शॉपेनहावर सही कहते थे. मानवी माया—ह्यूमन ट्रेजेडी—को जारी रखना अंधी लालसा है. सौभाग्य से वह इतनी उमरयाफ्ता थी कि गर्भ धारण नहीं कर सकती थी. मैं अपने वीर्य से स्टोरकीपरों, चौकीदारों, कोचवानों और रंडियों की पीढ़ी पैदा करना नहीं चाहता. मैं कुछ साल और जीना चाहता हूं और फिर खेल खत्म हो तो हो. लेकिन अभी क्या करूंगा? कहीं वे मुझे वृद्धाश्रम न पहुंचा दें? या मैं ही कोई अपराध कर बैठूं कि जेल में रहना पड़े! लेकिन कौन-सा अपराध करूंगा? क्या वेल्वीदीर महल को आग लगा दूंगा?"

हमने काफी पी. डा० बीबर घूंट लेते, फुसफुसाते, आंहे भरते गये. उन्होंने गंदे रुमाल से माथे का पसीना पोंछा. मैला सूट पहने, गंदे बदन, बिना शेव किये, एक आंख आधी बंद दूसरी पूरी खुली रखे वे मेरे सामने बैठे थे. नाखूनों में मैल भरा था. अपनी जेब से उन्होंने सिगार का एक टोंटा निकाला, सुलगाया, और घनघोर बदबूदार धुआं फूंका.

"जुआ खेलने की ऐसी क्या पड़ी थी?" मैंने पूछा.

"तुम नहीं समझ सकते. इस ब्रह्मांड को चलाने वाली अदृश्य ताकतों के आगे किसी का बस नहीं चलता. तुम मानो, न मानो, अपनी उंगली पर गेंद नचा जहां मन आये फेंकने की इच्छा चल पड़ती है. और फिर जब गणित के नियमों से टकराओगे वे तुम्हारा मखौल उड़ायेंगे ही. मैं पंद्रह सौ ज़्लोटी जीत चुका था. एकाएक पांसा पलट गया. किस्मत में यकीन करते हो ना?"

"मैं सभी रहस्यों और परा-घटनाओं में यकीन रखता हूं."

"ठीक करते हो. तर्कबुद्धिवाद, यानी रेशनलिज्म, मनुष्यजाति की बद्तरीन बीमारी है. 'तर्क' सृजन को, यानी इवेल्यूशन को, बिलकुल उलट देगा. मानव इतना चतुर हो जायेगा कि वह प्रजनन, खानपान या शौच सब भूल जायेगा. उसे शायद मरना भी सीखना होगा."

डा० बीबर हंसे और फुनफुनाये, उनके काले पड़े दांत बाहर निकल आये. "मुझे लगता है", वे बोले, "शायद साल्त्शो मुझे माफ कर देगी." ◻

साहब घर पहुंच चुके हैं...

■ शरद चंद्रा

हाल ही में बंबई से आने वाली राजधानी एक्सप्रेस से आने वाली किसी महिला को लेने मैं स्टेशन पहुंची तो सूचना मिली कि गाड़ी के पच्चीस मिनिट देर से आने की संभावना है. किताबों का स्टॉल अभी खुला नहीं था. खाली बैठकर समय निकालने की आदी न होने के कारण मैं प्लेटफार्म पर ही चहलकदमी करने लगी. दिमाग बीच-बीच में प्रसारित छोटी-बड़ी सूचनाएं बड़े ध्यान से सुनने लगी... 'ध्यान दीजिए! बंबई से आने वाली राजधानी एक्सप्रेस निर्धारित प्लेटफार्म नं०-6 पर न आकर नं०-7 पर आ रही है। यात्रियों से निवेदन है कि प्लेटफार्म नं०-7 की तरफ प्रस्थान करें." मेरा काम एड़ियों पर पूरा घूम जाने से ही चल गया. दोनों प्लेटफार्म आमने-सामने हैं. मुड़ने पर देखा एक स्थान पर बड़ी भगदड़-सी मच रही है, कोई माला लेकर खड़ा है, कोई कैमरा. कुछ लोग पत्रकारों को चायपान करा रहे थे, कुछ उन सबके ऊपर ध्यान रखने में अतिव्यस्त थे. '... श्री चिरंजीलाल माथुर, श्री चिरंजीलाल माथुर जी एम.पी. साहब को लेने आए हुए हैं, कृपया वापस लौट जाएं. एम.पी. साहब प्लेन से आकर, घर पहुंच चुके हैं! संयोगवश उस वक्त मेरी आंखें इस स्वागतपार्टी के बीच में दो मालाएं हाथ में लेकर बड़े इतमिनान से खड़े हुए एक सज्जन पर ही थीं. क्योंकि पान चबाने में उनका मुंह इतनी मेहनत कर रहा था कि मैं सोच रही थी कि उसके अंदर उस बैचेनी में पिसता पत्ता बनारसी है या सादा. इस सूचना के बाद अचानक वह मुंह बंद हो गया और कोई 2-3 मिनिट में मालाएं, चाय, पत्रकार सभी गायब हो गये. बेचारे चिरंजीलालजी पर मुझे हंसी भी आ रही थी और दया भी. ◻

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा का ताजमहल

मैं कामना करती हूं कि आप मुझे गर्व कर सकने के अवसर जीवन भर देते रहेंगे. आप पर हुए हमले पर मैं क्या कहूं? कैसे संवेदना या सांत्वना प्रकट करूं? मैं समझ नहीं पा रही ....

☐ प्रेम कुमार

जन्म: 3 फरवरी, 1952
विविध पत्र-पत्रिकाओं में कहानियां प्रकाशित व प्रशंसित. चार संदर्भ ग्रंथ व तीन संपादित पुस्तकें प्रकाशित. 'एक बूढ़ा रौशनदान' (कहानी संग्रह)
संप्रति: धर्मसमाज कालिज, अलीगढ़ (उ.प्र.) के हिंदी विभाग में प्राध्यापक

कल के समाचार में आप पर दागी गयी गोली का समाचार।
इतने वर्ष बाद आपके बारे में समाचार पत्र से कुशलता
की कभी कल्पना नहीं की थी. पहले तो मैंने केवल शीर्ष
एक नजर डाली और आगे बढ़ गयी. दरअसल राष्ट्रों, राष्ट्राध्य
प्रधान मंत्रियों पर प्राणघातक हमलों के समाचार इतने आम हो गये
अब प्राध्यापक पर प्राणघातक हमले का समाचार पढ़ने की रु
जिज्ञासा नहीं जगा पाता. पूरा समाचार पत्र पढ़ चुकने पर लग
पठनीय सामग्री बड़ी जल्दी चुक गयी है. दोपहर में अकेले पड़
काटना मुश्किल हो गया. पतिदेव और दोनों बच्चे अपने-अपने कां
पढ़ने को कोई अन्य मसाला पास न था. हार-झकमारकर सम
दैनिक फिर पढ़ना शुरू कर दिया. तभी आप वाले समाचार के
अपने शहर का नाम देखकर पढ़ने की उत्सुकता जगी. एक काल
दस-बारह लाइनों के उस समाचार को शुरू से अंत तक पढ़
आपका व कालिज का नाम बार-बार घबराहट के साथ पढ़ा. उस
को जिसमें आपके सकुशल होने की बात थी, तबसे अब तक मैं आ
आपकी इस घटना से मुक्त नहीं हो पा रही हूं. वर्षों की स्मृतियों के
अचानक एक साथ जीवित हो उठने के कारण मैं सिहर-सिहर जा
कल से आपको पत्र लिखने का साहस जुटा रही हूं. लिख सकी तो आ
हाथों में पहुंचा यह मेरा दूसरा पत्र होगा. आप विश्वास रखें कि यह
आपको पहले पत्र की तरह उद्विग्न नहीं करेगा, इसे लौटाकर मुझ
पहुंचाने के लिए आपको मानसिक यातना से नहीं गुजरना पड़ेगा

मैं सच कह रही हूं, आप पर हुए हमले के समाचार को पढ़क
बहुत-बहुत खुश हुई थी. यह जानकर और भी खुश कि इस तर
हमले पहले भी परीक्षाकाल में आप पर होते रहे हैं. पति के आने
प्रतीक्षा न कर पाने के कारण, आस-पड़ोस में घंटों सबको पागलों
तरह पढ़वाती घूमी थी वह समाचार. सर, एक बार फिर आपने मुझे
पर गर्व करने का अवसर दिया था. मैं आश्वस्त हुई कि इतने वर्षों में
से बदलते जीवन मूल्यों के बीच आप अभी एक सेंटीमीटर भी नीचे
उतरे हैं. वैचारिक स्तर पर आपने अपने को अपरिवर्तित और जिंदा
है. आप झुके या टूटे नहीं है. मेरी आंखें डबडबा आयी थीं, यह सोच
कि मेरे सर यही डिजर्व करते हैं. उनके साथ ऐसा ही होना चाहिए
उन पर हमला होना चाहिए, उन्हें सकुशल भी होना चाहिए.

सर, आज जैसे-तैसे आपसे कुछ कहने का अवसर मिला है. अ
गवां देनेवाले को जीवन भर पछताना पड़ता है. बार-बार अवसर दे
लिए प्रकृति बाध्य नहीं है. आपके आशीर्वाद से मैं एक सुखी सं
गृहणी का जीवन जी रही हूं. दो प्यारे-प्यारे बच्चे हैं. सीधे, समझ
पति हैं, ठीक-ठाक नौकरी है. छोटा-सा घर है. कपड़े हैं. कुछ गहने
साधन हैं, सुविधाएं हैं. बहुत बैंक बेलेंस तो नहीं है, पर ठीक से खा
लेते हैं आज के युग में एक औरत इससे अधिक और क्या सुख चा
होगी? मैं अपने आपको इससे बहुत अधिक संपदा की स्वामिनी मा
रही हूं. कभी व्यक्त नहीं किया सर, पर आज मैं छिपाऊंगी नहीं. लं
को अंधेरी संकटभरी रातों में जिंदा अथवा मृत मां-बाप या अ
आत्मीय संबंधों के सपने आते हैं, परंतु सर, मेरे सामने दिग्भ्रमित ह
में सदैव आपकी आकृति आकर खड़ी हो जाती है. कानों में आपके श
गूंजने लगते है. आज मैं सोचती हूं कि यदि आप मेरी ज़िंदगी के रास्ते
आये होते तो मेरा अतीत और भविष्य क्या होता? आपसे मिलने के
सर, मैं अपनी हर उपलब्धि को आपकी कृपा मानती रही हूं. अकारण
गयी कृपा के प्रति कृतज्ञता प्रकट न करने को मैं पाप मानती हूं सर!
आपने कभी कहा था कि शास्त्रों में हर पाप का प्रायश्चित है, कि
कृतघ्नता का कोई प्रायश्चित नहीं. मुझे ठीक याद है न सर? मैं समझ
हूं कि आदमी के मन से छोटे-से-छोटा प्रभाव भी मरते दम त
हटाया-मिटाया नहीं जा सकता. कोई अगर हटाने-मिटाने का अभि
करे तो अलग बात है. आपको याद हो. न हो; मेरे पास उन दिनों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक-एक पल एक-एक शब्द आज भी ज्यों का त्यों सुरक्षित है. सर, आपके उन दिनों की स्मृति दिलाकर कोई लाभ भले ही मैं न पहुंचा पाऊं परंतु आश्वस्त हूं कि आपका कोई अहित मेरे इस आत्मस्वीकार या पत्र लेखन से नहीं होगा. बस, आप नाराज मत होना सर. चेहरे पर उदासी के भाव मत लाना. वैसे क्या आप अब भी उसी तरह झुंझलाते, नाराज होते हैं सर? इस समय भी आपकी झुंझलाहट और नाराजगी को याद करके मुझे बहुत डर लग रहा है. काश, अपने पत्र को पढ़े जाते समय के आपके चेहरे के भावों को मैं देख पाती!

सर, आपसे कभी जिक्र नहीं किया. घर में पढ़ाने के लिए प्रवेश करने के साथ ही कर्फ्यू लग जाया करता था. पापा बेचारे पुराने समय के चौथी पास परचूनी की दूकान से गृहस्थी का पालन पोषण करनेवाले. मां ग्रामीण संस्कारों वाली अशिक्षित वृद्धा. आपकी 'प्रोफेसरी' का आतंक उन पर इतना अधिक था कि जब तक आप पढ़ा रहे होते, वे अंदर फटकते तक नहीं थे. मेरे एक मात्र भाई ने जो कुछ आपके बारे में सुन रखा था, उसके कारण बैंक में ब्रांच मैनेजर होने के बावजूद आपका बेहद सम्मान करता था. उसकी पत्नी की हालत के बारे में जानकर आपको जरूर हंसी आयेगी. एक दिन आपके आने से जरा पहले घर पर भैया के दोस्त सपत्नीक आये थे. भाभी उनके लिए ट्रे में चाय नाश्ता सजाकर ला रही थीं. तभी आपने बड़ी तेजी से अपने रोज के अंदाज में दरवाजे के भीतर कदम रखे. भाभी घबरा गयी. मुंह फेरने व घूंघट खींचने के भयभीत प्रयास में चाय की ट्रे उनके हाथ से गिर गयी थी. उस दिन आपके पढ़ाकर चले जाने के बाद भाभी ने जब उस घटना की वास्तविकता बतायी, सब देर रात तक हंसते रहे थे. डरती तो मैं भी बहुत थी सर, लेकिन शुरू में ऐंठे-ऐंठे आपके घर में आने, गुमसुम रहने, तने बैठने, घड़ी देखकर पढ़ाकर लौट जाने के ढंग पर मुझे बहुत गुस्सा आता था. खीझ होती थी. झुंझलाहट आती थी. मेरी कुछ और सहेलियों को भी अध्यापक पढ़ाने आते थे, पर इतनी ऐंठ और रौब का जिक्र मुझसे किसी ने नहीं किया. कालिज जीवन से मेरा नाता नवीं कक्षा के बाद छूट गया था. पढ़ाने आनेवाले व्यक्ति का वह व्यवहार मुझे बहुत अप्रीतिकर और असहय लगा था. मैंने दो-तीन दिन के बाद ही आपको कष्ट पहुंचाने की बात मन में सोची थी. पहले सोचा आपसे पढ़ाने आने की मना कर दूं, तो भय व तनाव भरे एक घंटे से मुझे मुक्ति मिल जायेगी. घर वालों के भय से निर्णय शीघ्र क्रियान्वित न हो सका. महीनों की मेरी झिक-झिक के बाद भैया आपको पढ़ाने के लिए ला पाया था. उसने बताया था कि आप ट्यूशन नहीं करते. एम.ए. के विद्यार्थी को ट्यूशन पढ़ानेवाले अध्यापक शहर में ज्यादा नहीं थे. किसी से उसे पता लगा कि आप पड़ोस में रहते हैं. मकान मालिक से कहलवाकर आपको बुलाया जा सकता है. भैया ने पहले आपके मकान मालिक को तैयार किया, तब कहीं बड़ी मुश्किल से आपको. अगर प्रथम वर्ष की परीक्षा में अपने आप मेरे पचपन प्रतिशत अंक न आये होते और भैया के कुछ मित्रों ने ट्यूशन पढ़वाने की सलाह न दी होती, तो मैं कब का भैया से कह देती कि मत करो किसी की खुशामद. मैं पहले की तरह अब भी बिना किसी के पढ़ाये कम से कम द्वितीय श्रेणी प्राप्त कर लूंगी. जीवन में प्रथम बार प्रथम श्रेणी प्राप्त हो सकने की संभावना और विश्वविद्यालय की तिथि के दिन प्रतिदिन निकट आते जाने की चिंता के कारण भैया ने अपने उत्तरदायित्व और मेरे भविष्य का ख्याल करके आपके घर के बीसियों चक्कर काटे थे. भैया से यह जानकर कि आपने पैसे तय नहीं किये और दस तारीख से शाम चार बजे पढ़ाने आने की कह दिया है, मुझे लगा था कि आप नहीं आयेंगे. आनेवाला तो पहले पैसे तय करता.

मेरा अनुमान गलत निकला. आप निश्चित तिथि को निश्चित समय पर आये. पढ़ाना शुरू करने से पहले अपनी स्वाभाविक ऐंठ के साथ आपने मेरे तथा घरवालों के लिए आवश्यक निर्देश दिये थे—'देखो, रोज ठीक चार बजे किताब कापी लेकर पढ़ने को तुम्हें तैयार मिलना

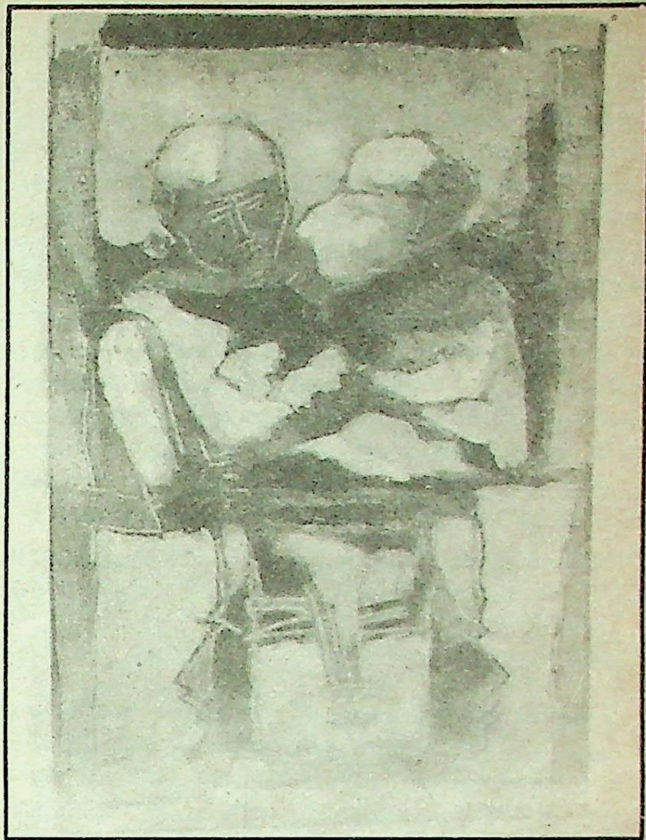

होगा. पढ़ाते समय किसी का आना-जाना, इधर-उधर घूमना मैं बिल्कुल पसंद नहीं करूंगा. रविवार को मैं नहीं आया करूंगा. वैसे मैं कोशिश करूंगा कि समय से आऊं-जाऊं, तुम्हारा समय नष्ट न हो, पर अगर किसी ने मुझसे कुछ कहा तो मुझे बुरा लगेगा. यह मेरी जिम्मेदारी है कि मैं तुम्हारे साथ न्याय करूं. तुम्हें प्रथम श्रेणी लानी है तो मेहनत करनी होगी, मन लगाकर पढ़ना होगा. उसके बाद मुझसे लिखवा पढ़वाकर देखा था. तब अलग-अलग पुस्तकों व प्रश्नपत्रों के पढ़ाने का क्रम तथा समय निर्धारित किया था. मेरी सारी शिक्षा व्यक्तिगत छात्र के रूप में हुई है. इसलिए आपके अध्यापन की किसी से तुलना तो मैं नहीं कर सकती थी. पर हां, आपका पढ़ाया मेरी समझ में आता था, मुझे प्रतिदिन नया जानने का अनुभव होता था. पढ़ाते समय आपका प्रभाव मुझ पर पड़ता था. आप समय से आते, पढ़ाते, चले जाते. पूरे एक सप्ताह मैं प्रतीक्षा करती रही कि आप बीच में हसेंगे, बोलेंगे. मेरे बारे में जानना चाहेंगे, अपने बारे बताना चाहेंगे. आपने मेरे न जाने कितने अनुमानों को गलत साबित किया है सर! आप चाहते तब भी मेरे सारे अनुमानों को सही सिद्ध नहीं कर सकते थे. तब नहीं समझती थी, इस क्षण अनुभव कर रही हूं, कितने बेसिर-पैर की बातें सोचा करती थी आपको लेकर. आपके पढ़ाकर जाने के बाद बहुत देर तक वहां से उठने को मन न करता. आपकी छुई चीजों पर उंगलियां फिराकर सहलाती, उन्हें चूसती. रात में पढ़ते समय आपकी बातें याद करके घंटों न पढ़ पाती. हो सकता है मेरे उस आचारण में मेरी निजी जिंदगी के कटु अनुभवों और भूख का हाथ हो. आपको मेरे बारे में भैया ने केवल इतना बताया था कि मैं एक परित्यक्ता स्त्री हूं और भैया मेरी नौकरी लगवाकर स्वावलंबी बनाने के लिए एम.ए. करा देना चाहते हैं. मैं आपको अपने बारे मे विस्तार से बताना चाहती थी, आपने कभी अवसर नहीं दिया. कई बार कोशिश की, सफल न हो सकी. आज मैंने असफल न होने का दृढ़ निश्चय कर लिया है सर!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर, आपको यह नहीं मालूम कि नवीं कक्षा पास करने से पहले मेरी शादी हो गयी थी. यहीं क्यों, आपको मेरे बारे में मालूम ही क्या है भला? मेरी शादी तय हुई. बारात आयी, मेरे ही शहर के एक दूसरे मुहल्ले से. मैं सजी, संवरी, चहकी, हंसी, दुल्हन बनी, भांवरें पड़ीं, विदा हुई. उस घर में मेरा स्वागत हुआ. दिन भर चहल-पहल में रही. बस अपनी शादी के संबंध में इतनी ही यादें मेरी पिटारी में बंद हैं सर! शाम के बाद तो घर में तहलका मच गया था, क्योंकि मेरा पति बना व्यक्ति अचानक रास्ते से गायब हो गया था. कहीं भाग गया था. कई दिन तक लौटाने के लिए की गयी भाग-दौड़ की बातें सुनती रही थी. अंततः एक सप्ताह के हुए मेरे सास-श्वसुर ने रोते बिलखते मेरे सामने सच स्वीकार किया था-'बेटी तेरे साथ हमने पाप किया है. सोचा था, शादी कर देंगे तो वह सुधर जायेगा. परंतु बेटा अब वह कभी नहीं सुधेरेगा. दिल्ली में जहां वह नौकरी करता है, नालायक ने किसी और लड़की से पहले से शादी कर रखी है. अब हम और तो कुछ नहीं कर सकते बेटी, पर हां, आज के बाद यह सारा जेवर, दहेज, में आया, सब सामान तुम्हारा है. तुम्हारे खाने-पीने, रहने-सहने की जिम्मेदारी हमारी है.' सर, तब मैं बच्ची थी. सब रो रहे थे इसलिए थोड़ी बहुत देर मैं भी रोयी-पीटी. एक-दो दि बाद पिता के घर वापिस चली आयी. बाद में सोचा करती थी, किसी सुधारने के लिए एक लड़की के जीवन से प्रयोग की सुविधा कित आसान और सस्ती है सर? कुछ दिनों सहानुभूति और दया को दौ पड़ा. एक साल में ही मैं जैसे बहुत बड़ी हो गयी थी. मां-बाप की ही भैया-भाभी की उकताहट मुझे न मिली होती तो मैं आगे पढ़ने का इर कभी न कर पाती. परित्यक्ता को पितृगृह में रहने की सुविधा किन श और हालातों पर मिल सकती है, मैं बहुत अच्छी और सही तरह जान हूं सर. प्राइवेट हाईस्कूल किया. इंटर किया. बी.ए. का फार्म भरते सम तक म्युनिसपल बोर्ड की प्राइमरी पाठशाला में नौकरी मिल गयी पढ़ने-पढ़ाने के अतिरिक्त मेरी जिंदगी का कोई अर्थ नहीं रह गया। तब. कहीं आना-जाना मिलना-जुलना वर्षों पहले बंद कर चुकी हूं अपने बारे में दूसरों से प्रामाणिक टिप्पणियां व जानकारियां सुनकर शु के दिनों में मैं रात-रात भर रोया-छटपटाया करती थी. मेरे दुश्चरि होने, किसी अन्य से संबंधों के कारण पति को छोड़ आने, धन-जे दबाकर बैठ जाने और अब खुले रूप में वेश्या का जीवन बिताने की क

सोफा

□ 'भृंग' तुपकरी

सुबह उठा तो छुटपुटा था. मैंने दरवाजा खोला, तो आंगन के एक कोने से आवाज आयी, "देख रहे हो अपने निकम्मे बेटों की करतूत? मुझे जान-बूझकर उन्होंने कल रात बाहर ही छोड़ दिया! कल रात देर से हल्की बारिश हुई थी. बारिश तो हल्की थी; मगर जगह-जगह टूट-फूट गया हूं ना, इसलिए मेरे भीतर तक पानी आ घुसा है! मैं भीतर बाहर सब तरफ से भीग गया हूं! मुझे उठवा लो यहां से!"

मैंने हैरानी से आंखें फाड़ फाड़कर देखा. यह मेरा पुराना सोफा था. मैंने उसे समझाने की कोशिश में कहा, "अरे भाई, कल अपने यहां उत्सव था न? अपने छोटे सपूत का जन्मोत्सव! कई मेहमान आये थे. खाना-पीना हुआ था. ये नौजवान ऐसा हुड़दंग मचाते हैं कि क्या कहें? लगा, कहीं तुम्हारे पुरानेपन को और भी चीरफाड़ न डालें. इसीलिए मैंने ही उनसे कहा था कि सोफे को बाहर निकाल दो."

सोफे ने मुझ पर व्यंग कसा, "क्यों झूठमूठ मुझे बहलाना चाहते हो? क्या मैं बहरा हूं? क्या तुम्हारे छोटे बेटे ने एतराज नहीं उठाया था कि अगर मैं भीतर रहा तो सबके आगे घर की पोल खोलकर रख दूंगा?.... मुझे तो लगा था कि आप अपने उस नासमझ और नालायक बेटे को डांटकर कहेंगे कि जिसकी गोद में पलकर तुम सब बड़े हुए हो, क्या वह तुम्हारे घर की पोल खोल सकता है? मगर नहीं, आपने भी उनकी हां में हां मिलाते हुए कह दिया था, 'लड़का ठीक कहता है. इसने भीतर कितनी सारी जगह घेर रखी है. इसके साथ कुछ कुर्सियां भी उठाकर बाहर रख देंगे. भीतर जगह भी ज्यादा निकल आयेगी और घर की शोभा भी बढ़ाई में नहीं पड़ेगी.' आपका बेटा ऐसा कहता तो कोई बात नहीं थी, क्योंकि वो हमारी कल्चर को नहीं जानता. मगर आप... क्या आप भी अपनी कल्चर भूल गये?"

"मगर मैंने उससे कहा था न कि आनेवाले लोगों के बच्चे-कच्चे बाहर ही बैठ जायेंगे. सोफे पर नयी चादर डाल देना." मेरी जुबान कह रही थी, मगर आंखें नीची हुई जा रही थीं.

"नयी चादर?" और सोफा हंस पड़ा, "मगर वह मेरा सम्मान बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि मेरी पुरानी शक्ल को छिपाने के लिए." ...और फिर सबने मिलकर चंद नयी कुर्सियों के साथ उसे उठाकर बाहर रख दिया था.

बात उसकी ठीक थी. नयी कुर्सियों के बीच उसे इसीलिए रखा गया था कि उसका ऐब छिपा रहे. काश, कि आजकल के नौजवान पुरानेपन को 'ऐब' नहीं मानते!

"क्या मेरा पुरानापन कोई ऐब है?"

"नहीं भाई, कम से कम मैं तो ऐसा नहीं मानता."

"तो फिर अपनी बात, अपने कल्चर की बात आपने उन्हें समझायी क्यों नहीं?"

"मगर मेरी बात यहां सुनता कौन?"

"तो यों कहो ना कि तुम कहकर भी उनको अपनी या कल्चर की बात समझा नहीं सकते; और वे बिना कहे ही आपसे अपनी बात मनवा लेते हैं?"

"नहीं, ऐसी बात नहीं."

"तो और कौनसी बात थी कि जब सब मेहमान चले गये, तब नयी चादर और नयी कुर्सियां तो हटा ली गयीं, केवल मुझे उठाना जरूरी नहीं समझा गया?"

मैंने बगलें झांकते हुए उससे कहा, "चिंता नकरो. मैं अभी तुम्हें उठवाने का इंतजाम करता हूं. मुझ अकेले से तो तुम उठने से रहे. आखिर पुराने हो ना. कितने भारी हो तुम!"

"हां, आजकल की बहुतेरी चीजों की तरह हल्का तो हूं नहीं, मगर टिकाऊ भी कितना हूं, क्या यह भूल गये?"

"कैसे भूल सकता हूं भाई. आधी से ज्यादा उम्र तो तुम्हारे ही साथ काटी है! बल्कि अब भी तुम पर ही तो सोता हूं मैं."

"इसीलिए शायद तुम्हारे 'निकम्मे' बच्चे अपने निकम्मेपन को नजर अंदाज करके हम दोनों को ही निकम्मा मान बैठे हैं. निकम्मे, बेवकूफ कहीं के!" और जब मेरा ही सोफा मेरे ही लहजे में मेरी ही बात मुझसे कहकर हंसने लगा तो शर्म से अपना माथा झुका लेने के अलावा मेरे पास और कोई चारा नहीं था. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल बाहर के लोगों ने ही नहीं, मेरे करीबी रिश्तेदारों ने भी वर्षों कहीं-फैलायी हैं सर! क्या मेरे बारे में कभी ऐसा कुछ आपने भी सोचा है सर? नहीं, आप ऐसा नहीं सोच सकते. मैंने किसी को कभी कोई सफाई नहीं दी सर, आज आपसे पूछ रही हूं, इस तरह के झूठ और गंदेपन को पता नहीं क्यों, सारी उम्र ढोते रहते हैं लोग? इसमें शतांश भी सच नहीं था सर! जो सच था, उसे आज आपको, केवल आपको पहली बार बता रही हूं. मेरे बारे में दमतोड़, दुर्नाम प्रचार करनेवाले वे ही लोग थे, जिनकी अनुनय-विनय, प्रलोभन या धमकी से अप्रभावित रहकर मैंने उन्हें स्पर्श की छूट या शरीर का सुख नहीं दिया था. इन याचकों में मेरे निकट संबंधी, करीबी रिश्तेदार पीछे नहीं थे सर. चाहकर भी मैं उस आतंक और यातना से आपको अवगत नहीं करा सकती जो मैंने परित्यक्त जीवन के प्रारंभिक सात सालों में झेला था. इस सबका एक लाभ अवश्य हुआ सर, कि मुझे आदमी की सूरत से घृणा हो गयी. आदमी से भयंकर डर लगने लगा. एकदम सीमित, "संकुचित और एकाकी जीवन की अभ्यस्त हो गयी. इसका यह मतलब कतई नहीं कि मेरे अंदर तूफान नहीं उठता था या आकांक्षा नहीं जगती थी. यह सब होता था सर, परंतु अनदेखे हादसों के डर ने मुझे बहकने-फिसलने नहीं दिया. एक बार फिसली भी तो वह फिसलन मेरी उपलब्धि बन गयी. आप कहेंगे, मैं झूठ बोल रही हूं. आपको धोखा दे रही हूं. अगर ऐसा था, तब मेरे द्वारा आपको दिया गया वह पत्र क्या था?

मैं आपसे झूठ नहीं बोल सकती सर. यह शतप्रतिशत सच है कि आपको वह पत्र देने से पहले मैं बहुत उन्मत्त-उत्तेजित रही थी. बहुत सोच-विचार और हिम्मत के बाद, पंद्रह दिन आपकी तरफ से पहल की प्रतीक्षा में थक-हारकर मैंने वह पत्र आपको दिया था. ट्यूशन पढ़ने-पढ़ाने के माध्यम से प्रेम-प्रदर्शन और शरीर प्राप्ति के बीसियों किस्से मैंने सुने थे. जो किताबें पढ़ती या सिनेमा देखती, उनमें एक लड़का होता था एक लड़की होती थी. दोनों जवानी के नशे में चूर एक दूसरे को पाने के लिए बेताब दिखते थे. शुरुआत किसी विशेष घटना या निरंतर नैकट्य से होती. वे मौके-बेमौके एक-दूसरे को चूमते-चाटते, साथ-साथ घूमते-नाचते. बीच में कुछ विरोध होता या मुश्किलें आतीं. छल, बल या कौशल से, किसी ने किसी प्रकार उनमें से एक मर जाता. जिंदा रहते तो दोनों मिल जाते. इतना सब रोज-रोज देखने-सुनने के बाद मुझ जैसी युवती उससे भिन्न और क्या कदम उठा सकती थी? आप तटस्थ होकर खुद सोचें. पंद्रह दिन आपके साथ बैठकर मैंने जाना कि आप बहुत अधिक भयंकर या डरावने नहीं हैं. पत्र देने के बाद मुझे लगा कि आपने उस समय तक की पुरुष संबंधी मेरी पूर्वधारणाओं को बदल दिया है. मैंने केवल इतना सुना-देखा था कि पुरुष अथवा नारी के अंदर 'आई लव यू' कहकर तूफान उठाया जा सकता है. मुझ पर जैसा लिखा जा सका, पूरे पांच पृष्ठों का लंबा पत्र मैंने पूरी रात जागकर आपको लिखा था. औरतों से सुने अनेक प्रिय से प्रिय और महान से महान संबोधनों तथा गद्य-पद्य की पंक्तियों के सहारे मैंने अपनी आकांक्षा उसमें व्यक्त की थी. आप अद्वितीय है, बहुत अच्छे हैं, सुंदर है. आपकी बहुत याद आती है. आपके बिना मैं नहीं रह सकती. आप मेरे मालिक हैं, देवता हैं मेरे जीवन की नैया के खिवैया हैं...' अब वह सब याद नहीं, कैसे भर गये थे तब पूरे पांच पृष्ठ? इधर-उधर जरा भी खाली स्थान नहीं छोड़ा गया था. तीन दिन किताबों में छिपाए फिरने के बाद, जिस डर और आशा के साथ उस पत्र को मैंने आपके हाथों तक पहुंचाया था, आज भी याद करके सिहर रही हूं. मेरे मन को पंख लग गये थे. पलकों ने आंखों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था. अचीन्हे स्पर्श का सुख शरीर को रोमांचित किये डाल रहा था. पूरी रात और अगला चार बजे तक का दिन दिवास्वप्नों और अनुमानों के सहारे गुजरा था. आप निश्चित समय आ गये थे. घर में प्रवेश करते समय मैंने एक पल आपका चेहरा देखा था. वह बता रहा था कि आप रात भर सो नही सके हैं. उदास, बुझे, तनावग्रस्त-आप उस दिन अपने स्वाभाविक रूप से भिन्न दिख रहे थे. मेरा जुनून आपको देखते ही उतर गया था. अनजाने हादसे के डर से शरीर जड़वत हो गया था. निगाहें नीचे किये-किये आपने किताब उठाकर खोली थी. मैंने नोट करने के लिए कापी खोलकर उसके बीच में डॉट पैन लगा लिया था. उसी तरह बैठे कुछ कहने की शुरुआत आज आप और दिनों की तरह तुरंत नहीं कर पा रहे थे. आप कुछ कहना चाह रहे थे, मैं बहुत-बहुत सुनना चाह रही थी. निगाहें न आप उठा रहे थे, न मैं उठा पा रही थी. दो-तीन बार धीमे-धीमे खांसकर आपने मेरा पत्र अपनी जेब से निकाला था. कुछ कहने से पहले मेरी उंगलियों की तरफ बढ़ाया था–'इसे अपने हाथ से तुरंत फाड़ दो! अनु, तुम बहुत भोली हो! इसका परिणाम नहीं सोचा? ऐसे कभी किसी को पत्र नहीं देना चाहिए. मैं

सिर्फ एक रोटी

☐ तरसेम गुजराल

नीरज बाबू ट्रांसफर होकर शहर में नये-नये आये थे. दो दिन एक मित्र के पास ठहरे रहे. सबसे बड़ी तलाश थी किराये के एक मकान की. किराया भी कम हो ताकि वे होटल में रोटी का खर्च निकाल कर कुछ घर भेज सकें. मकान में वे ज्यादा कुछ नहीं चाहते थे. सिर्फ एक कमरा. रसोई अलग हो तो वे खाना खुद भी बना सकते हैं. एक बाथरूम आदि. बस.

अचानक उनकी नजर अखबार में छपे एक विज्ञापन पर गयी. लिखा था: 'किराये के लिए खाली है एक कमरा बजाये किचन बाथरूम. किराया कुछ ही कम.'

नीरज बाबू कमरा देखने के लिए चले गये. कमरा एक पुरानी बस्ती में था. पेचदार गलियां से गुजरने के बाद. मकान काफी पुराना था. कमरा छोटा-सा था. पुराने किस्म की छत शहतीर और सिरकियों वाली. एक तरफ से झुकी हुई. खिड़की सिर्फ एक ही. वह भी छोटी सी.

"किचन कहां है?" उसने आंगन में निकलकर वृद्ध मकान मालिक से पूछा.

"जे रहा!" एक द्वारे के आगे एक ट्रांजिस्टर कंपनी का बड़ा-सा बोर्ड खड़ा करके गुजारा किया गया था.

"और बाथरूम?" नीरज ने चिढ़कर पूछा.

"जे रहा." बूढ़े आदमी ने उसी बोर्ड को खींचकर आगे के द्वारे पर कह दिया.

नीरज को लगा कि उसका विज्ञापन लिखने वाले ने अनपढ़ बूढ़े के साथ मजाक किया है.

"तुम्हें कोई दिक्कत नहीं होगी. चाहों तो अपना कुछ फालतू सामान मेरे कमरे में रख देना."

नीरज घर से बाहर निकल आया.

"पानी साथ वाले मकान से जितना चाहो भर सकते हो. सबीना बड़ी भली महिला है. मना नहीं करती–कभी-कभी एक दो बाल्टी मैं खुद ला दिया करूंगा."

"आखिर सुनूं तो किराया कितना लेंगे आप?" बेहद उकता कर नीरज ने सवाल किया.

"तुम मुझे सिर्फ एक रोटी सुबह और एक रोटी रात को दे देना." ☐

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

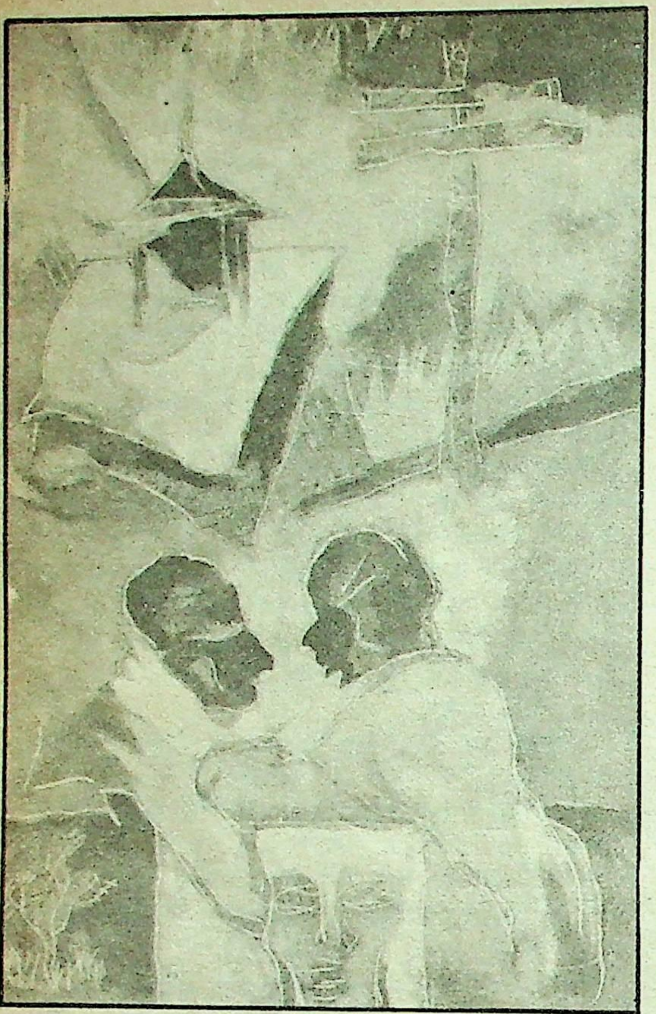

इसका दुरुपयोग भी तो कर सकता था. अनु! तुम्हें ऐसा नहीं करना चाहिए था? पत्र को अपने कापी में रखते समय मैं चुप थी, हैरान थी. मुझे लगा कि आपने मुझे अपमानित किया है, मेरा तिरस्कार किया है.

आपसे अपने मन का एक और पाप आज कह दूं सर, उस क्षण पहली प्रतिक्रिया मुझ पर क्या हुई थी, आप बता सकते हैं? नहीं वैसा तो केवल मुझ जैसी स्त्री ही सोच सकती थी, आप जैसा पुरुष नहीं! सर, बहुत छोटे से कालांश के लिए मेरे नारीत्व ने अपमान और आघात अनुभव किया था. मैंने आपको घमंडी अथवा कापुरुष मान लिया था. आपको गाली देने का मन हुआ था. उस समय आपको अपमानित करने के लिए उठकर जाने का जैसे ही मैंने इरादा बनाया, आपके आगे कहे वाक्यों ने उसे पूरा नहीं होने दिया—'अनु, इससे बड़ा सौभाग्य मेरा क्या हो सकता है कि तुम जैसी शिक्षित और सुंदर स्त्री मुझसे प्रभावित है! उसे मैं अच्छा लगता हूं. किसी स्त्री की यह स्वीकृति पुरुष के जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि होती है अनु, पर...' आप रुके थे. मैंने नजरें उठाकर आपकी ओर देखना चाहा, परंतु गर्दन पहले से कुछ अधिक नीची हो गयी थी. जाने का इरादा कब कपूर बनकर उड़ गया था, कह नहीं सकती. कान आपसे आगे और सुनने के लिए बैचेने हो रहें थे—"पर अनु, तुम्हें शायद यह नहीं मालूम कि मैं विवाहित हूं. दो बच्चों का पिता हूं. घर-गृहस्थी से संतुष्ट हूं. मुझसे तुम्हें क्या मिलेगा? मैं तुम्हें शुभाकांक्षा के अतिरिक्त और क्या दे सकता हूं?' आप फिर चुप हो गये थे. इस प्रसंग को छोड़ने, भूल जाने की कहकर पढ़ाने में लग गये थे. और दिनों की तरह न आप पढ़ा पा रहे थे, न मैं कुछ सुन समझ पा रही थी. आपके प्रश्न से मेरा ध्यान भंग हुआ था—'अनु तुम्हें बुरा तो नहीं लगा? तुम नाराज तो नहीं हो? तुम कहीं घृणा तो नहीं करने लगोगी मुझे?' पूछते-पूछते आप उठ खड़े हुए थे. मैंने नजर उ तो देखा, आप मेरी ओर देख रहे हैं, उत्तर की आशा कर रहे हैं. आ नजरों से दो एक पल टकराकर मेरी दृष्टि वापस लौट आयी थी. कुछ देर खड़े कहते रहे थे—'अनु, गिरने-संभलने के बीच केवल क्षण का फासला है. कोई एक क्षण आदमी को कहीं से कहीं पहुंचा दे कुछ से कुछ बना देता है. क्षण बीता कि सब कुछ बदला. मुझे विश है, जब कभी सोचोगी तो तुम यह महसूस करोगी.' कानों को जब आ शब्द सुनाई नहीं दिये, मैंने निगाह उठाकर देखा. आप जा चुके

सर, इसे आप मेरा अंधविश्वास कहें, तो कह लें. आपके संपर्क आने के बाद मेरे जीवन में विकट परिवर्तन हुए हैं. सुख चैन से परिचय हुआ है. सर, यह संयोग नहीं, तो और क्या था कि उन्हीं दिनों मां-बाप को दोबारा मेरा विवाह करने की जिद्दी बीमारी फिर उ आयी थी. पहले मैं उनके किसी तर्क, अभ्यर्थना या भावना से बिल्कु प्रभावित नहीं होती थी. अपने भाग्य में खुशी नाम की चीज के न होने घोषणा करके उनके प्रस्ताव को पूरा सुनने से पहले ही अस्वीकृत दिया करती थी. उस बार उनका पूरा प्रस्ताव मैंने कई दिन तक संकल्प-विकल्प की यातना झेली. कुछ निर्णय न ले पाने के कारण सं के साथ इस संबंध में आपकी राय मांगी. आपने झटपट घरवालों की को अपना भरपूर समर्थन दिया था. मैंने उसी रात अपनी स्वीकृति शर्त के साथ परिवार के लोगों को दे दी थी, कि सर को सब कुछ दिखाना बताना पड़ेगा. अगर सर स्वीकृति दे देंगे तो मुझे कोई आ नहीं होगी. उसके बाद जो हुआ सब आपके द्वारा हुआ, आपके सा हुआ. वर्तमान पति आये. आप मिले. बातें कीं. दो दिन आपसे व घरव से उनकी क्या बातें हुईं, यह नहीं मालूम. परंतु यह अच्छी तरह या कि वर्तमान पति ने उस बार मुझसे मिलने पर क्या कहा था. सर, बताया गया था कि उनकी पहली पत्नी शादी के एक माह बाद ही बस दुर्घटना में खत्म हो गयी थी. शादी का उनका कोई इरादा कई तक नहीं हुआ. मेरे पिता व अन्य एक दो रिश्तेदारों के प्रयासों जानी-पहचानी देखी भाली जगह से, शादी कर लेने को वे तैयार हो थे. वे भी दो दिन घर में बड़े शांत और गंभीर रहे थे. चलते सय मु मिले, कुछ बातें की, और बोले—'आपने जीवन में दुख देखे हैं इस उम्मीद है कि आप सुख की कीमत समझेंगी. आप भाग्यशाली हैं आपको ऐसे अध्यापक मिले हैं. मुझे भरोसा है आप ऐसे व्यक्ति से लेने के बाद अपना कर्तव्य और दूसरे की भावनाओं का खयाल सकेंगी.' सर, मुझे सच में उस दिन पहली बार आप पर गर्व हुआ था. तय हुआ. वे विदा हो गये. आर्य समाज मंदिर में दोबारा हुए मेरे वि संस्कार के घरवालों के अलावा अकेले आप साक्षी थे. न कोई परिचित रिश्तेदार. एक घंटे में मैं परित्यक्ता से पत्नी बन गयी थी. आपको है, संस्कार संपन्न होने पर, उठकर मैंने केवल आपके पैर छुए थे आपने मुझे वही सबके सामने पहली और अंतिम बार चूमा था.

आपको याद होगा, उस चुंबन से जुड़ा प्रसंग सर! आप भले ही गये हों लेकिन मैं न अब तक भूली हूं, न भूलूंगी. तब तक चुंबन का आने पर मैं भी अन्य स्त्रियों की भांति लजाने-शर्माने का ढोंग करती तब प्रथम बार मुझे चुंबन की ताकत जानने का अवसर मिला था परीक्षा समाप्त हो चुकी थी. परिणाम निकला. उम्मीद थी कि श्रेणी के लिए मुझे शाबाशी देने स्वयं आयेंगे. चूंकि वह भी अनुमान इसलिए उसे गलत निकलना ही था. कई बार बुलाये जाने पर आप दोपहर आये. आप उसी जगह, उसी कमरे में बैठे थे. आप कह चु कि मेरी मेहनत का फल मुझे मिल गया है. मैं कहना चाहती थी कि केवल आपकी कृपा का परिणाम है. आपकी अपेक्षाकृत कुछ क कमजोर आवाज मेरे कान में पड़ी—'अनु, मैं कुछ बातें तुम्हें ब चाहता था.' मैं समझ न सकी कि कैसे उन बातों के साथ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत-बहुत बातों को बताने का निवेदन आप से करूं. चुप रह गयी.
'क्या तुम कभी नहीं पूछोगी, अनु, मैंने तुम्हारा पत्र क्यों और कैसे लौटाया? क्या तुम समझती हो कि मेरे अंदर कोई उथल-पुथल नहीं हुई थी?'

सर, मेरे लिए आपका इस तरह से बोलना कहना अप्रत्याशित था. मेरा मुंह खुल नहीं सका था.

'अनु, तुम्हारे पत्र को पाने के बाद मैं पूरी रात नहीं सो सका था. पत्र को तुम्हारे हाथ में लौटाकर देने से पहले क्या-क्या नहीं सोचा था मैंने? मैं पढ़ाने आना बंद कर दूं, परिवार के किसी सदस्य को वह पत्र दे दूं और एक क्षण को यह भी कि क्यों न तुम्हारा आमंत्रण किसी न किसी रूप में स्वीकार कर लूं. परंतु अनु, उस तनावों में कटी रात के किसी हिस्से में यह खयाल जोर पकड़ता गया कि मैं विवाहित हूं, में अध्यापक हूं. मेरा बहकना अपने परिवार और अपने पेशे के प्रति बेईमानी होगी. अनु, मैं मानता रहा हूं कि ईमानदारी को खंड-खंड जीकर मूल्यांकित करना केवल एक भ्रम है. मेरे एक कदम के आधार पर मेरे पूरे वर्ग का मूल्यांकन तुम उम्र भर करती रहोगी. मेरे कारण तुम्हें सारी अध्यापक जाति से घृणा या श्रद्धा हो सकती है. अनु, मैं पत्थर नहीं था, देवता भी नहीं था. मैं एक आदमी था ओर आदमी हूं. तुम्हें समझाकर पत्र लौटा देने का निर्णय मैंने उस रात के उन तनाव भरे क्षणों में ले लिया था.

सर, मैं तब भी चुप रही. मैं साफ देख रही थी कि आप कुछ असहज थे उस दिन. मैं बोल नहीं सकी, पर आपको बताना चाहती थी कि आपको देखकर मैं पुरुषों को घृणा करते जाने के अपराध से बची थी सर! उस दिन भी हृदय के भावों को छुपाकर, बदलकर प्रस्तुत करने की कला से अपरिचित, अनजान आपके चेहरे को देखकर मुझे तृप्ति मिली थी, संतोष हुआ था. मुझे चुप देखकर आपने कहा था—'अनु, क्या आज के बाद अब हम मिल पायेंगे? मिलेंगे भी तो अब इस तरह बैठकर बातें करने का अवसर कभी नहीं मिलेगा. अनु, जो कल था, आज नहीं है. जो अब है, उसे कल नहीं रहना है.'

मैं कितनी नादान थी तब? इस तरह मैंने सोचा ही नहीं. आपके सुना, तो हिल गयी. कुछ कहना चाहा. थूक सटका. जीभ होंठों पर फिरायी. खांसी-मठारी. पर सब व्यर्थ. गला भर आया. टप, टप, टप, टप! सामने मेज पर पड़ती उन बूंदों को आपने देखा. में काबू नहीं रख पा रही थी.

'नहीं, नहीं, ऐसे नहीं रोते, तुम तो पागल हो बिल्कुल.' कहते-कहते आपने बाल सहलाये. पीठ ठोकी. अपनी उंगलियों से चिबुक को सहारा देकर मेरा चेहरा ऊपर किया. कुछ देर मेरी आंखों की ओर देखा. पानी भरी मेरी आंखों से साफ-साफ देखा कि आपकी भी आंखें निर्जल नहीं थी और न जाने क्या विचित्र और अवांछित कह रही थीं. आपके होंठ उसी मुद्रा में मेरी आंखों की ओर बढ़े. मैं चौंकी. मैं कांपी. मैंने चीख पड़ना चाहा. तेजी से अपनी उंगलियों के स्पर्श द्वारा आपके चेहरे को केवल पीछे कर दिया.

सर, उस समय तक मैं चुंबन को प्रेम के आवेश पूर्ण कामातुर क्षणों का एक उत्तेजक भर मानती थी. आपसे प्रथम बार यह जाना कि अलग-अलग क्षण में अलग-अलग व्यक्तियों के होंठों द्वारा शरीर के अलग-अलग हिस्सों के स्पर्श से अनगिनत भावनाएं, संवेदनाएं जगा सकनेवाले चुंबनों के अनगिनत प्रकार हो सकते हैं. यहां भी आपसे झूठ नहीं बोलूंगी. मेरी अल्पज्ञता हो सकती है सर. तब मुझे लगा था जैसे एक पिता अपनी अबोध बच्ची के सामने धीरे-धीरे अपने वस्त्र उतारना चाह रहा है. बच्चों को निर्वसन देखने का बड़ों को अभ्यास होता है सर! किसी अन्य को नंगा देखने के लिए बच्चे भी आतुर-व्याकुल हो सकते हैं. परंतु अपने माता-पिता को निर्वसन होते देख बच्चों की आंखें अंधी-सी हो जाती है न सर? उस छोटी-सी कालावधि में पहले मैंने सोचा कि मेरा स्पर्श आपको कहीं अपवित्र न कर दे. फिर मुझे स्वयं पर क्रोध आया कि मैं आपको नहीं, आपके होंठों को एक स्पर्श तक न दे सकी. वह क्रोध मुझे

सब्र

□ एल.एल. मीणा

पूरे घर की सफाई के कारण आज भोजन बनने में बहुत विलंब हो गया था. बच्चे बेसब्री से भोजन का इंतजार कर रहे थे. दोनों कुत्तों को भी कुछ नहीं मिल पाया था, जिसमें से एक ज्यादा शरारती होने के कारण बंधा हुआ था और दूसरा टोह ले रहा था इधर-उधर ... उधर भोजन बनना शुरू हुआ नहीं कि इधर बच्चे डट गये थाली-कटोरियां ले कर और इंतजार करने लगे रोटी सिक कर आने का ... पहली रोटी सिक कर आयी तो बच्चे उस पर झपट पड़े. जैसे ही रोटी आती, बच्चे उस पर झपट पड़ते. जिस के हाथ जितना टुकड़ा लगता वह उस को मुट्ठी में दबा कर खाने लगता, शंकित नजरों से अन्य बच्चों की तरफ देखता हुआ कि कोई छीन न ले! इस छीना-झपटी मे छोटे बच्चे को कुछ नहीं मिल पाया था और वह रोने लगा था. बड़े बच्चे एक दूसरे से कहते तो रहे कि तू दे, तू दे, लेकिन देने को कोई तैयार न था ... रोटी सिकने की रफ्तार बढ़ी तो बच्चों की यह छीना-झपटी खत्म हुई. एक स्थिति में जब थाली में रोटी अतिरिक्त हो गयी तो बड़ी लड़की ने एक रोटी उठा कर कुत्ते को दे दी, जो वहां आ कर खड़ा हो गया था. दूसरा बाहर बंधा कूं-कूं कर रहा था. कुत्ते ने रोटी ली, भाग कर बाहर गया बंधे हुए कुत्ते के पास और उस को वह रोटी दे कर वापस आ खड़ा हुआ उसी जगह पर. □

ग्लानि बनाकर कुढ़ा-घुला डालता यदि आपने आगे जो कहा, वह न कहा होता—'अनु, क्या तुम्हें तुम्हारे पिता ने कभी नहीं दुलारा-चूमा?'
'क्यों नहीं सर!'
'तब?'
'....'
'वैसे मुझे खुशी है. तुम बहादुर हो. मेरे द्वारा तुम्हें विश्वास दिया ही जाना चाहिए.'

मैंने कहना चाहा—'सर, मैं आपको कैसे बताऊं कि आपको मैं क्या मानने लगी हूं?—कह नहीं सकी. मुझे पता नहीं तब क्या हो गया था. आपने मेरी उंगलियों में अपनी उंगलियों फंसाते-उलझाते कहा था—'अनु, यद तुमने मेरी सीमाओं को मानने से इनकार कर दिया होता तो मैं अकेला क्या यह स्तर रख पाता? मेरा यह बड़प्पन रह नहीं पाता शायद! बस एक आश्वासन चाहता हूं. अपनी इस आस्था और श्रद्धा से मुझे कभी वंचित तो नहीं करोगी अनु?'

मेरे मुंह से अपने आप निकला था—'कभी नहीं सर! कोशिश करूं, तब भी नही. आप मेरे इस विश्वास की पूंजी को मुझसे कभी छीनना नहीं सर! कभी नहीं! नहीं छीनेंगे न सर?'

आप उठकर चलने को तैयार थे. मैं दरवाजे तक आपको छोड़ने आना चाहती थी. आपने रोक दिया था. सर वह कालखंड मेरे मस्तिष्क में अमरत्व पा गया है. अतीत में ऐसे ही किसी कालखंड पर एक शंहशाह द्वारा संगमरमरी पत्थरों के सहारे प्रेम को अमरत्व प्रदान करने के उद्देश्य से बनवाया गया ताजमहल मैंने देखा है सर. संभव होता तो मैं उस कालखंड पर एक ताजमहल बनाकर अपनी आस्था और अपनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रद्धा को अमरत्व प्रदान कर देती. शब्दों का वह अंतिम आदान-प्रदान मैं भूली नहीं हूं सर.

'22 अक्टूबर को शाम चार बजे आर्य समाज मंदिर में तो आप आयेंगे न? आपको आना होगा सर.'

'आऊंगा अनु, जरूर-जरूर आऊंगा.' आपने मेरे कंधे पर अपना हाथ रखते हुए खड़े-खड़े कहा था. मुझे लगा जैसे एक पुल बन गया था उन हाथों का दो शरीरों के बीच. आंसुओं को थोड़ी देर पहले बोलते हुए मैंने सुना था. एक मन से दूसरे मन तक पहुंचकर संदेशवाहक का काम करते मैंने देखा था. हाथों के उस पुल से बहुत-सी इच्छाएं, बहुत-सी भावनाएं इधर से उधर यात्री बनकर दौड़ने भागने लगी थी. पुल तो सदैव हर स्थिति में अपने धर्म का निर्वाह करता है सर. यह तो लोगों पर निर्भर करता है कि उसको वे क्या-क्या पाने ले जाने का माध्यम बनाते हैं.

'तब सर, मेरी एक प्रार्थना और स्वीकार करें आप!'

'बोलो अनु, बोलो! क्या?'

'सर, उस दिन सबके सामने आपने चरण स्पर्श की अनुमति चाहती हूं और तभी आपसे अपने मस्तक पर एक चुंबन अंकित करने की याचना करती हूं मैं!' कह तो गयी, पर आपके जाने से पहले ही आपके सामने से मैं भाग आयी थी. आकर घंटों बिस्तर पर पागल की तरह पड़ी हिलक-हिलक कर खूब रोयी थी.

आप थक जायेंगे सर, पत्र पढ़ते-पढ़ते. मैं इसे दोबारा नहीं पढ़ूंगी. कहीं पोस्ट करने का इरादा त्यागना न पड़ जायें. जो मन में आया, लिखती रही हूं. रजिस्टर्ड डाक से भेजूंगी. सादा डाक से भेजने-मिलने का क्या भरोसा? जानती हू, आप उत्तर नहीं देंगे. मैं नहीं चाहती कि आप उ[…] दें. इतना जरूर चाह रही हूं कि पत्र आपके हाथों तक पहुंचे, आप[…] और बीता काल खंड आपकी स्मृति में भी कुछ समय के लिए जी[…] उठे.

सर, छंद और उसका प्रसंग तो इस समय मुझे याद नहीं. [...] 'उद्धवशतक' पढ़ा रहे थे. कुब्जा के संदर्भ में 'द्वापर' में अभिव्य[…] मैथिलीशरण गुप्त की आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि की चर्चा कर रहे[…] बता रहे थे कि कृष्ण द्वारा कुब्जा का कूबड़ समाप्त करना, वस्[…] उसकी हीनताग्रंथि को समाप्त कर, उसमें आस्था व विश्वास जमा[…] उसे नारीत्व की अनुभूति करा देना था. आज मुझे लग रहा है सर[…] आपने एक आदमी, एक अध्यापक बने रहकर मेरे संदर्भ में कृष्ण के[…] धर्म को निर्वाह किया था. मैं कृतज्ञ हूं सर. आप विश्वास रखें कि[…] जिस-जिस हिस्से को आपके स्नेह स्पर्श का प्रसाद मिला था, वह फौ[…] की तरह अटूट रहकर मस्त जी रहा है. आपको अपने हाथ की उ[…] उंगलियों से पत्र लिख रही हूं, जिनसे गृहस्थी के सारे काम करती हूं.[…] जिन्हें कभी आपने छुआ था. आपके स्पर्श के प्रभाव ने मस्तक को[…] झुकने नहीं दिया. आपके द्वारा थपथपाये कंधों और ठोककर मजबूत[…] हुई पीठ में जीवन जी सकने की पर्याप्त शक्ति है. बच्चे ठीक हैं.[…] सकुशल हैं, प्रसन्न हैं. विश्वासपूर्ण, आस्थावान जीवन की शैली[…] सीख यदि आपसे मुझे न मिली होती, तो मुश्किल से बना मिला[…] छोटा-सा परिवार बहुत से अन्य परिवारों की तरह अविश्वास क[…] और रोज-रोज की घुटन-टूटन का शिकार हो सकता था. सर, मैं ख़ु[…] हूं. आप चिंता न करें. मैं खूब खुश हूं. आपकी कृतज्ञ भी.

मैं कामना करती हूं कि आप मुझे गर्व कर सकने के अवसर जीवन[…] देते रहेंगे. आप पर हुए हमले पर मैं क्या कहूं? कैसे संवेदना या सांत्व[…] प्रगट करूं? मैं नहीं समझ पा रही. हमले को पढ़कर जो अनुभव हु[…] लिख चुकी हूं. भविष्य में आपके मंगल की कामना करते हुए पूछ[…] चाहूंगी सर, रेगिस्तान में जब पानी की बूंद या वृक्ष की छाया किसी या[…] का लक्ष्य अथवा आदर्श बन जाये, तब उसके लिए थकान और तपन[…] कोई अर्थ रह जाता है सर? मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसे आक्र[…] आपको हिला नहीं सकते. पर फिर भी यदि इन दिनों आपने तनाव[…] किसी क्षण में स्वयं को थका-हारा या अकेला अनुभव किया हो तो[…] आगे की पंक्तियों को जरा रुककर आप पढ़ लेना—'एक मजबूत पेड़[…] गिराने के लिए आंधी-तूफान को ऐड़ी-चोटी का पसीना एक क[…] पड़ता है. ऐसा नहीं है कि बड़े मजबूत पेड़ टूटते या गिरते नहीं हैं. लेकि[…] जब गिरते हैं सर, तो गिरने से अकेले वे ही प्रभावित नहीं होते. कित[…] खुशियां, कितने विश्वास, कितनी आस्थाएं उनके साथ टूट[…] धराशायी हो जाती हैं. उनसे लिपटकर आगे बढ़ती लताएं, उन पर[…] घोंसले, उनके निवासी, उनकी छाया में आसपास की हंसती-लहरा[…] हरी-भरी धरती के लिए दुर्भाग्य होता है किसी बड़े वृक्ष का गिर जा[…] टूट जाना सर.'

बस अब और अधिक नहीं सर. केवल एक बात. बहुत मिल[…] आपसे. एक अनुमति और. जब भी कभी आपके दर्शन का अवसर[…] मिले, अपने चरणों को स्पर्श करने का नहीं, चूमने का विश्वास[…] अधिकार आप मुझे देगें.

शेष शुभ!!

आपकी सद्भाव[…]

पुनश्च : आपने वह कहानी मुझे पढ़वायी थी, जिसमें मेरे पहले पत्र[…] उपयोग किया था. इस पत्र के उपयोग से आपकी नवीनतम कहानी[…] मुझे आतुर प्रतीक्षा रहेगी सर!!

"अन[…]

हिन्दी में पत्राचार द्वारा गृह सज्जा सीखिए

इन्टीरियर डेकोरेशन

(सर्टिफिकेट एवं डिप्लोमा कोर्स)

* गृहसज्जा का तकनीकी ज्ञान प्राप्त करें
* सुविधानुसार घर बैठे खाली समय में अध्ययन करें
* आसान भाषा में विशेषज्ञों द्वारा तैयार पाठ्यक्रम
* मंहगी पुस्तकें खरीदने की जरूरत नहीं
* कोर्स फीस का आसान किश्तों में भुगतान

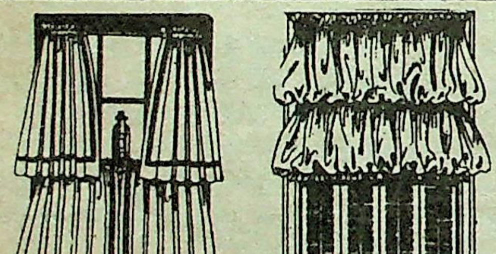

विवरण के लिए जवाबी लिफाफा भेजें :-

AID एकैडमी ऑफ इन्टीरियर डेकोरेशन

10A/14 शक्ति नगर, दिल्ली-110007.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी कहानी : प्रक्रिया और पाठ

(एक भूली हुई किताब के बारे में)

□ सुधीश पचौरी

'कथा समीक्षा की पुनर्यात्रा' स्तंभ के अंतर्गत पिछले अंक में आपने देवीशंकर अवस्थी की कथा-आलोचना पर टिप्पणी पढ़ी. इस बार सुधीश पचौरी एक भूली हुई किताब—'हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ' के बहाने सुरेंद्र चौधरी की कथा-समीक्षा पर टिप्पणी कर रहे हैं. यह क्रम जारी रहेगा...

हिंदी कहानी की उम्र कोई बहुत बड़ी नहीं है इसलिए उसके स्वतंत्र शास्त्र की उम्र भी कम ही कही जा सकती है. अधिक से अधिक शुक्ल से शुरू होकर वह आज तक चली आती है. फिर नये जमाने में अंतरर्राष्ट्रीय स्तर पर घटने वाली सांस्कृतिक घटनाओं, खासकर अंग्रेजी में बन बिगड़ रहे कथा समीक्षा के संसार का प्रायः सीधा ग्रहण सुलभ हो जाने से हिंदी कथा चिंतन की अपनी मौलिक वृत्ति को खोज पाना एक उत्साहहीन काम बन जाता है. जब सब कुछ उधर का ही है तो फिर किस बात पर गर्व-खर्व किया जाए? मन गिर जाता है और परजीवी होने का अहसास धिक्कारने लगता है. शायद इसलिए भी समकालीन समीक्षा अपनी दुर्गति को प्राप्त हो रही है.

बहुत पहले लिखी सुरेंद्र चौधरी की कथा समीक्षा पुस्तक 'हिंदी कहानी: प्रक्रिया और पाठ' को पढ़ते हुए कुछ ऐसा ही अनुभव होता है क्योंकि उसमें शायद पहली बार हिंदी कहानी को कहानी के तौर पर एक सार्वदेशिक विधा के तौर पर स्वीकृत करके, निर्विकल भाव से उसके अल्पायु में 'प्रीमैच्योर' रूपों को देखने की एक व्याकुलताभरी कोशिश मिलती है. पुस्तक संभवतः 1963 के आसपास प्रकाशित हुई है और अब प्रायः अनुपलब्ध है. जबकि वह हर हाल में हिंदी कहानी की एक अनिवार्य पुस्तक के रूप में सुरक्षित रहनी चाहिए.

इस पुस्तक में कथा चिंतन का एक पूरा इतिहास दर्ज है. हिंदी कथा समीक्षा की भाषा, उसके औजार और उदाहरण यानी आलोचना कर्म के सकल रूपों की अच्छी झलक मिलती है. पता चलता है कि तब देवीशंकर के अतिरिक्त और नामवर सिंह के अतिरिक्त एक अन्य युवा समीक्षक सक्रिय था जो हिंदी कहानी को उसका स्वतंत्र व्यक्तित्व देना चाहता था और उसे वैसा ही पाना चाहता था, कि वह इस काम के लिए गहन अध्ययन और प्रबंध लेखन कर सकता था, कि वह अपने समय के तमाम महत्वपूर्ण विचारधारात्मक प्रश्नों और रचना के प्रश्नों को आमने-सामने रखकर देख सकता था और अनातंकित रह अपने समय के लेखकों से गंभीर विवाद उठा सकता था. किंतु जो चुपके से अपने मन को भी दृढ़ता पूर्वक रख सकता था.

सुरेंद्र चौधरी की उक्त पुस्तक को पढ़ने के बाद हिंदी कथा चिंतन की कई समस्याएं स्पष्ट हो जाती हैं. कहानी रचना है या मनोरंजन, कहानी में व्यापार धर्म घुस आ रहा है तो क्या समस्या आ रही है! 'कहानी' और 'शॉर्ट स्टोरी' में क्या फर्क है? क्या कहानी को एक विधा के रूप में हिंदी में समीक्षा स्वतंत्र सामग्री माना जा सकता है. यदि हां तो उसकी प्रक्रिया (रचना प्रक्रिया) क्या है और उसका 'पाठ' क्या है? सिद्धांत कथा कम और उनका 'एप्लाइड' रूप अधिक—सुरेंद्र चौधरी की कथा समीक्षा की खास विशेषता है.

किंतु सुरेंद्र चौधरी की समीक्षा की कुछ अन्य विशेषताएं हैं जिन पर लोगों का ध्यान नहीं गया है. वे पहले समीक्षक हैं और प्रेमचंद की कथा शैली की कुछ खास विशेषताओं को रेखांकित करते हैं. प्रेमचंद के सरल, रैखिक कथा स्थापत्य में एक 'कामनैस' एक खास शांति क्यों मिलती है और क्यों आगामी कथाकारों में वह नहीं, फिर जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, आदि की कथा शैलियों की क्या विशेषताएं है जहां वे प्रेमचंद से अलग होते हैं और सार्थक होते हैं. फिर 'नयी कहानी' कहां से 'नयी' होती है? ये सारे सवाल सुरेंद्र एक विराट फलक पर स्पष्ट करते चलते हैं.

जिन लोगों ने बाद में प्रेमचंद की परंपरा की खास रट लगायी वे आलोचना कर्म में अपनाया जाने वाला विकट संयम यहां देख सकते हैं. प्रेमचंद बड़े रचनाकार हैं. इसलिए नहीं कि वे 'अंतिम दिनों में मार्क्सवादी बन चले थे' बल्कि इसलिए कि वे वाकई बड़े कलाकार हैं. नयी कहानी के दौर में प्रेमचंद के वृत्त को तोड़ने की जल्दबाजी में प्रायः यह कहा जाने लगा कि प्रेमचंद की परवर्ती कहानियां ही असली कहानियां हैं. सुरेंद्र चौधरी की कहानियों के भीतर मौजूद एक अनमोल शैली का बारंबार स्पष्टीकरण देते हैं जिसे वे 'कथा शक्ति' कहते हैं 'नेरेटिव इनर्जी वृत्तांत या आख्यान या कथा का एक स्वभाव है जो कथा के भीतर रहता है, बाद की समीक्षा में यह नेरेटिव इनर्जी भुला दी गयी लगती है. प्रेमचंद इस नेरेटिव इनर्जी को एक 'शांतिपूर्ण' वातावरण में बदल देते हैं, वे मामूली से प्रसंग में एक विशाल और विराट अर्थ स्थापित करते हैं, और फिर भी निहायत प्रशांत कथा शक्ति पैदा करते हैं. यह प्रेमचंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अननुकरणीय कला है जो उन्हें महान बनाती है. प्रेमचंद की अनेक कहानियों की ऐसी सूक्ष्म पड़ताल अन्यत्र दुर्लभ है. सुरेंद्र प्रेमचंद की इस 'प्रशांत शैली' को हिंदी की अपनी मौलिक उपलब्धि मानते हैं. यह उनकी समीक्षा पद्धति का मुख्य प्रस्थान बिंदु है. वे प्रेमचंद को सबसे बड़ा कलाकार मानते हैं और एक बड़े कलाकार के कथानक के ढांचे (जिसे वे स्थापत्य कहते हैं, जो शायद तब नया-नया चलन में आया होगा जब वे लिख रहे थे) के भीतर कलातत्वों का अध्ययन करते हैं. लगभग समग्रता में वे उन्हें महान दिखते हैं फिर भी वे 'महान' शब्द का उपयोग नहीं करते.

शायद वे प्रेमचंद की महानता मानते नहीं, उसे खोजना चाहते हैं. खोजते-खोजते वे कहते हैं, "प्रेमचंद की कहानियों के 'कथात्मक स्थैर्य' (नेरेटिव काम) के अंतरंग में जो गति है, जो सहज योग क्षेम की अनुभूति है, और जो सर्वाश्रित संवेदनीयता है, वह उनके कथानकों से विकसित होती है, विचार के बहिरंग ढांचे से नहीं." ये समग्र कला के औजार हैं जिन्हें सुरेंद्र खोजते हैं. बहिरंग ढांचे और विचारों से उत्तेजित होकर प्रेमचंद को प्रगतिशीलता का लठैत बनाने में जो किशोर वय वाली आसानी है. सुरेंद्र उधर नहीं जाते बल्कि रचना के गहरे प्रसंगों में उनके लिए यह श्रेणी ही बेकार हो जाती है.

कथानक, कथा शक्ति और कथात्मक वृत्ति—ये तमाम कथा नेरेटिव—के कारक हैं. सुरेंद्र चौधरी की समीक्षा पद्धति कहीं भी इनकी पड़ताल नहीं छोड़ती. इस अर्थ में वे समीक्षा में यादृच्छिकता का सहारा नहीं लेते. वे समीक्षा के नाम पर प्रायः चलने वाले 'स्पेकुलेटिव' या मनमाने ढंग को स्वीकार नहीं करते. यानी आप उन्हें उनके औजारों समेत कहीं भी कभी भी पकड़ सकते हैं. यहां अन्य आचार्यों की तरह का गोपन व्यापार नहीं है, न 'बंद मुठ्ठी में क्या है' की कयास लगाने वाले सट्टेबाजों का मसखरा तरीका जो 'जाकी रही भावना जैसी' वाला आचरण करता है.

जैनेंद्र, यशपाल, अज्ञेय, प्रेमचंद से अलग यदि दिखते हैं और फिर भी 'खास' दिखते हैं तो इसी औजारों की स्पष्टता के कारण, वे 'नेरेटिव' के पक्के औजारों से इनकी कथा में भी एक बड़ा सार्थक तत्व निकालते हैं, प्रेमचंदीय कथात्मक स्थैर्य की जगह बाद में यदि कहानी में यह 'शांति' भंग होती है, अनस्थिरता आती है तो सुरेंद्र उसे सकारण रखते हैं. कहानी में 'विचार को निचोड़ना' और कथानक का एकदम गौण हो उठना, प्रेमचंद के बाद की कहानी की यह प्रमुख समस्या है. इस प्रसंग में कथानक का बदलता रूप सुरेंद्र की नजरों से छुपा नहीं रहता. वे कथाशक्ति को खोजते हैं और 'संश्लिष्टता' की तलाश कथानक में करते हैं. यही संश्लिष्टता जब परवर्ती कहानी में गिरती दिखती है तो वे इसे कथा के संकट का नाम देते हैं. क्या बाद के कथा विकास के संकट को उन्होंने बहुत पहले ही नहीं देख लिया था? मुझे लगता है कि 'कथा शक्ति' के ह्रास को देखने वाले वे पहले समीक्षक हैं. इसीलिए यह पुस्तक इस मौलिक चिंता से शुरू होती है कि कथा लेखन में व्यापार धर्म रचना धर्म को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है.

सुरेंद्र के अज्ञेय संबंधी विचार इसीलिए बहुत सों को चौकाने वाले लगेंगे. वे अज्ञेय की कुछ अति प्रसिद्ध कहानियों को जितने आदर से याद करते हैं और उनके 'कथा स्थापत्य' की चर्चा करते हैं उसे देख उनके साहस की प्रशंसा करनी होती है क्योंकि जब अज्ञेय को उनके

> सुरेंद्र के अज्ञेय संबंधी विचार इसीलिए बहुत-सों को चौंकाने-वाले लगेंगे. वे अज्ञेय की कुछ अतिप्रसिद्ध कहानियों को जितने आदर से याद करते हैं और उनके 'कथा-स्थापत्य' की चर्चा करते हैं उसे देख उनके साहस की प्रशंसा करती होगी, क्योंकि जब अज्ञेय को उनके 'प्रतिक्रियावादी' अपराधों के लिए 'सजा-ए-मौत' दी जा रही थी तब सुरेंद्र चौधरी प्रेमचंद के बाद एक बड़े कलाकार के रूप में उन्हें सिद्ध करते नजर आते हैं.

'प्रतिक्रियावादी' अपराधों के लिए 'सजाए मौत' दी जा रही थी तब सुरेंद्र चौधरी प्रेमचंद के बाद एक बड़े कथाकार के रूप में उन्हें सिद्ध करते नजर आते हैं. विचारों से मार्क्सवादी होते हुए भी, इस अर्थ में वे अन्य तमाम अपने समकालीन 'मार्क्सवादियों' से भिन्न और स्वतंत्र हैं. वे कला की दुनिया में कला के भीतर ही समग्र चीजें देखते टटोलते हैं कला से बाहर दिखने वाले आचरण और विचार के सहारे रचना को दो दूनी चार में नहीं देखते. अज्ञेय की राजनीतिक विचारधारा क्या थी—यह तथ्य सुरेंद्र जैसे सी.पी.आई. के कार्ड होल्डर से बेहतर कौन जानता होगा, फिर भी वे इस कारण कथा के भीतर अज्ञेय को 'सजाए मौत' नहीं सुनाते. यह विकट संयम है एक समीक्षक का क्योंकि उसके लिए कला कर्म ही समग्र कर्म है, उसी में विचारधारा और अनुभव सब समा जाते हैं. वह इस मायने में देवीशंकर की तरह रचना को एक साथ समग्रता में समझने की कोशिश करने वाले समीक्षक हैं.

इस अर्थ में सुरेंद्र चौधरी नयी कहानी वाले नामवर सिंह से कई मायनों में भिन्न एवं यत्किंचित बेहतर समीक्षा कर्म का उदाहरण बनते हैं. वे कला के भीतर-बाहर आते जाते हैं और कला की शर्तों पर. कथा है तो 'नेरेटिव' की अनिवार्य और तमाम सार्वकालिक शर्तों पर. वे मार्क्सवाद की शार्ट सर्किटिंग नहीं करते. इस अर्थ में वे समीक्षा कर्म के उस स्कूल के नजदीक नजर आते हैं जो समीक्षा कर्म को गहरे सांस्कृतिक तर्क की तरह लेता है और जो 'एजीटेशनिस्ट' नहीं है. हिंदी समीक्षा में रामविलासजी आज तक एजीटेशनिस्ट आलोचना के सबसे बड़े प्रतीक हैं और नामवरजी भी इसके 'बॉडी लाइन' के केस हैं. नामवरजी की कथा समीक्षा में कथा, कथाकार और उसके प्रति अपने उद्गारों का चुनाव इसी मेरे-तेरे वाली माया से तय होता है यह 'एजीटेशनिस्ट' दृष्टि है जो प्रगतिशीलता के नाम पर चली है.

स्वयं सुरेंद्र चौधरी इस पद्धति के कभी कायल नहीं रहे बल्कि वे शायद कथा समीक्षा में इसका प्रबल निषेध जैसे हैं. इसकी सजा भी उन्हें खूब मिली है. अन्यथा एक जमाने में अपने समकालीनों में सर्वाधिक व्यापक फलक पर कथा चिंतन कर सकने वाला यह शख्स साहित्यिक परिदृश्य से यों गायब-सा कर दिया गया होता और एक उभरता हुआ बड़ा समीक्षक यों निर्वासित न हो गया होता. हिंदी में जदानोवीय संस्कृति सोवियत साहित्य से भी ज्यादा क्रूर रूप में आज भी जीवित है.

सुरेंद्र चौधरी मुक्तिबोध की तरह और शायद उनके समांतर कथा में कहानी की प्रक्रिया की बात करते हैं और उसके पाठ पर जोर देते हैं. हम सब जानते हैं कि बाद के दिनों में कविता के 'अवधानपूर्वक पाठ' पर नामवरजी ने जोर दिया. कहने का अर्थ यह कि सुरेंद्र हिंदी कथा के जातीय स्वभाव को समझने के लिए उसकी प्रक्रिया और पाठ को आवश्यक मार्ग मानते हैं. इस अर्थ में, उनके ये निबंध कथाकारों के लिए खासकर उपयोगी हैं. दरअसल, वे कहानी लिखने वालों के समीक्षक हैं और इसी अर्थ में कथा समीक्षा के एक महत्वपूर्ण उदाहरण हैं. उनकी समीक्षा देखकर समीक्षा करना सीखा जा सकता है.

सुरेंद्र चौधरी की कथा पद्धति अपने ही निष्कर्षों और स्थापनाओं पर इस कदर आश्वस्त रहती है कि खंडन-मंडन का मौका रहते हुए भी वे उधर ज्यादा समय खराब नहीं करते. यह आत्मविश्वास यहां तक कि वाक्यों में लगभग 'आदेशात्मक' अनुगूंजें रहती हैं. यह आत्मविश्वास भी है और कैशोर्य भी कि उनकी पद्धति पर इसका अच्छा असर पड़ता है. यह निश्च्छल अहंकार का लाभ है जो समीक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कविता का अंत' से...

समकालीन कविता में ऐसा क्या है जो उसे भक्तिकाव्य से जोड़ता है? यह करुणा का भाव है, यह करुणा की संरचना है. दु:ख मूलक इस कविता का संदेश करुणा ही है. यह करुणा का नया काव्य है जिसे सुखवादी समाज में उसी तरह व्यर्थ और तिरस्कृत किया जाता है जिस तरह भक्तिकाव्य तिरस्कृत हुआ होगा. सुख-सिद्धांत में शिक्षित कर दिए गए समाज में जब दु:ख का परिज्ञान ही मंद कर दिया गया हो तो करुणा की अवतारणा कैसे होगी? उसका आग्रह और सम्मान कैसे होगा? समकालीन कविता को लेकर प्राय: लिखी जाती टिप्पणियों में इस मर्म का जाने-अनजाने तिरस्कार उसके साथ सुख-सिद्धांत के द्वारा तय किए गए रिश्ते का ही परिणाम है. समीक्षक यदि इस कविता की गहन सामाजिकता नहीं देखते तो इसीलिए कि वे या तो कला का परम सुख देखने के आदी हैं या क्रांति का परम सुख. यह कविता इन दोनों से परे चली गई है. एक समूचा दौर बदल गया है कविता में.

समकालीन काव्य का स्थायी 'करुणा' कहने के पीछे उसकी वह नई संरचना है जिसके केंद्र में रक्षा की प्रार्थना का भाव है. कविता में स्त्री, बालिका, पत्नी, मां, बच्चे पक्षी, पशु, पेड़, प्रकृति यों ही अवतरित नहीं हो गए. ये समकालीन समाज के मूल आलम्बन हैं और इसीलिए कविता के भी अनिवार्य आलम्बन बन रहे हैं. यदि कविता और जीवन के संबंध की अनदेखी करने की जिद नहीं ठन रखी है तो यह संबंध देखने के लिए अलग से प्रशिक्षण की जरूरत नहीं. समीक्षा चाहे तो इसे देख सकती है.

समाज के अप्रकट आलम्बन रचना में ही मूर्त रूप धारण करते हैं. समाज रचना में इसी रूप में अवतार लेता है, अवतारणा करता है कवि. बहुत पुरानी भाषा है मगर 'अवतारणा' की यह अवधारणा आधुनिक संरचना से खूब मेल खाती है.

इस कविता में सर्वाधिक उत्कट आलम्बन 'स्त्री' का है. स्त्री यानी एक जाति. यदि कविता के बारे में भी कविता है तो कविता को स्त्री के रूप में ही सोचा गया है. यदि उपरोक्त तमाम आलम्बनों की प्रकृति देखी जाए तो यह तथ्य खुलेगा कि कविता में आने वाले ये तमाम आलंबन 'धरती मां' (मदर अर्थ) के एक विराट प्रतीक की सृष्टि करते हैं, जो तमाम दीन वस्तुओं की रक्षा का आश्वासन देता लगता है. मां का यह महा प्रतीक समकालीन कविता के केंद्र में है. स्त्री में मां! बच्ची में मां! बच्चे में मां! प्रकृति में मां! कविता में मां का यह सर्वाश्लेषी प्रतीक इतना बड़ा है कि कविता से आरपार फैला है. यह कविता इस 'मां' की ही खोज है. वह सीता माता की खोज है. वह मदर मेरी की खोज है, वह 'दुर्गा' की खोज है. हर तरफ से दुत्कारे गए मनुष्य की व्याकुल खोज है यह कविता, जिसमें 'मां' की महान मूर्ति बैठी है. वह समूची रचना प्रक्रिया को अपने स्नेह, ममता, वात्सल्य और प्रेम से बांधे है.

कविता में 'व्यंग्य' की जगह निवेदन ने अगर ले ली है तो इसी 'मां' के कारण. एक विश्वदृष्टि की तरह वह हरेक चीज को व्यवस्था देने का काम करती है. जो लोग अवतारणा को 'नकल' कहते हैं या फैशन, उनके लिए भी यहां करुणा का सागर छलछलाता रहता है. यह कविता की अहिंसा है. व्यंग्य की हिंसा नहीं रह गयी है. यह अहिंसा की संरचना है. इस मां की अवतारणा करने के बाद हिंदी कविता न केवल पूर्ववर्ती दौर से एकदम अलग खड़ी हो गयी है बल्कि कई सौ साल की पीछे यात्रा करती हुई मध्यकालीन भक्ति-काव्य के पास जा खड़ी हुई है. यूटोपिया-विहीन समाज में टिकने के लिए इतिहास में ही जाया जा सकता है. □

[सुधीश पचौरी की पुस्तक 'कविता का अंत' के 'करुणा के वजन का कोई शब्द' शीर्षक लेख से. प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली से प्रकाशित.]

को मिलता है अन्यथा यही दादागीरी बन जाती जो अन्यों में मिलती है.

कहानी की रचना प्रक्रिया और पाठ प्रक्रिया संबंधी उनके विचार आज भी उपयोगी लगते हैं क्योंकि वे कहानी या उपन्यास दोनों को समेटने वाले 'नेरेटिव स्ट्रक्चर' को कथा के मूल में रखकर देखते हैं. पश्चिमी समीक्षा का यह सदुपयोग है जिसे वे संस्कार की तरह विकसित करते हैं. कथा अंततः वृत्तांत है, आख्यान है. हर कथा में अंततः कारक तत्व यही ठहरता है, यह विश्वास उनकी समीक्षा पद्धति को अपने तमाम समकालीनों से अलग करता है.

प्रेमचंद की 'कफन' का पाठ विश्लेषण इस संदर्भ में सुरेंद्र चौधरी के अन्यतम निबंधों में गिना जाना चाहिए क्योंकि यह कथा समीक्षा की असल चुनौती को स्वीकारता है. वह रचना से सीधे टकराता है और एक समीक्षा मार्ग बनाता है. जिसे आज हम किसी हद तक संरचनावादी समीक्षा के रूप में जानते हैं. 'कफन' के सिलसिले में चौधरी काफी हद तक उस पद्धति का उपयोग करते हैं. इसीलिए वे कफन को नहीं बुधिया की कहानी कहते हैं. प्रेमचंद के बाद वे अज्ञेय की शरणदाता और 'कैसेंड्रा का अभिशाप' दो कहानियों की समीक्षा करते हैं. 'नीलमदेश की राजकन्या' के स्ट्रक्चर में आत्मात्वेषण पाठ प्रक्रिया से ही निकालते हैं. 'जानवर और जानवर' (राकेश) में अंतर्निहित 'नयी कहानी' के पाठ के वैशिष्टय को बताते हैं. ये उनके अपने चयन हैं.

सुरेंद्र की यह किताब नामवरजी की नयी कहानी से संबंधी लेखमाला के कुछ ही दिन बाद तैयार हुई है क्योंकि इसमें उसका उल्लेख बराबर आता है. देखने वाली बात यह है कि नयी कहानी पर नामवरजी के चिंतन के मुकाबले अनेक स्तर पर भिन्न पद्धति सुरेंद्र अपनाते हैं और सफलतापूर्वक हिंदी कहानी को उसका व्यक्तित्व प्रदान करते हैं. वे फतवों और पंडित की तरह नामकरण संस्कार में व्यस्त नहीं होते □.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कमबख्त

''पार्टनर, आज मूड बहुत ऑफ है. 'कमबख्त' की बहुत याद आ रही है ...!''

कैसी है उनकी यह प्रेमिका जिसकी कहानी मित्र को सुनाकर वे हल्का हो लेना चाहते हैं ...!

□ विभु कुमार

प्रमुख कृतियां : 'सही आदमी की तलाश', 'मेरे साथ यही तो दिक्कत है', 'तालों में बंद प्रजातंत्र', 'अपरिमाषित', 'कहे ईसा, सुने मूसा', 'हवाओं का विद्रोह'.

संप्रति : दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर में हिंदी विभाग में अध्यापन.

संपर्क : सी टू वन, देवेंद्र नगर, रायपुर.

उस दिन मौसम अजीब तरह से उदास था. ऐसे में आदमी उदास न हो तो क्या करे, और जब आदमी उदास होता है, तब या तो वह शराब पीता है अथवा प्रेमिका को याद करता है—कभी-कभी दोनों काम साथ-साथ भी करता है. और अगर प्रेमिका ने शराब पीने की मनाही कर दी हो—तब?

बहरहाल इसका जवाब मेरे पास नहीं है. फिलहाल में इतना जानता हूं कि उस दिन हालात कुछ ऐसे ही थे. वह उदास था, उसका मूड ऑफ था, उसे प्रेमिका की याद सता रही थी और उसके पास गम-गलत करने के लिये पैसे नहीं थे.

शाम का वक्त और उदास मौसम और प्रेमिका की याद और मुफलिसी का आलम-यानी खुदा खैर करे.

सड़क किसी अल्हड़ प्रेमिका की तरह इठला रही थी और वह अपनी प्रेमिका की यदा में डूबा-डूबा सड़क के किनारे लगी रेलिंग पर बैठा था, कि तभी वे दिखे.

''चलो, चलकर होटल में बैठते हैं.'' अंदर ही अंदर वह खुश हो गया था-बोला कुछ नहीं.

''घर पर सामान पटककर तुम्हें ही खोजने निकला हूं. मन बड़ा उदास था. सोच रहा था तुम मिल जाओगे तो शाम की यह जानलेवा उदासी, रात की रंगीनी में कुछ तो कम होगी.'' उसे कुछ भी कहने का अवसर दिये बगैर वे कहे जा रहे थे. उसके पास सुनने के अलावा और कोइ विकल्प भी नहीं था.

होटल अपने शहर के चरित्र के अनुकूल बद-शकल था. फिर भी उसे अपनी-अपनी पत्नियों की तरह बर्दाश्त करते थे. फाइव स्टार होटलों जैसी हमारी प्रेमिकाएं हमारी पहुंच से दूर जो थीं.

खैर, फिलहाल होटल शांत था. हमारे अशांत मन को ऐसी ही शांति की जरूरत थी. उन्होंने वेटर को बुलाकर रुपये दिये कि वह एक बॉटल रम की ले आये.

वेटर के जाने के बाद उन्होंने कहा—''पार्टनर, आज मूड बहुत ऑफ है, 'कमबख्त' की याद बहुत आ रही है.'' वह सकते में आ गया. बिना पिये उसे नशा होने लगा था. वे प्रेम भी कर सकते हैं .... उसकी बुद्धि सुन्न पड़ गयी थी.

वह दिमाग पर और जोर डालने की फालतू कोशिश करता कि इसके पेश्तर वेटर दो गिलास, वेफर्स, पानी का जग और बर्फ रख गया.

उसने वैफर का एक टुकड़ा टूंगना चालू कर दिया. वे खाली निगाहों से, खाली गिलासों की ओर ऐसे देख रहे थे मानों वह गिलास उठा लिया और होंठों पर कुछ इस तरह फिराया मानो उसका चुंबन ले रहे हों. उसका दीवानापन उसके लिये हैरत की बात थी. इसी समय वेटर रम की बोतल भी ले आया.

पार्टनर, आज जो कुछ मैं तुम्हें सुनाऊंगा, उसके आधार पर तुम्हें कहानी लिखनी होगी.'' बोतल की सील तोड़ते हुए उन्होंने कहा.

''पहले सुन तो लूं.'' वे रम गिलास में उड़ेल रहे थे, लेकिन उनका ध्यान कहीं और था. उन्होंने 'पेग' नहीं 'पेगा' बना दिया था. लगा मामला काफी सीरियस है.

''प्रॉमिस करो, तो गिलास देता हूं.'' उन्होंने कहा. वे अपनी प्रेम-कहानी सुनाने के लिये व्यग्र थे और जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूं. अपना गम-गलत करने के लिये मैं व्यग्र था. गिलास उनके हाथ से लगभग छीनते हुये कहा, ''प्रॉमिस एंड चीयर्स.''

सहृदय पाठको! इस प्रेम कहानी का पहला अध्याय यहीं समाप्त कर रहा हूं. जानता हूं, और अफ़सोस भी है, कि आपको अभी तक प्रेम नामक वस्तु के दूर-दूर तक दर्शन नहीं हुए हैं. आपको शायद न मालूम हो कि प्रेम करना जितना कठिन है, प्रेम कहानी लिखना उससे कहीं और ज्यादा कठिन है, इसलिये अपनी तरफ से कुछ न कहकर सीधे उनकी डायरी के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

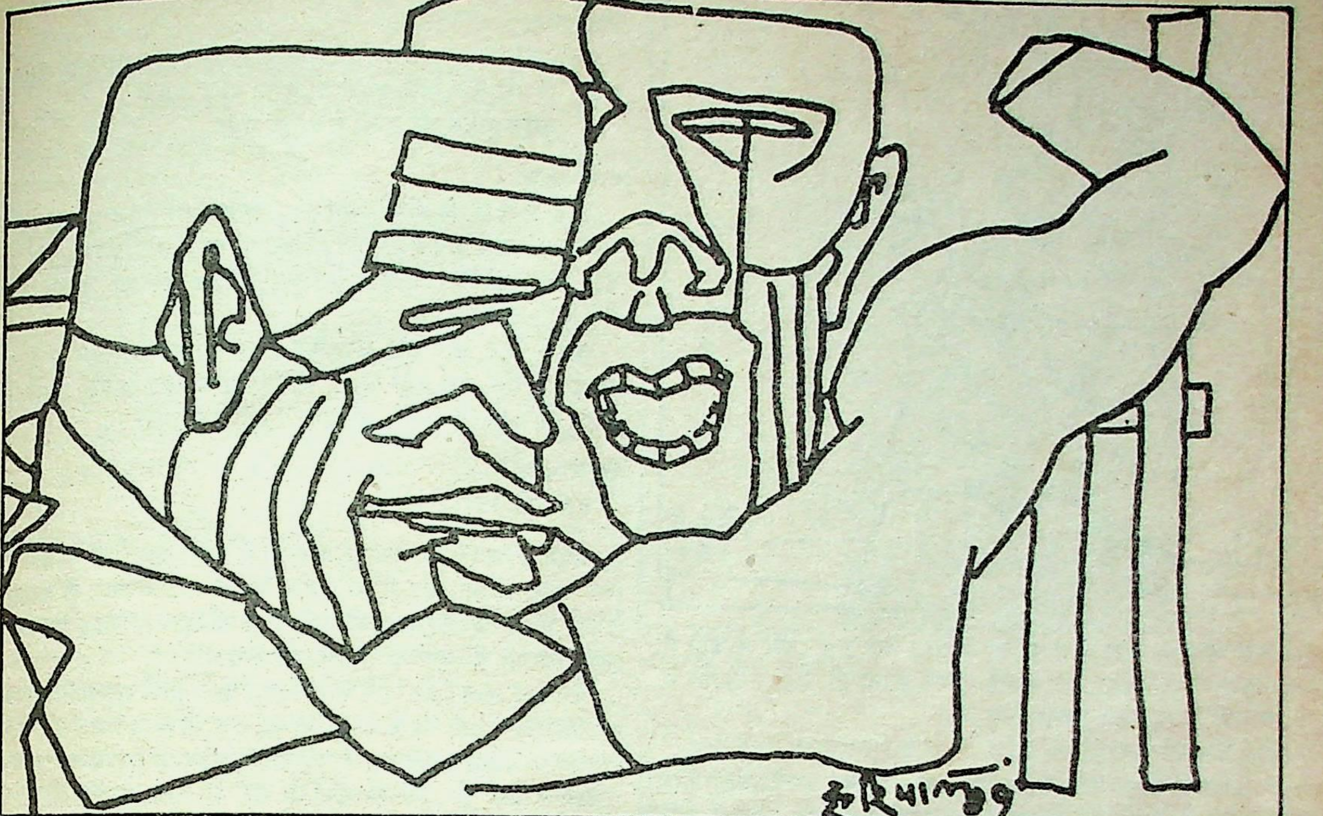

अंश, 'मय कामा, फुल स्टाप, विदिन इनवरटैड कॉमाज़' प्रस्तुत कर रहा हूं. कथाकार होने के नाते कुछ मार्जिन अवश्य ली है—मसलन अपने मित्र का नाम आपको नहीं बताया है और न ही उनकी प्रेमिका का नाम बताऊंगा. यूं भी प्रेम कहानी में महत्वपूर्ण प्रेम होता है, करनेवाले या उनका नाम नहीं. यह प्रेम कहानी अगर आपको अपनी लगे तो जिम्मेदारी मेरी नहीं कहीं-कहीं तो मुझे अपनी ही लग रही थी. और यह भी, कि जिस तरह अखबार में प्रकाशित सामग्री में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं होती, उसी तरह इस प्रेम कहानी से मेरी सहमति भी अनिवार्य नहीं है.

डायरी के अंश ....

छह सितंबर

आज मन बहुत बेचैन है. सोचता हूं, क्या मन आज ही बेचैन है—या कि इस बेचैनी का एक लंबा सिलसिला है, इतिहास है. शायद मेरी बेचैनी का इतिहास आज से दो वर्ष पहले शुरू हुआ था, जिस दिन 'उसने' मेरी क्लास में प्रवेश किया था. विगत वर्षों में कितनी ही लड़कियां मेरी क्लास में आयीं और गयीं, मैंने कभी किसी भी लड़की के विषय में सोचा तक नहीं. ऐसा क्या है इस लड़की में, कि मेरे व्यक्तित्व पर इस कदर हावी हो गयी है .....

(प्रिय पाठको! कुछ पंक्तियां मैं मित्र की भलाई के उद्देश्य, तथा प्रेम की गोपनीयता को मद्दे-नज़र रखते हुए छोड़ रहा हूं)

अपने बारे में लिखना और सच लिखना कितना कठिन है, इसका अनुभव इस क्षण हो रहा है, सोचता हूं कि लेखक जो भी लिखता है क्या वह झूठ होता है. शायद नहीं, फिर मुझे एक सच लिखने में इतनी दिक्कत क्यों हो रही है. मैंने तो सोचा था, कि जिस 'सच' को मैं उसके सामने न कह सका, उसे लिखकर ही कह दूंगा. मगर वह भी नहीं लिख पा रहा हूं. आखिर मुझे एक वाक्य ही तो कहना है उससे .... '...' (नाम) कि मैं तुम्हें .... और उसके आगे कुछ लिखने में मेरी कलम क्यों कांप जाती है.

(प्रिय पाठको, डायरी में आत्मग्लानि के प्रसंग बहुत हैं, इसलिये उन्हें छोड़ रहा हूं.

चौदह सितंबर

आज भी मैंने सोचा, वह आयेगी और मैंने देखा कि वह सामने से आ रही है. शायद टैलीपेथी इसी को कहते हैं.

मैंने सोच रखा था, चाहे जो हो जाये, आज 'सच' कह ही दूंगा. मैंने उसे पास के ही होटल में चलने के लिये कहा. थोड़े न-नुच के बाद वह राजी हो गयी लेकिन अब मुझे लग रहा है कि होटल नहीं जाना चाहिये था. अचानक ही उसका मूड उखड़ गया था. काफी देर बैठे रहने के बाद भी. मैं अपना 'सच' उससे नहीं कह सका. मन में तो इतना कुछ भरा कि कहने बैठता तो रात भी कम पड़ती. उसने एक-दो बार कहा भी, "कहिये न, जो भी कहना है." मैंने कहा, "घर आना, तब कहूंगा."

सात अक्तूबर

बीस सितंबर से आज तक के सोलह दिन मैंने कैसे गुजारे हैं, मैं ही जानता हूं

(फ्लैश बैक)

बारह चालीस के आसपास वह आयी. लगभग डेढ़ बजे मैंने उसे पिछली रात लिखी डायरी पढ़ने दी. मुझपर जैसे नशा-सा सवार था मैं चाय बनाने के बहाने से हट गया. बीच-बीच में चुपके से झांक लेता, वह चारों ओर से बेखबर पढ़ने में डूबी थी, इधर उसने पढ़ना समाप्त किया उधर मैं चाय लेकर आया, वह रो रही थी. मैंने इस स्थिति की कल्पना नहीं की थी. पांच-दस मिनट बाद उसने कहा, "आपने ऐसा कैसे सोच लिया?" मैं क्या उत्तर देता. उसने आगे कहा, "किसी और ने यह बात कही होती तो ...." (सच में डर गया था.) मैंने समझाने की कोशिश की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

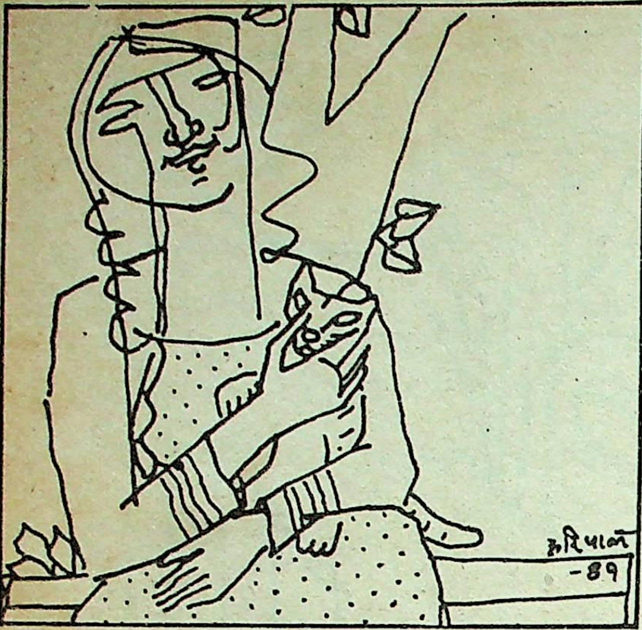

कि मेरी बात का बुरा लगा हो, तो मैं क्षमा चाहता हूं. और न जाने मैं क्या-क्या बोलता रहा. जाते-जाते उसने इतना ही कहा, ''काश मैं आपसे दस साल पहले मिली होती.''

(फ्लैश बैक समाप्त)

आज सोलहवां दिन है. मुझे फिर लग रहा है कि वह आज आयेगी और वह सचमुच आती हुई दिखाई देती है. आते ही उसने कहा, ''अब मैं कभी नहीं आऊंगी, यही कहने आयी हूं.''

''न आती तो भी मैं समझ जाता.''

''आप अठ्ठाइस-उंतीस को नहीं आये.''

''मैं डर गया था. यही सोचता रहता था कि तुमने अपने घरवालों को बता दिया होगा.''

''छह अक्तूबर को भी नहीं आये आप! मैंने कहीं पढ़ा था कि छह तारीख़ का आपके लिये विशेष महत्व है.''

''अब कब आयेंगे?''

''तेरह को.''

(मौन)

''अभी भी मुझे चार सौ बार याद करते हैं...''

''अब चौबीस घंटे बाद करता हूं.''

उंतीस अक्तूबर

मुझे रह-रहकर ऐसा क्यों लगाता है, कि उसके घर के लोग मेरा आना पसंद नहीं करते.

एक जनवरी

आज पूरे चालीस दिन बाद उसके घर गया. उम्मीद थी कि बैठते ही पूछेगी, ''इतने दिन क्यों नहीं आये!''

(प्रिय पाठको! बीच में कुछ ऐसी बाते हैं जिनका इस कहानी के मूड से मेल नहीं बैठता, बस इसलिये, उन बातों को छोड़ रहा हूं, आपको तो प्रेम कहानी सुननी है, बकवास नहीं.)

नौ फरवरी

अभी ही उसे छोड़कर आ रहा हूं. रिक्शे के चौक से मुड़ने के पहले उसने परदा उठाकर देखा. लगा, उसने अपने होंठ यूं बंद किये हो—मानों 'फ्लाइंग किस' दे रही हो. मेरी भी इच्छा हुई कि वैसा ही' करूं, संकोचवश न कर सका.

आज लगभग दो घंटे वह मेरे साथ रही. काम की बात उसने इतनी ही कही, ''दूसरी बार जब आऊंगी, बहुत कुछ कहूंगी.''

मैं अबोध बच्चे की तरह खुश हो गया.

पांच मार्च

बीच में मैं काफी दिनों बाहर रहा, लेकिन हर वक्त उसकी यादों में डूबा रहा. आज जब वह मिली तो उसने पूछा, ''वहां हमारी याद आती थी?'' मन हुआ कि चिढ़ाने के लिये कह दूं, बिलकुल नहीं, लेकिन मन पर मैंने सेर रख दिया.

उसके आने और जाने की बीच का समय इतनी जल्दी क्यों गुज़र जाता है—रुक क्यों नहीं जाता. मैं यही सोच रहा था कि उसने कहा, ''अब जाऊंगी, तेरह को आऊंगी.'' वह चली गयी.

तेरह मार्च

वह नहीं आयी.

(प्रिय पाठक! आप सोच रहे होंगे, अजीब प्रेम कहानी है, लेकिन मैं भी क्या करूं, अपनी ओर से कुछ जोड़ भी तो नहीं सकता. मैं जयशंकर प्रसाद की तरह प्रतिभाशाली नहीं हूं कि इतिहास के साथ कल्पना का समन्वय कर दूं. कल्पना को भी इतिहास बना दूं.

वैसे ठीक बात है कि मित्र को प्रेम का इजहार किये छह महीने से ऊपर हो गये, पर लड़की की ओर से—'हां-न' कुछ भी नहीं. अब इसके लिये मैं क्या करूं. मैं वही लिख रहा हूं, जो डायरी में लिखा है. पर आप ज़रा धैर्य रखिये न प्रेम और कहानी दोनों ही धैर्य की मांग करते हैं.)

तेइस अप्रैल

उसने आज कहा, कि अगर मैं वह कह दूंगी जो आप सुनना चाहते हैं—तब आप क्या कहेंगे.

मैं पशोपेश में पड़ गया. मैंने तो सोचा ही नहीं था, बल्कि मुझे तो यह भी नहीं मालूम था कि अगर लड़की प्रेम की बात स्वीकार कर ले तो क्या करना चाहिये, मुझे चुप देख, वह खिलखिलाकर हंसी. मैं अंदर ही अंदर कट गया. मैं बेचैन था और वह खुश थी—खनखना रही थी. कुछ क्षण

अपने लोग

■ सुकेश साहनी

आज वह पहली बार रेल के प्रथम श्रेणी डिब्बे में यात्रा करने जा रहा था. कई दिनों से वह इस यात्रा की कल्पना मात्र से ही रोमांचित होता रहा था. गाड़ी के आते ही वह प्रथम श्रेणी का डिब्बा ढूंढकर उसमें चढ़ गया. पहले केबिन के प्रवेश द्वार पर ही वह ठिठक गया. पूरा केबिन पुलिस वालों से खचाखच भरा हुआ था. वह उल्टे पांव दूसरे केबिन की ओर बढ़ गया. यहां चार अफसरनुमा व्यक्ति दिन में ही शायिकाओं पर आंखें बंद किए लेटे हुए थे. वह जबरदस्ती खांसा, सोचा, पढ़े लिखे लोग हैं, देखकर उठ जाएंगे. उसके खांसने का केवल इतना असर हुआ कि उनकी बंद आंखें खुल गयीं. वे सब बिना हिले डुले भावशून्य आंखों से उसकी ओर देखते रहे. उसे गुस्सा आने लगा. सब ऐसे मस्त पड़े हैं जैसे पूरी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाद वह बोली. निश्चित ही वह मेरी स्थिति भांप गयी थी, उसने कहा, "पहले सोच लीजिये फिर कहूंगी."

(प्रिय पाठको! आखिर लड़की प्रेमिका बन गयी. लेकिन उसने इतने गैररोमांटिक अंदाज में प्रेम को स्वीकार किया कि मित्र महोदय सुन ही न पाये. हादसे का आंखों देखा हाल आप उन्हीं के शब्दों में सुनिये.)

दो मई

छब्बीस अप्रेल को उसने स्वीकार किया कि वह भी मुझे प्यार करती है. लेकिन यह स्वीकार इतना गैररोमेंटिक था कि मन में किसी तरह की रोमांचकारी अनुभूति नहीं हुई, सोचने लगा क्या कारण है इसका! क्या उसने मेरा मन रखने या पीछा छुड़ाने के लिये झूठमूठ ही कह दिया है. मैंने कतई उम्मीद नहीं कि थी कि इतने गैररोमांटिक अंदाज में (आधा घंटा रोने के बाद) मुझसे काफी दूरी रखते हुये, मरियल-सी आवाज़ में वह प्यार की बात स्वीकार करेगी. उसके कहने से ऐसा लग रहा था मानो कोई उसका गला दबाकर मजबूर कर रहा हो, कि कहो ऐसा वरना मार डालूंगा.

काश कि वह स्वीकार ही न करती—

छह मई

वह मुझसे एक प्रेमिका की तरह व्यवहार क्यों नहीं करती! वह चाहती है कि मैं शराब न पियूं. इसे वह इस तरह क्यों नहीं कहती—कि आपको मेरे प्यार की कसम, आप शराब नहीं पियेंगे!

एक दिन उसने कहा, "आप अच्छी तरह रहेंगे."

मेरी समझ में नहीं आया कि इस वाक्य का मतलब क्या है. इस समय इसका संदर्भ क्या है.

एक दिन उसने कहा, "आप फालतू लोगों को याद नहीं करेंगे." मैं इस वाक्य अर्थ और संदर्भ भी नहीं समझ पाया. मैंने अपनी तसल्ली के लिये पूछा, "क्या तुम फालतू हो." वह चुप रही. इस तरह की बातें-प्रेमिकायें अपने प्रेमी से तब कहती हैं, जब उनकी शादी कहीं और तय हो जाती हैं. क्या उसके साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ है—या होने जा रहा है!

(प्रिय पाठको! डायरी में अब कुछ विशेष नहीं है. केवल कुछ तारीखों, सामान्य से विवरणों-घटनाओं के बीच में बहुत से पन्ने छूटे हैं. एक पन्ने पर लिखा है—इक्कीस जून की घटना के लिये मैं दोषी नहीं हूं

गाड़ी खरीद ली हो.

इस बार वह वनदनाता हुआ तीसरे केबिन में घुस गया. यहां एक डाक्टर साहब अपने परिवार के साथ बैठे हुए थे. कई जोड़ी आंखें उसे घूरने लगीं मानो उसने केबिन में घुसकर कोई बहुत बड़ा अपराध कर दिया हो. वह बिना कोई तौर तरीका दिखाए सीट पर बैठ गया. अगले ही क्षण उसे वहां बेहद घुटन-सी मालूम होने लगी. पूरे केबिन में चुप्पी छायी हुई थी. मानो उसकी उपस्थिति में वे आपस में बात करना भी अपना 'पोजीशन' के खिलाफ समझते हों.

गाड़ी किसी स्टेशन पर खड़ी हो गयी थी. वह केबिन से बाहर आ गया. अपने पीछे उसे मिसेज डाक्टर की आवाज सुनाई दी. "कैसे-कैसे जाहिल लोग आ जाते हैं!" वह प्रथम श्रेणी के डिब्बे से उतरकर साधारण डिब्बे में घुस गया. यहां बहुत भीड़ थी, पर लोगों ने आगे पीछे सरक कर उसे सीट पर टिकने भर की जगह दे दी. उसने राहत की सांस ली. उसे लगा जैसे वह अपने लोगों के बीच आ गया हो. गाड़ी के गति पकड़ते ही वह अपने पड़ोसी यात्री के कंधे से सिर टिकाकर ऊंघने लगा था. □

लेखक का वक्तव्य

प्रिय पाठकों! डायरी तो समाप्त हो गयी, किंतु प्रेम कहानी नहीं, ऐसी कितनी ही डायरियां समाप्त हो जायेंगी लेकिन प्रेम कहानी समाप्त नहीं होंगी. मित्र की कहानी मैं कितनी ईमानदारी से लिख पाया, नहीं कह सकता. वे इन दिनों शहर में नहीं हैं, आयेंगे तब पूछूंगा.

मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि जिसे पढ़ाने के लिये यह कहानी उन्होंने मुझसे लिखवायी है, वह इसे पढ़ भी पायेगी या नहीं! अगर पढ़ ले तो मेरे मित्र को खबर अवश्य कर दे. इक्कीस जून को क्या हुआ था, इसकी जानकारी लेखक को भी दे दें, क्योंकि पाठकों की तरह वह भी घटना की हकीकत जानने के लिये उत्सुक है. साथ ही लेखक की यह भी प्रार्थना है कि अगर उस दिन कोई सीरियस बात नहीं हुई तो मित्र से अवश्य मिले.

बेचारे उस दिन से परेशान हाल हैं.

प्रिय पाठको! इस कहानी में अगर आपका मन न रमा हो तो मुझे माफ कर दें. प्रेम अनुभव की चीज है. लिखने या पढ़ने-सुनने की नहीं अगर आपने प्रेम किया है, तो जरूर रम सकेंगे.

आपसे प्रार्थना है कि अपनी डायरी इस लेखक को न दीजियेगा सच, इस लेखक को न प्रेम करना आता है, न ही प्रेम कहानी लिखना आता है. प्रेम करना आता होता तो समय ही कहां बचता उसके पास कहानी लिखने के लिये.

छपते-छपते

प्रिय पाठको, खुश-खबरी है कि मित्र की प्रेमिका उनसे मिलने आयी थी. सारे गिले शिकवे फिलहाल दूर हो गये हैं. मेरी समस्त हार्दिक शुभकामनायें उनके साथ हैं. साथ ही ईश्वर से प्रार्थना है कि दुबारा वैसा कोई हादसा न गुजरे कि फिर कहानी लिखनी पड़े.

समाप्त

पुनश्च:

अभी भी मन में शंका है क्या उनकी प्रेमिका उनसे सचमुच मिलने आयी थी या उन्होंने यही कह दिया. मैं सच तो क्या, 'सच की परछाईं' भी देख पाने में असमर्थ हूं. देख पाता तो 'न्यूज लाइन' न बना देता. बस! सच केवल इतना है कि उस दिन के बाद से आज तक मित्र महोदय ने मुझे कभी शराब नहीं पिलायी और मेरे पास इतने पैसे कभी नहीं हुए कि खुद पी सकूं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिभुवनगाथा

आखिर ऐसा क्या हो गया था कि कथाकार ने कहानी को नये सिरे से लिखने का निर्णय कर लिया ...? लिखने का ही नहीं उसी तरह उसे जीने का भी ...

□ अशोक गुप्ता

युवा कथाकारों में एक महत्वपूर्ण रचनाधर्मी.
संप्रतिः इंजीनियर.
संपर्क : द्वारा 'कथाभाषा',
550 सेक्टर-10,
फरीदाबाद, 121002

उस स्थिति में न तो कुछ आकस्मिक हुआ था, न ही अप्रत्याशित. विपिन ने मेरे सामने बैठकर तन्मयता से मेरी कहानी पढ़नी शुरू की थी और मैं पूरी तौर से तैयार था कि पहला ही पृष्ठ पलटने के पूर्व कुछ होगा जरूर. हमेशा की तरह इस बार भी विपिन ही मेरी कहानी का पहला पाठक था और कहानी में इस बात की पूरी गुंजाइश थी कि बहस हम दोनों के बीच एक हल्के से तेवर से शुरू हो और फिर घमासान हो बैठे हमारी पूरी मित्र मंडली के बीच एक महायुद्ध की तरह. इसीलिए मैंने यह कहानी आज शनिवार को विपिन के हाथ सौंपी थी ताकि जो होना है, हो ही जाये.

जैसा मुझे अंदाजा था, वैसा ही हुआ. कुछ ही पंक्तियां पढ़ने के बाद विपिन ने पढ़ना रोककर अपनी निगाहें मेरे चेहरे पर फेंक दीं और एक अर्थ भरी मुस्कान के साथ उसके होंठ खुल आये.

''फिर त्रिभुवन?''

मैं इस प्रश्न के लिए तैयार था. मुझे मालूम था कि कहानी की सारी की सारी जमीन और बुनावट एक तरफ रह जायेगी और मेरी मंडली के किसी भी दोस्त का हमला पहले पात्र के इस नाम पर होगा. पिछले सात महीनों में यह मेरी तीसरी कहानी थी जिसमें मैंने अपने एक पात्र को त्रिभुवन नाम पहनाया था, और मेरी दूसरी ही कहानी में यह बात पकड़ में रख ली गयी थी.

प्रश्न की प्रतिक्रिया में मैंने भी अपने चेहरे पर एक प्रति मुस्कान ओढ़ ली जो मुझे जरूरी लगी. मैं इंतजार करने लगा कि विपिन इस प्रश्न को हवा में छोड़कर कहानी आगे पढ़ने लगे. इसी बीच मैंने कुर्सी पर अपनी मुद्रा बदली, पैकेट से सिगरेट निकालकर अपने होंठों में फंसायी और अपने अंदाज के प्रतिसंशय को पुष्ठ करने के लिये माचिस तलाशने के बहाने एक नजर विपिन के चेहरे पर फेंक दी.

विपिन अब भी अपने प्रश्न के साथ तनकर खड़ा हुआ था. न तो उसकी मुस्कान का कसाव जरा ढीला पड़ा था, न ही दृष्टि का पैनापन. मैं समझ गया कि अब युद्धरत हो जाने का कोई विकल्प नहीं है.

''मैंने इस कहानी में उन मानवीय संदर्भों की छानबीन की है जो भावुकता का अर्थहीन ऊहापोह पैदा करते हैं, जिनसे आदमी और आदमी के बीच एक छद्म सामीप्य पैदा होता है, जबकि असलियत में उससे शोषण प्रक्रिया को ही तरह मिलती है, इससे अकेला आदमी और भी अकेला और कमजोर हो जाता है.

मेरी यह कहानी इस अकेलेपन के खिलाफ एक कमजोर आदमी की लड़ाई है. मैंने ....''

एक निरंतरता छोड़कर मैं विलंबित लय में सिगरेट जलाने में व्यस्त हो गया. यह मेरी रणनीति है. मैं आश्वस्त था कि कहानी के बारे में मैं एक चौकस सूत्र विपिन के आगे फेंक चुका हूं जिस पर गौर करना उसे निश्चित रूप से जरूरी लगेगा. हालांकि इस बात से यह शर्त कतई पैदा नहीं होती थी कि विपिन इससे त्रिभुवन का कहानी में होना भूल जायेगा. और भूला भी नहीं विपिन. त्रिभवन की कहानी में होने की पड़ताल अभी भी उसके चेहरे पर पूरी तरह साया थी.

''... और मेरे इस मंसूबे में त्रिभुवन इस कमजोर आदमी का प्रतिनिधि पात्र है जिसका जिक्र मैंने अभी किया है. उसकी चारित्रिकता.''

''चारित्रिकता की ऐसी की तैसी!'' मेरे बयान तथा कहानी की शुरुआत ने मिलकर एक बेहद ऊब भर दी थी जो शायद त्रिभुवन की उपस्थिति खोज निकालने के उतावलेपन में उपस्थित बाधा से पैदा हुई थी. मुझे लगा कि अब रचना स्थगित करके त्रिभुवन प्रसंग की ओर लौटे बगैर कुछ नहीं होगी. यह ठीक भी था और विपिन के साथ ही ठीक था भले ही जो ठीक नहीं था, वह जानबूझकर, चौकस सोच के साथ ही बेठीक रखा गया था. मेरे चेहरे पर इस बात की लहर झट विपिन ने पकड़ ली और मुझे मेरे असमंजस से बाहर खींच लिया, ''चल, कहीं बाहर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलते हैं."

मैं उठ खड़ा हुआ, बिना कुछ कहे. मुझे मालूम था, हम कहां जायेंगे. 'कहीं बाहर' का अर्थ मुझे पता था.

"त्रिभुवन मेरी ही फर्म में काम करता है. त्रिभुवन माहेश्वरी." विपिन के होंठ थोड़े से खुले और एक सहज-सी मुस्कान उन पर खिंच आयी.

"मैंने शायद कभी जिक्र किया हो तुमसे कि हमारी फर्म के मालिक प्रताप माहेश्वरी की दो शादियां थीं." उनकी पहली शादी जब हुई थी, तब वह एक मध्यवित्त परिवार के साधारण आदमी थे और ताजा-ताजा कानून पास करके इस इरादे से शहर आये थे कि ज़मकर वकालत करेंगे ओर अपने पिता की वह जमीन जो बहन की शादी तथा अपनी वकालत की पढ़ाई में रेहन चढ़ गयी थी, उसे छुड़ाकर अपना फर्ज पूरा करेंगे. उनके इस फर्ज में बराबर से उनके साथ थी उनकी पत्नी यशोधरा. लेकिन चक्कर कुछ और ही चला और प्रताप माहेश्वरी पंडित नरसिंह चतुर्वेदी से आ भिड़े. पंडितजी अपने जमाने के दिग्गज सट्टेबाज थे और मकद्दमा लड़ना उनका शगल था. नरसिंह चतुर्वेदी से पारी के बाद प्रताप बाबू को अपनी जमीन वापस छुड़ाने में ज्यादा समय नहीं लगा और उसे इन दोनों की दोस्ती कुछ और परवान चढ़ गयी. त्रिभुवन, उसका बेटा तब चार का हो चला था, जब प्रताप बाबू के पिता श्रीधर माहेश्वरी मन शरीर से कुछ अशक्त महसूस करने लगे थे और ऐसे में यशोधरा ने यह तय किया था कि वह त्रिभुवन को लेकर गांव में रहेगी ससुरजी के पास और प्रताप बाबू हफ्ते-हफ्ते घर आया करेंगे. इस योजना के साथ यशोधरा ने गांव में एक स्कूल शुरू किया था और साथ ही त्रिभुवन ने पढ़ाई.

शगल कभी-कभी चुनौती बन जाता है न, और ऐसी ही एक बार नरसिंह चतुर्वेदी के साथ हुआ. बातों ही बातों में बैठे-ठाले हरिहर बंसल से उनकी पता नहीं क्या तनातनी हुई कि पंडितजी उनके घर से मानो शिखा खोलकर निकले कि भले ही कंगाल हो जायें लेकिन हरिहर को एक तगड़ा झटका दिये बगैर चैन नहीं लेंगे. मुकद्दमेबाज़ पंडित नरसिंह चतुर्वेदी को इस रार का हल्र मुकद्दमे में ही मिलना था और मिला भी वहीं, प्रताप माहेश्वरी की दफ्तरनुमा बैठक में. तय हुआ कि हरिहर की एक विधवा बहन का हक, जो अपनी विवाह योग्य बेटी शकुंतला के साथ हरिहर पर ही आश्रित थी, हरिहर की गांववाली जमीन-जायदाद पर निकाल दिया जाये, कुछ इस तरह की हरिहर उससे बेदखल हो जाये. चक्कर शुरू हुआ और खत्म हुआ दोहरी कामयाबी के साथ. हरिहर की बहन ने मुकद्दमा जीत लिया और हरिहर की भानजी शकुंतला, जो प्रताप को मन में कुछ चुभती-सी लगी थी, प्रताप की विवाहिता पत्नी हो गयी. प्रताप का यह दूसरा विवाह बाकायदा शकुंतला की मां की खुशी से हुआ था और उसने इस शादी पर जी खोलकर खर्च करने के साथ-साथ अपनी मुफ्त हाथ आयी जायदाद का खासा हिस्सा प्रताप को भी दिया था. इस तरह प्रताप माहेश्वरी टटपुंजिया वकील से हैसियत वाले बन गये थे. अब शुरू हुई थी माहेश्वरी खानदान की सरमायदारी. उनकी पहली पत्नी ने यह समाचार सुना तो यकायक जड़ हो आयी और उसने खुद को पत्थर कर लिया. भले ही वह अपने ससुर के जीने तक वहां रही जरूर लेकिन कभी प्रताप बाबू का चेहरा नहीं देखा. श्रीधर माहेश्वरी की मृत्यु के बाद इधर प्रताप बाबू पिता की शुद्धि करके शहर लौटे, उधर यशोधरा ने गांव छोड़ दिया बगैर कोई संकेत-सूचना दिये. त्रिभुवन साथ था उसके, उसकी बी.ए. की डिग्री और पहाड़-सा मनोबल शकुंतला से विवाह के पांचवें बरस भी जब प्रताप बाबू निसंतान रहे और सभी प्रकार की जांच-कोशिश के बाद शकुंतला बांझ साबित हुई तो एक कुलीन किंतु विपन्न घर से तिलक बाबू को गोद लिया गया ताकि वंश और सरमायदारी जारी रह सके. अपनी उम्र के बाइसवें वर्ष में जब वह प्रताप

बाबू से फर्म का मालिकाना सम्हाल चुके थे, तब अपनी मां की मृत्यु के ठीक एक वर्ष बाद तिलक बाबू ने यह पहली बार जाना था कि वह प्रताप बाबू के दत्तक पुत्र हैं और कोई त्रिभुवन है प्रताप और यशोधरा का रक्तज जिसके लिए प्रताप माहेश्वरी का चित्त-मन निरंतर दुख और पश्चाताप से छीजता रहता है.

उस दिन यह जानकर तिलक बाबू ने कहा कुछ नहीं था लेकिन एक दिन सहसा प्रताप बाबू के सामने यशोधरा और त्रिभुवन को लेकर प्रकट हो गये थे. तिलक बाबू की पत्नी ने एक दिन अपने पीहर के किसी गांव में किसी यशोधरा त्रिभुवन का प्रसंग सुना था और प्रताप माहेश्वरी का जुड़ाव उनसे पुष्ट करके झट वहां पहुंच गयी थी उन्हें लेने और मान मनौव्वल करके ले भी आयी थीं. इस तरह लंबे अर्से के परित्यक्त, उपेक्षित तथा विपन्न जीवन जीने के बाद त्रिभुवन अपनी मां के साथ अपने पिता के घर 'माहेश्वरी विला' आ गया और यहीं से असली बात शुरू होनी है.

पूर्ण वयस्क तथा पढ़ाई से स्नातक था त्रिभुवन उस समय जब पिता के घर आया था. पिता की ही तरह कद-काठी जिसमें रौब पैदा करने की पूरी गुंजाइश लेकिन उन्हीं की तरह ढुल-मुल-सा, अनिश्चिततता की स्थिति में बने रहने वाला, जो विषण्ण तथा आश्रित जिंदगी जीते-जीते कातर भी हो गया था. एक स्पष्ट-सी दयनीयता का भाव चेहरे पर जिसका आत्मविश्वास से छत्तीस का आंकड़ा. लेकिन जो कुछ भी था, था तो माहेश्वरी कुल का ही रक्त न, सो उसे जुड़ना था प्रताप बाबू के काम धंधे से और वह जुड़ गया. इस तरह त्रिभुवन का हमारी फर्म में श्रीगणेश हुआ. कायाकल्प किया गया उसका. सूट से लेकर जूते तक सब बदल जाने के बाद एक नया त्रिभुवन पैदा हुआ जो सिर्फ अपने चेहरे पर अंकित अपने जीवन की उस यात्रा कथा से पहचाना जा सकता था जो उसने अद्यतन अपनी मां के साथ झेली थी.

फर्म 'माहेश्वरी इंटरप्राइज' के चेयरमैन और मैनेजिंग डायरेक्टर थे प्रताप बाबू, जिनकी सक्रिय गतिविधि फर्म में अब बहुत कम रह गयी थी. डायरेक्टर थे तिलकबाबू जो फर्म का सारा मालिकाना सम्हालते थे, और मार्केटिंग देखते थे आशीष चतुर्वेदी जो नरसिंह चतुर्वेदी के छोटे सपूत थे. त्रिभुवन फर्म में आये और प्रताप बाबू की सलाह पर तिलक बाबू ने उन्हें एकाउंट्स में बैठाना शुरू कर दिया.

शुरू-शुरू में त्रिभुवन की जहीन लगन तथा काम सीखने की कोशिश ने सबको बहुत आश्वस्त किया. लेकिन त्रिभुवन को हिसाब में शुरू से ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी गल्तियां गड़बड़ियां नजर आने लगीं. जब वह उन्हें प्रताप बाबू के सामने रखते तो उनका जवाब होता कि वह तिलक से बात करे और तिलक बाबू सारी बात सुनकर बस ठठाकर हंस पड़ते. कभी-कभी ऐसा भी होता कि फुर्सत के समय प्रताप बाबू या तिलक त्रिभुवन को लेकर बैठ जाते और समझाने लगते वह पूरा-ताना बाना जिसके तहत त्रिभुवन द्वारा पकड़ी गयी गड़बड़ियां, गड़बड़ियां न होकर सूझ-बूझपूर्ण तजबीजें हैं, जिनके लिए फर्म कानूनी सलाहकारों को ढेरों रुपया देती है और फायदा कमाती है, त्रिभुवन समझता जरूर रहता लेकिन उसके चेहरे से असहमति की रेखाएं नहीं मिटतीं तो नहीं मिटतीं और अंकित होती रहतीं उसके चेहरे पर उसकी आदि यात्रा कथा के विस्तार के रूप में. उधर आशीष चतुर्वेदी यह सब देखकर दांत पीसता रहता कि आखिर कोयले को धोकर सफेद करने की यह बेकार कोशिश क्यों? वह तिलक बाबू के ही कमरे में उनकी मेज पर हाथ पटककर कहता, "क्या एक यतीम को इस तरह बिजनेस मैनेजर बना सकता है कोई?"

"नो .... नेवर ...."

और तिलक बाबू का चेहरा कहीं भीतर से पल भर को दुप्प से बुझ जाता. समय बीता और जल्दी ही साबित होने लगा कि तमाम बुद्धिमत्ता तथा दक्षता के बावजूद त्रिभुवन बुनियादी तौर पर उस वर्ग का आदमी नहीं है जिसे लेजर और जनरल की पहचान के रास्ते किसी व्यावसायिक संस्थान की प्रवर गद्दी तक पहुंचाया जा सके. फर्म के आर्थिक आंकड़े बहुत साफ होकर त्रिभुवन के सामने आते लेकिन उसके एक तरफ होती उनकी पक्षधरता जिनका इस सिलसिले में निरंतर छिनता जा रहा है और दूसरी तरफ होता वह पूरा तंत्र जो हर प्रस्तुत स्थिति को एक व्याख्या, एक समाधान देने को तैयार बैठा होता. एक ऐसा समाधान जो मान्य, स्वीकृत और वैध व्यावसायिक सिद्धांतों से निकलता था, त्रिभुवन के दोनों ओर दो अलग-अलग तंत्र थे, एक अबूझ पहले की तरह. साफ और स्पष्ट था तो केवल; बाहर फर्म के लिए हिसाब का गलत-सलत होना और भीतर, चेहरे की निरीहता और उस यात्रा कथा का गुरुत्व जो सूट-बूट से सजकर भी अंततः उसी यात्रा का अगला पड़ाव होता था, विषयांतर नहीं.

त्रिभुवन अपने दोनों तंत्रों के बीच बराबर से कमजोर था क्योंकि वह अनजाने जिसका हिस्सा था, उससे कटा हुआ था और जिससे जुड़ा हुआ था उसके लिए अबूझ मां जो एक उम्र तक अपने सत्य के साथ उसकी ताकत थी, वह मान सहित बुलाये जाने पर अपनी सारी ऊर्जा अपने पति के चरणों में निरस्त करके व्यक्तित्वहीन हो गयी थी. इस तरह उससे उसकी मां भी छिन गयी थी और उसकी माटी का परिवेश भी. इधर फर्म में उसे आंकती-घूरती कुटिल सौम्यवर्णी और चमकदार आंखों-मुस्कानों के आगे वह निरंतर अनफिट साबित होता जा रहा था.

पहले रौबदार और रुतबे का वह रंग मिटता गया धीरे-धीरे जोर देकर उसे फर्म में उतारा गया था और बाद में वह सिर्फ एक अकेली महत्वहीन और उपेक्षणीय-सी शह बनकर रह गया, भले ही उसका ओहदा वही था और वही था उसका अलग कमरा, जो सही माने में उसके लिए 'नो मेंस लैंड' बनकर रह गया.

माहेश्वरी विला में ही त्रिभुज भी रहता था और वह दिन, जिस दिन की मैं बात कर रहा हूं, त्रिभुवन के लिए शायद बड़ा पीड़ादायक दिन था. या हो सकता है वह पीड़ादायक स्थिति त्रिभुवन की दिनचर्या हो और उस दिन फर्क केवल पीड़ा की सतह पर आ जाने का हो.

उस दिन तिलक बाबू की ससुराल से कुछ मेहमान आये थे और तिलक बाबू का कमरा माहेश्वरी परिवार के घर से अलग-अलग एक फर्क-सा हिस्सा बन गया था जिसमें त्रिभुवन की जगह नहीं भर थी. प्रताप बाबू के कमरे में उस दिन नरसिंह चतुर्वेदी अपने बेटे आशीष के साथ विराजमान थे सो प्रताप बाबू त्रिभुवन और यशोधरा से फिर उतना ही छिन गये थे जितना कि पहली बार उसका अपना कमरा तो 'नो मेंस लैंड' था ही और मां के कमरे में अगरबत्ती का धुआं ओर पाठ का स्वर इतना कीचमकीच मचाये हुए थे कि त्रिभुवन को वहां बैठने से बेहतर बाहर सड़क पर टहलना ही लगा और भीतर से उठकर कोठी में बाहर फाटक के पास फालतू-सा आकर खड़ा हो गया.

मैं उस समय याकूब की दूकान पर बैठा उससे कुछ कागज टाईप करा रहा था. भरपूरी सर्दी की उस रात जितनी जल्दी याकूब को शटर गिराकर घर भागने की थी उतनी ही जल्दी मुझे थी अपने कागज उसी दिन पूरे कराने की. सो जब तक काम चलता रहा, हम दोनों जुटे रहे. काम खत्म करके निकलते समय जब मैंने त्रिभुवन को फिर वहीं खड़े देखा तो मुझसे नहीं रहा गया और मैं उधर ही बढ़ लिया. एक ही फर्म में काम करने के नाते हमारा परिचय तो पुराना था. उसके फर्म की तोप होने का हउआ उतरने के बाद हमारा परिचय प्रकट होने लगा और यूनियन की बात बीच में आ जाने से तो हम घनिष्ठ ही हो गये थे.

"यूनियन की बात?" विपिन इस प्रसंग से चौंका और होंठों तक सिगरेट ले जाते उसके हाथ वहीं ठहर गये.

"क्या तुम लोगों ने उसे यूनियनबाजी में खींच लिया?" विपिन की भौंहें तनी रहीं और उसका प्रश्न उसके चेहरे पर कुछ और गहरा हो आया.

कुछ देर चुप रहा मैं, हालांकि विपिन की मुद्रा मेरी चुप्पी तोड़ने पर अपने पूरे तेवर से आमादा थी.

"ऐसा हुआ कि कुछ त्रिभुवन की बेवकूफियां और कुछ आशीष बाबू और तिलक बाबू के बीच की बातचीत जो यह बात फर्म में फैलते देर नहीं लगी कि त्रिभुवन अपनी असलियत से मामूली आदमी भर है और वह कभी भी सफल बिजनेस मैनेजर नहीं बन सकता. ऐसे में, वकील यूनियन प्रेसिडेंट, हर मामूली आदमी की तरह त्रिभुवन को भी यूनियन का हिस्सा होना ही चाहिए था. क्योंकि यूनियन मामूली आदमियों के हित में, मामूली आदमियों के ही दम पर चलती है.

"भले ही उसे चलाते हैं गैरमामूली, मक्कार लोग ... "विपिन के होंठ गहरी छटपटाहट से टेढ़े हुए और चेहरा लाल हो आया. मुझे लगा कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपिन के मूड के हिसाब से अब एक आवश्यक मध्यांतर जरूर होना चाहिए. और दो कॉफी का फिर एक आर्डर चीखते हुए मैं टायलेट की तरफ बढ़ लिया.

मेरे लौटकर आने तक भी विपिन का चेहरा सहज नहीं हो पाया था. मैं उसे देर तक बताता रहा था कि मेरा भी एकाउंट्स में होना एक कारण बना था मेरी त्रिभुवन से निकटता का और इसी सिलसिले में मुझे ढेर-ढेर बातें पता चलने लगी थीं फर्म के बारे में जो मेरे लिए नयी थीं और यूनियन के प्रेसिडेंट को त्रिभुवन से दूर ही रखा गया था.

"तो पूरी रणनीति बनाकर त्रिभुवन से छद्म आत्मीयता पैदा कर रहे थे तुम लोग." विपिन के चेहरे पर घृणा भी थी और बेतरह क्रोध भी, तुम्हें पता था कि त्रिभुवन उस वर्ग का आदमी नहीं है, जिनके बीच है. तुम्हें यह भी पता था कि वह नहीं जानता कि किनके बीच है. इस पार और उस पार भी. तुम यह भी जानते थे कि वह ज्यादा देर वहां टिक नहीं पायेगा, इसलिए तुम चाहते थे कि त्रिभुवन जब तक वहां है, तुम लोग जल्दी-जल्दी उसका ज्यादा से ज्यादा फायदा उठा डालो. क्या तुम्हें मन में एक बार भी त्रिभुवन को उस तकलीफ भरे नरक से, जिसके तुम चश्मदीद गवाह भी हो, निकालने की बात आयी? आती भी कैसे, तुम तो खुद चाहते थे कि त्रिभुवन उस अंतिम पल तक उस नर्क का हिस्सा बना रहे जब तक वह खुद उसे दूध की मक्खी-सा न निकालकर फेंक दें ....

"मक्कार हो तुम. तुमने झूठ कहा था. त्रिभुवन की पीड़ा तुम्हारा दर्द नहीं है. तुम्हारी रुचि का विषय है त्रिभुवन के होने की स्थिति, जो तुम्हें बड़ा कहानीकार भी बनाती है और बड़ा यूनियनबाज भी ... शिट् ...."

सन्नाटे का भारी माहौल खिंचा रहा कुछ पल. फिर विपिन को सहज होने की आवश्यकता महसूस हुई. उसने चेहरे का तनाव कुछ ढीला किया और जड़ हो आये हाथों में कुछ हरकत आयी. मेरी कहानी वहीं मेज पर कॉफी के प्यालों के बीच पड़ी थी. विपिन की उंगलियां रेंगी और कहानी को उसने अपने हाथ में ले लिया.

"कहानी में तुमने क्या अंत दिया है त्रिभुवन को?" विपिन ने फिर एक प्रश्न मेरे आगे सरका दिया.

मेरे मन में पल भर को कहानी सुना डालने की अकुलाहट जिंदा हुई और भर गयी. मेरी कहानी का त्रिभुवन उस कुटिल और भ्रष्ट मालिक को मारकर खुद मालिक बन बैठता है और खून बहाकर उस अनफिट व्यवस्था में फिट हो जाता है जो उसकी मानसिकता का हिस्सा नहीं है, और फिर सब ठीक हो जाता है. जाहिर है, मेरी कहानी में ऐसा कुछ नहीं था जिससे त्रिभुवन माहेश्वरी का अकेलापन टूटता. उससे त्रिभुवन माहेश्वरी को उस कुटिल और गलत व्यवस्था से बेआवाज, अपनी अपंग होती जा रही मां को लेकर अलग हो जाने का न तो संदेश मिलता था न ही ताकत. इसलिए मेरी कहानी भी उतनी ही गलत थी, जितना मैं.

मैंने चुपचाप विपिन से अपनी कहानी ली और जेब में रख ली.

"विपिन, यह कहानी मैं फिर लिखूंगा. नये सिरे से ..."

विपिन की आंखों में चमक आ गयी, "और फिर उसी तरह से उसे जिओगे भी ...?

"हां, उसी तरह से उसे जिऊंगा भी ...?

फिर हम दोनों उठे और चल दियें. सारे रास्ते हम दोनों के बीच कोई बातचीत नहीं हुई.

मेरे घर पहुंचकर साईकिल उठाकर चलते-चलते विपिन ने फिर डबडबायी आंखों से मेरी ओर देखा.

"मेरी बात भूलोगे तो नहीं?"

"नहीं भूलूंगा विपिन, अपनी बात नहीं भूलूंगा." और मैंने अपने हाथ विपिन के हाथ पर रखकर अपनी भरपूर निगाह उसके चेहरे पर फैला दी.

मेरी आंखें भी डबडबा आयी थीं. और इस बार हमारे आंसुओं का स्वाद और गंध बिल्कुल एक जैसे थे. □

राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार प्रतियोगिता

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद (एन सी ई आर टी) छब्बीसवीं राष्ट्रीय बाल साहित्य पुरस्कार प्रतियोगिता के अंतर्गत 5 से 15 आयुवर्ग के बच्चों के लिए लेखकों और प्रकाशकों से उपयुक्त पुस्तकें/पांडुलिपियां आमंत्रित करती है।

पुरस्कार : पुरस्कारों की कुल संख्या छत्तीस है। हिंदी में चार पुरस्कार हैं तथा अंग्रेजी, असमिया, उड़िया, उर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, पंजाबी, बांग्ला, मणिपुरी, मराठी, मलयालम, संस्कृत तथा सिन्धी—प्रत्येक भाषा में दो-दो पुरस्कार हैं। प्रत्येक पुरस्कार की राशि रु. 5,000/-होगी।

पुस्तकों की योग्यता : (क) मात्र दो कैलेण्डर वर्ष 1987 तथा 1988 में प्रकाशित पुस्तकें प्रविष्टि के लिए सम्मिलित की जायेंगी. (ख) प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त **अप्रकाशित पाण्डुलिपियां अधिमानत: टंकित रूप में स्वीकार की जायेंगी। इन पाण्डुलिपियों का विषय 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' से संबंधित होना चाहिए।** प्रकाशित पुस्तकें किसी भी विषय पर हो सकती हैं किन्तु वे बच्चों के अनुकूल होनी चाहिए। (ग) पाठ्यपुस्तकें, अन्य पुस्तकों के अनुवाद, पुर्नप्रकाशन अथवा संक्षिप्त संस्करण सम्मिलित नहीं किये जायेंगे। बाल साहित्य प्रतियोगिता के लिए इससे पूर्व की प्रतियोगिता में प्रस्तुत की गई प्रविष्टि अथवा राज्य सरकार अथवा भारत सरकार अथवा सरकारी विभागों से तथा किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था से प्राप्त धन राशि की सहायता से किसी संगठन द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में पहले से ही पुरस्कृत पुस्तक इस प्रतियोगिता में स्वीकार नहीं की जायेगी।

प्रवेश शुल्क : प्रत्येक पुस्तक तथा पाण्डुलिपि के लिए दस रु. (10 रु.) का रेखांकित पोस्टल आर्डर, मुख्य लेखा अधिकारी, एन.सी.ई.आर.टी. के पक्ष में निम्न पते पर भेजा जाना चाहिए।

अंतिम तिथि : 16 जुलाई 1990

प्रतियोगिता से संबंधित विस्तृत जानकारी तथा नियम निम्न पते से प्राप्त किये जा सकते हैं:

प्रो. अर्जुन देव,
विभागाध्यक्ष,
सामाजिक विज्ञान और मानविकी शिक्षा विभाग,
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली– 110016

davp 89/1281

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बजट के बाद बचत-अभियान

□ गोपाल चतुर्वेदी

बजट द्वारा सरकार जग को जताती है कि उसके दिल में देश के लिये कितना प्यार है. मां बच्चे को बुरी आदतों से बचाने के लिय सजा देती है. सरकार भी कभी बड़ों की दाल-रोटी छुड़वाती है, कभी छोटों की आइसक्रीम. हम हर बजट का बड़ी बेकरारी से इंतजार करते हैं. बजट के आगमन की संभावना से फालतू चीजें तत्काल भूमिगत हो जाती हैं. फिर मूल्य बढ़ने के बाद ही प्रगट होती हैं. दुकानदार समृद्धिरेखा के ऊपर चले जाते हैं, निश्चित आय वाले गरीबी रेखा के और नीचे. अनजान कुछ भी समझें. सरकार बजट में वही करती है जो मुल्क के विकास के लिये जरूरी है. अब पैट्रोल की कीमत बढ़ी तो पालक और पपीते की भी तो तरक्की होगी. हमारे धर्म-निरपेक्ष देश के लोगों में नहीं है पर मूल्यों में आदर्श, सौहार्द और भाईचारा है. सीमेंट ऊपर उछली तो गारमेंट क्यों पीछे रहे. वाशिंग-मशीन और आलू-बैंगन में क्या ताल्लुक है! पर इधर वाशिंग मशीन कीमती हुई तो उधर आलू-बैंगन. दिक्कत यही है कि आम आदमी कम-अक्ल है. शिकायत करता है. उसे कैसे कोई समझाये कि कर और कीमतें सरकार विकास की लगन और अपने नैसर्गिक देश प्रेम के कारण बढ़ाती है. यह दीगर है कि विकास सिर्फ कीमतों का हो!

सरकार को विवशता में कई काम करने पड़ते हैं. कभी श्रीलंका में शांति की फौज भेजनी है. कभी आत्मसम्मान की रक्षा के लिये तोप की खरीद करनी है. अंतर्राष्ट्रीय करारों की परंपरा और दुनिया का दस्तूर निभाने के लिये कमीशन भी खाना है. किसानों को कर्ज भी देना है और उसे बट्टे-खाते में भी डालना है. हवाई मुसाफिरों के लिये नये जहाज आने हैं. हवा और रेल की दुर्घटनाएं भी होनी हैं. सरकार को मृतकों के प्रति प्रतिबद्धता जताने के लिये मुआवजा भी बढ़ाना है. रेल और जहाज के यात्रियों को इतना यकीन तो होना ही चाहिये कि अगर 'सफर' कर जीना है तो मुआवजे में मरना है. जीवित के प्रति उदासीनता और मृतकों के लिये श्रद्धा हमारी संस्कृति का पुराना चलन है. यों भी जिंदा लोग इस अलौकिक वसुंधरा पर स्वर्ग-वास का ही टैक्स तो भर रहे हैं.

इन सब कल्याणकारी कामों में पैसों का खर्च है. सरकार जनता को सदा से सोने की मुर्गी का सम्मान देती आयी है. उसका यकीन लोगों को जिंदा रखकर धीरे-धीरे जिबह करने में है. लिहाजा वह इतने ही टैक्स लगाती है कि ज़नता की सांस-सांसत में रहकर भी चालू रहे. नतीजतन हर बजट एक घाटे का सौदा है. सरकार के पास एक लघु और दीर्घकालीन कार्यक्रम है. बजट का तात्कालिक लक्ष्य पहले घाटा बनाना और फिर घटाने का अभिनय करना है. दूरगामी उद्देश्य आबादी में से गरीबों को मिटाकर गरीबी हटाना है. अब तो सब ही जानते हैं कि जनता सरकार से काम की उम्मीद नहीं रखती है. इसीलिये देश में स्वैच्छिक संस्थाओं की संख्या अनाप-शनाप बढ़ रही है. कोई संस्था उपभोक्ता आंदोलन से जुड़ी है, कोई टी.वी. के कार्यक्रमों के पीछे पड़ी है. सरकार कुछ करे न करे पर उन्हें अनुदान जरूर दे दे. सरकार भी अपने कर्तव्य और दायित्व के बारे में चौकन्नी है. वह खुद काम तलाश कर अपने को व्यस्त रखती है. घाटा बनाने के तत्काल बाद सरकार उसे घटाने में लग जाती है. घाटा बनाओ, बढ़ाओ, घटाओ से बेहतर काम कौन-सा हो सकता है!

मंत्रालय में वित्त सचिव हुकम देते हैं, 'डैफिसिट' को कंट्रोल करना है. जल्दी से बचत के निर्देश बनाइये. अतिरिक्त सचिव संयुक्त को, संयुक्त सचिव उप को, उपसचिव अवर को,अवर सचिव अनुभाग अधिकारी तक आदेश दोहराते हैं. बात सहायक तक आकर रुक जाती है. सहायक नया है. साथियों से पुराने का पता पूछता है. एक दो हफ्ते में पता लगता है कि पुराना अपने नये विभाग में छुट्टी पर है.

सचिवालय का उसूल है कि सचिव हर आध घंटे बाद एक मीटिंग करें. वर्ना उन्हें सत्ता और शक्ति का एहसास कैसे होगा! बचत का कार्यक्रम एक महत्वपूर्ण मसला है. उनका निजी सचिव साहब के हुकुम के सात दिनों बाद इस विषय पर बैठक रखता है.

"तो मिस्टर वर्मा! क्या प्रोग्रेस है इकोनॉमी इंस्ट्रक्शन की," सचिवजी बचत की कॉफी पीते हैं. वर्माजी संयुक्त सचिव शर्मा को निहारते हैं जो उपसचिव दंडपाणी को ताकते हैं. युवा और रूमानी प्रेमी ही नहीं, खुर्राट अफसर भी अक्सर आंखों की बोली बोलते हैं. इस मौन-नयन संवाद के बाद दंडपाणी का स्वर फूटता है, "सर! इस बार की 'क्रिटिकल सिचुएशन' को ध्यान में रखकर हम चाहते हैं कि सेविंग के नये 'एरिया' भी कवर करें. इसके लिये जरूरी है कि 'पास्ट' के सारे 'आर्डर', 'स्टडी' किये जायें सर! हम आजादी के बाद की फाइलें निकलवा रहे हैं. अगले दस-बारह दिनों में ड्राफ्ट तैयार हो जायेगा."

मीटिंग से लौटकर दंडपाणी को गुमशुदा फाइल की खबर मिलती है. दंडपाणी नये सहायक को उसकी नानी याद दिलाते हैं. पर मामला विचाराधीन का विचाराधीन ही रहता है. फाइल न मिलने की यही सरकारी कैफियत है. अन्यथा निर्णय तो आनन-फानन हो जायें, बस फाइल कंबख्त ही गायब रहती है.

नया सहायक 'प्रोबेशन' पर है. वह घबराकर हर सरकारी बुजुर्ग की डैस्क खटखटाता है. आयंगर उसकी मदद करते हैं, "दिन तो अंग्रेजी प्रशासन के थे. क्या लैंग्वेज थी नोटिंग-ड्राफ्टिंग की! कितना पक्का अनुशासन! अब तो सब चौपट हो गया है. हम तो कल रिटायर हो जायेंगे. आगे तुम जानो!"

इसके बाद वह तिलकधारी वर्मा नामक हस्ती की विस्तृत जानकारी देते हैं. दूसरे विश्व-युद्ध के वक्त की इकोनॉमी का बड़ा जोर था. शर्मा मेहनत कर बचत में माहिर बन गये. वह चांद से लेकर चाय और चवन्नी तक के मसलों पर बचत के कदम सुझा सकते थे. 'बचत' शर्मा ने बचत के हर संभावित मुद्दे कलैक्ट कर लिये थे. वह जानते थे कि जब तक बजट हैं, घाटा भी रहेगा. और बचत के सरकारी निर्देश भी जारी होंगे. वह अपने साहब के सामने अपनी बनायी बचत की पचास सूत्री योजना पेश कर देते थे. अफसर मनचाहे 'पाइंट' पर 'टिक' लगा दे. इधर टिक लगी, उधर निर्देश तैयार.

नया सहायक प्रभावित हुआ. चार-पांच साल के इकोनॉमी सरकुलर तो उपलब्ध थे ही. फाइल की तलाश से आसान बचत शर्मा के उदाहरण पर अमल था. उसने शनीचर-इतवार सोते-जागते बचत के मुद्दे सोचे. सोमवार को विजयी मुद्रा में उसने दंडपाणी के आगे सरकारी खर्च में बचत की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पचास तरकीबें पेश कीं.

''फाइल कहां हैं!'' दंडपाणी ने सवाल किया

''पुराना सहायक ले गया सर!'' नये ने उत्तर दिया. जैसा सब जानते हैं, पुराने सरकारी लतियलों का मन घर-बाहर से हटकर फाइलों और फाइल-वालियों में सिमट जाता है.

''यह क्या है?''

''पुराने आदेशों का निचोड़ है सर! कुछ नये सुझाव भी हैं.''

नये बचत-प्रस्ताव अलग पन्ने पर थे. दंडपाणी ने उन पर उड़ती नजर डाली. उपसचिव के स्तर और उसके ऊपर के अधिकारी अपनी याददाश्त पर अधिक और टिप्पणी लेखन के अध्ययन में कम यकीन रखते हैं. साहब ने सहायक को कागज लौटा दिये.

''पढ़िये! क्या नया है.''

''सर! स्टाफ कारों पर करोड़ों की बरबादी है. इन पर रोक लगा दें.''

''आप पागल हो गये हैं! घर का रोजमर्रा का सामान कैसे आयेगा. दूसरे मंत्रालय के मित्रों से मुलाकात कैसे होगी!''

''मीटिंगों में भी काफी अपव्यय है. बाहरवाले दिल्ली आते हैं. दिल्लीवाले देश घूमते हैं. काम के दिन अलग जाया होते हैं....''

''रिश्ते-नातेदारों से भेंट होती है. व्यक्तिगत संपर्क से निजी काम होते हैं. बाहर की मीटिंगें कार्यकुशलता के लिये अनिवार्य हैं.''

''सर! विदेशी दौरे......''

''वह तो यों ही बहुत कम हैं. यह दीगर है कि कम का मतलब हर मुमकिन मौके पर दो-चार देशों का एक मनोरंजक चक्कर है. फारेन ट्रिप भी न रहे तो कौन स्टेट का राजपाट छोड़कर यहां बाबू बनने आयेगा. वी.सी.आर. साउंड-सिस्टम, वाशिंग मशीन, स्कॉच आदि जाते हैं तो ले आते हैं. आखिर हम लोगों को भी तो जिंदा रहना है.''

''टेलीफोन से एस.टी.डी. की सुविधा हटाने से भी खर्च कम होगा. सरकारी काम हो तो लोग ट्रंककाल करें, रजिस्टर रखें.''

''आप आधुनिक सैटीलाइट के संचार युग में कबूतर से संदेश भेजने की दकियानूसी पेशकश करना चाहते हैं! सचिव का लड़का लंदन में है, लड़की न्यूयॉर्क में. उनसे बातचीत कैसे होगी! हमारे अंकल, आंटी, भाई-बहन सब मद्रास में हैं. उनके हालचाल कैसे पता लगेंगे.''

सुझाने-नकारने का सिलसिला एक घंटे तक चलता रहा. दंडपाणी दुखी थे. बचत-निर्देश बनाने का वक्त निकला जा रहा था. अब क्या होगा! वह सचिवालय की पद्धति से-वाकिफ थे. पुराना सहायक गया तो फाइल भी चली जाती है. यह कल का छोकरा उलटे-सीधे प्रस्ताव बनाकर रही-सही कोर-कसर भी पूरी कर देगा. वह हड़बड़ाये से संयुक्त सचिव के पास गये. फिर दोनों निराशा में डूबकर अतिरिक्त के पास.

''एक ही तरीका है. हम सचिव और मंत्री को विश्वास दिलाएं कि यह नायाब वित्तीय घाटा एक अहम और स्थायी राष्ट्रीय संकट है. काश्मीर और पंजाब-सा. यह अनुचित है कि सिर्फ हमारा मंत्रालय ही इस 'क्राइसिस' से निबटने की जिम्मेदारी ले. हमें सब राजनैतिक दलों के सहयोग और सहमति से एक सर्वदलीय समिति बनाकर घाटे को घटाने के लिये बचत का इंतजाम करना चाहिये.''

सबने उनके अनुभव और सूझबूझ की दाद दी. सर्वदलीय समिति मेहनत और लगन से अपने काम में लगी है. व्यर्थ के खर्चे, मंत्रालयों की आपसी बचत-प्रतियोगिता की वजह से अब और जरूरी हो गये हैं. हर मंत्रालय सर्वदलीय समिति को पटाने के चक्कर में उस पर अंधाधुंध 'बचत' कर रहा है. कोई मेंबरों को कार दे रहा है, कोई टेलीफोन. बचत नियोजित ढंग से हो रही है. खर्च सुनियोजित तरीके से, समिति अपना काम कर रही है, सरकारी विभाग-मंत्रालय अपना. जनता बजट को भुगत चुकी है. अब बचत से उसे कौन बचाये! □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जंगल क्यों कट रहे हैं?

'बाघ एक बकरी के साथ भाग रहा था. यह विश्व के लिए अनूठी खबर थी. किसी को यकीन हो ही नहीं सकता ...' पर क्या खबर महज इतनी ही है, या इसके आगे कुछ और ऐसा हुआ कि मनुष्य जाति आज तक बाघ को ढूंढ रही है ..?

□ राधेश्याम

'गांधीयन' सरीखे उपन्यास के लेखक राधेश्याम वर्तमान जीवन की विसंगतियों को अपनी ही तरह से उकेरते हैं.
संप्रतिः दूरदर्शन केंद्र, जयपुर से संबद्ध.

यह कथा 0086वें वर्ष की है. जब राष्ट्र में राम-राज्य सप्ताह की घोषणा हुई थी. इसके तहत यह प्रचारित किया गया था कि जब तक राम-राज्य सप्ताह मनता रहेगा, सभी दुकानें रात-दिन खुली रहेंगी और कोई भी दुकानदार अपनी दुकान पर ताला नहीं लगायेगा. जहां तक कि उसके गोरखा या अन्य किस्म के पहरेदार भी दुकान पर रखवाली नहीं करेंगे. उस पूरे जश्न के दौरान कोई आदमी किसी के यहां नौकर नहीं रहेगा. कोई किसी से मार-पीट, गाली-गलौज या किसी भी प्रकार के हिंसात्मक व्यवहार नहीं करेगा. देश के जेलों से सभी कैदियों को रिहा कर दिया जायेगा और वे आठवें दिन फिर अपने-अपने जेलों में वापस लौट आयेंगे, वगैरह-वगैरह अनेकों अध्यादेश जारी कर दिये गये थे.

व्यापारी वर्गों में चोरों से ज्यादा भय पुलिसवालों से था. चोर या डाकू हो सकता था खुशियां मनाने के क्रम में अपने धैर्य को भूल भी सकते थे लेकिन पुलिस के लिए अपना धंधा भूलना असंभव था. फिर भी सात दिनों के लिए पुलिस द्वारा निहत्थों पर लाठी चार्ज, शरीफ इंसानों पर भारतीय दंड संहिता के तहत झूठे मुकद्मे लादना और उनसे भयादोहन करके मुद्राएं प्राप्त करना, अथवा गुप्तांगों में लाठी घुसेड़ने जैसी कलाओं का प्रशिक्षण भी स्थगित कर दिया गया था. साथ ही यह निर्णय ले लिया गया था कि पंद्रह दिनों के लिए पुलिस की बगल में, वायरलेस सेट की जगह भरतमुनि के नाट्यशास्त्र, की एक प्रति लटकती रहे जिससे कि 'अशिष्ट' शब्द की व्याख्या करने में थोड़ी सहायता मिल सके.

इस तरह की अनेक घोषणाओं से जहां सरकारी वर्ग में खुशी की लहर ने उत्तेजना फैला दी थी वहां जनता पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा. चूंकि सब कुछ बर्दाश्त कर लेना, उस देश के संविधान में लिखा हुआ था, इसलिए किसी ने कुछ नहीं कहा. लोगों में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया तक नहीं हुई. उनके चलने बोलने और काम करने की मुद्राओं से लगता था कि वे या तो ऊंघ रहे थे या अफीम की पिनक में थे या उनकी नसों में खून की जगह अलकोहल का संचार हो रहा था, मानो उन्होंने प्रजातंत्र ब्रांड की शराब, बोतल की बोतल पेट में उड़ेल रखी हो.

देखते-देखते पूरे शहर में अचानक राम के चित्रों की भरमार होने लगी. जगह-जगह रामचरित मानस का पाठ व सेमिनार की आयोजन किया जाने लगा. राम के विशाल व्यक्तित्व का बखान करते हुए पोस्टरों हैंडबिलों और अन्य किस्म के परचों की बाढ़ आ गयी. हर घर में उनकी चर्चा होने लगी. बेटा राम के जैसा हो. पति राम के जैसा हो. भाई राम के जैसा हो. राजा राम के जैसा हो. राजा रामचंद्र की जैय-जैसे गगनभेदी स्वर क्षितिज को हिलाने लगे. भूले हुए राम, उनके आदर्श और उनके उच्च विचार लोगों को बेतरह याद आने लगे. लगा राजा राम एक बार फिर सात दिनों के लिए उस राष्ट्र में जीवित हो गये थे.

इसका सबसे ज्यादा लाभ परिवार कल्याण विभाग को हुआ. राजा दशरथ यानी राजा रामचंद्र के पिता के भले ही चार बेटे थे लेकिन राम के ज्यादा से ज्यादा दो लड़के थे. इसलिए राम राज्य और लेप्रोस्कोपिक पद्धति द्वारा बंध्याकरण और इसी प्रकार के अनेक विषयों पर सेमिनार रखे गये. इस पर तमाम विशेषज्ञों से पर्चे पढ़वाये गये. बहसें हुई काफी खर्च हुआ. और अंत में काफी हंगामे के बाद लोग उसी निष्कर्ष पर पहुंचे, जिसको लेकर सेमिनार शुरू हुआ था. यानि हम दो, हमारे दो. इस विषय पर विशेषज्ञों ने काफी रिसर्च करनेकी सिफारिशें कीं. गांवों में लोगों के बीच लूप और निरोध की जोडी स्वीकृत की गयी या नहीं, इसके लिए कुछ बेरोजगार नौजवानों को नौकरी देने का निर्णय लिया गया ताकि राष्ट्र को यह पता चल सके कि गांव में लोग अभी शरमाते हैं या बेशर्मी से निरोध खरीदकर व्यवहार भी करते हैं? लव-कुश को परिवार नियोजन के प्रतीक के रूप में उद्घृत किया गया. पूरे राष्ट्र में राम राज्य सप्ताह मनाने के क्रम में यह एक नमूना था. इस प्रकार न जाने कितनी सरकारी, गैरसरकारी व अर्द्ध-सरकारी संस्थाओं ने शहर से गांवों तक अनंत प्रकार के सांस्कृतिक एवं धार्मिक कार्यक्रमों का आयेजन कर लिया था.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव पटेल की कलाकृति

इसी क्रम में एक गांव में, जब एक बूढ़े किसान को उसके मुखिया ने बतलाया कि देश में राम-राज्य सप्ताह मनाया जा रहा है तब थोड़ी देर के लिए उसे यकीन नहीं हुआ. उसका मुंह खुला का खुला रह गया. यह देखकर मुखिया मन ही मन हंसने लगा. उसकी नजरों में बूढ़ा मूर्ख लगने लगा था. उसने मन ही मन कहा, 'गधे, तू बूढ़ा हो गया. इतना ही नहीं मालूम कि एक बार जो आदमी मर जाता है, दुबारा वापस नहीं आता!' फिर प्रकट वह उसे समझाने लगा, ''काका, बात यह है कि देश चाहता है कि एक बार यहां फिर राम राज्य की स्थापना हो जाय...''

''राम कौन बनेगा?'' बूढ़े ने पूछा.

''इसमें राम बनने की क्या जरूरत है?'' मुखिया ने उत्तर दिया.

''बिना राम के राम राज्य कैसा?''

''अब वह जमाना कहां रहा काका? अब तो प्रजातंत्र है. हम लोग उनके आदर्शों से राष्ट्र को महान बनाना चाहते हैं. उनसे प्रेरणा लेना चाहते हैं.''

''चाहते क्यों हो, लेते क्यों नहीं?'' बूढ़े किसान ने पूछा.

''यह सुनकर मुखिया ने किसी मूर्ख से बहस करना अच्छा नहीं समझा और बातचीत का रूख दूसरी ओर मोड़ दिया. ''काका, गांव में सरकार ने कुछ कार्यक्रम आयोजित करने के लिए कहा है, जिसके लिए कुछ चंदा वगैरह करना ही पड़ेगा. आप तो जानते हैं कि बिना पैसे के कुछ हो नहीं सकता.''

किसान चुप रहा. फिर मुखिया ने समझाते हुए कहा, ''हमारी सरकार गरीब है, काका. उस पर भी उसने राम राज्य सप्ताह पर करोड़ों रुपये खर्च करने का फैसला किया है. आप लोग जितना देंगे, उससे सरकार की बचत होगी.''

अब बूढ़े की बारी थी. वह मुस्कराने लगा. प्रकट कुछ नहीं कहा, लेकिन मन में कहने लगा—'गधे की औलाद, तू अभी तक मुझे बेवकूफ समझ रहा है! आजादी के बाद इत्ते साल गुजर गये! फिर प्रकट उसने कहा, ''जो कहोगे, बेटा, हम करने को तैयार हैं. आखिर तुम मुखिया हो.''

यह सुनकर मुखिया बहुत प्रसन्न हुआ और फिर मिलने का वादा करके चला गया. मुखिया को वह किसान देर तक जाते हुए देखता रहा. फ़िर उसने पच्च-सा थूक दिया और बुदबुदाया, ''स्साला बेईमान! पापियों और घूसखोरों के देश में राम राज्य मनाने चला है!

सरकारी-स्तर पर राम राज्य सप्ताह के उद्‌घाटन के लिए यह तय किया गया कि इस अवसर पर बाघ और बकरी को एक घाट पर पानी पीने दिया जाये. जिस मुहुर्त पर फीता काटा जाये, उस वक्त दोनों एक घाट पर मौजूद हों. उस अवसर पर दूतावासों के अधिकारियों को विशेष रूप से आमंत्रित किया जाये. लेकिन बाघ के पूरे होशोहवास तक, बकरी को एक साथ रखना कठिन था. क्योंकि रिहर्सल में ही तीन बकरियों की जानें चली गयी थीं. बाघ जब भी देखता, बकरी पर टूट पड़ता. अंत में उच्च स्तरीय सरकारी अफसरों एवं बाघ के विशेषज्ञों की आपतकालीन सभा में यह निर्णय लिया गया कि उसके मजबूत जबड़े को तोड़ दिया जाये या उसके सारे दांत निकाल दिये जायें. फिर उसके नाखूनों को काटकर छोटा बना दिया जाये, ताकि बाघ अपने दांतों और पंजों का उपयोग न कर पाये.

और हुआ भी ऐसा ही. तड़के ही बाघ को बेहोश करके उसके जबड़े को तोड़ दिया गया. उसके नाखूनों की कटनी कर दी गयी और राम घाट पर बांध दिया गया. थोड़ी देर बाद एक बकरी उसके पास ही छोड़ दी गयी. बकरी की नजर जैसे ही बाघ पर पड़ी, उसकी घिग्घी बंध गयी. उसने जोर-जोर से चिल्लाना शुरू किया. जैसे-जैसे सुबह की लालिमा क्षितिज पर फैल रही थी, बकरी की असहाय चीख आसमान को छेदने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगी थी.

थोड़ी देर बाद जब बाघ की बेहोशी कुछ घट गयी तो उसने बमुश्किल आंखें खोलकर बकरी की तरफ देखा जो लगातार मिमियाती जा रही थी. लेकिन दर्द के मारे उसका शरीर झनझना रहा था, इसलिए वह पुनः आंखें बंदकर कराहने लगा. बकरी को, बाघ की कराह ने हैरत में डाल दिया. उसने बाघ के गरजने की कल्पना जरूर की थी लेकिन बाघ एक बकरी के सामने कराहने लगे, यह उसकी कल्पना की अनंत दुनिया से बाहर की बात थी. सहसा उसे यकीन नहीं हुआ. उसने अपनी चेतना के जाग्रत होने की परीक्षा में अपना सिर जमीन पर दे मारा. तब कहीं जाकर विश्वास हुआ कि एक महान सत्य सामने था. फिर भी उसे लगा, जरूर प्रकृति में कहीं न कहीं कुछ गड़बड़ है.

बाघ की दर्दभरी कराह ने उसे जैसे हिलाकर रख दिया. उसने अंदर ही अंदर यह मान लिया कि वह इस बाघ का भोजन बनने के लिए नहीं, बल्कि उसकी सेवा के लिए बांध दी गयी थी. उसने बड़ी हिम्मत बांधकर, अपनी संपूर्ण जानवरीय भावनाओं के साथ, मिमियाते हुए कहा, "लगता है, आपको कष्ट हो रहा है. मैं आपकी कोई मदद कर सकती हूं?"

इस बार बाघ के चकित होने की बरी थी. बकरी की इस मधुर आवाज ने जैसे बाघ के असंख्य दर्दों को हर लिया हो. उसे भी यकीन नहीं हुआ कि जिस बकरी को आज तक वह केवल अपने पापी पेट की क्षुधा तृप्ति का साधन समझता था, वह भीतर से इतनी करुणामयी हो सकती थी. शर्म से वह बकरी से आंखें नहीं मिला सका. नजर झुकाते हुए उसने कहा, "हां, जालिमों ने मेरा जबड़ा बुरी तरह कुचल दिया है. नाखून उखाड़ लिये हैं कमबख्तों ने..."

"क्यों?" भोलेपन से बकरी ने पछा.

"इसलिए कि उन्हें डर था कि मैं तुझे खा न जाऊं. क्योंकि वे लोग राम राज्य सप्ताह मना रहे हैं. उस अवसर पर हम लोगों का एक साथ फोटो लेना चाहते थे."

"आग लगे उनके फोटा को! देखो तो तुम्हारी क्या हालत बना दी है राक्षसों ने!" कहकर बकरी बाघ के पास आ गयी और उसके जबड़े को सूंघने व प्यार करने लगी. पता नहीं क्यों बाघ को इससे काफी सुख मिलने लगा. वह भावुक हो उठा.

"तुम्हारी आंखें बहुत अच्छी हैं..." बाघ ने प्यार से, दर्द की परवाह किये बगैर कहा.

"तुम्हें हमारी आंखें देखने की फुर्सत ही कहां मिलती है? देखते ही हमें चीर-फाड़कर रख देते हो." बकरी ने उलाहना देते हुए बड़ी सरलता से जवाब दियां. बाघ क्षण भर को भूल गया कि उसका जबड़ा पूरी तरह नेस्तनाबूद था और उसके बेहोश पड़े रहने की सुइयां दी जा चुकी थीं. उसे पहली मर्तबा महसूस हुआ कि बकरी सिर्फ खाने की चीज नहीं है. उसने शरीर में एक नयी ताजगी महसूस की, फिर बकरी से कहा, "उसके पहले कि कोई आदमी यहां आये, चलो हम भाग चलते हैं."

"बाघ का किसी बकरी के साथ भाग जाना संसार की पहली और आखिरी घटना होगी, शायद." बकरी ने सहमति प्रकट करते हुए कहा.

"हां, ऐसा पहले कभी नहीं हुआ."

"अगर तुम्हारी नीयत खराब हो गयी तो?"

"मुझे तुम आदमी समझती हो क्या? तुमने संकट के समय मेरा साथ दिया है. मैं भूखा मर जाऊंगा लेकिन तुम्हारी ओर नजर उठाकर भी नहीं देखूंगा." बाघ ने दृढ़ स्वर से बकरी को आश्वस्त किया.

बकरी मुस्करायी और बोली, "प्यार से भी नहीं देखोगे?"

यह सुनते ही बाघ, बकरी के पास आ गया. बकरी की कमजोर रस्सी को तोड़ दिया. आजाद होकर दोनों गेट की तरफ बढ़ने लगे. बाघ चलने में अभी लड़खड़ा रहा था क्योंकि बेहोशी की दवा का असर पूरी तरह टूटा नहीं था. दोनों चले जा रहे थे लेकिन बाघ के मन के अंदर वैचारिक द्वंद्व शुरू हो चुका था. बाघ एक बकरी के साथ भाग रहा था. यह वि[illegible] की अनूठी खबर थी. किसी को यकीन हो ही नहीं सकता. कम से क[illegible] बाघ की जातिवाले उसके नाम से आगामी कई पीढ़ियों तक थू[illegible] रहेंगे. उसका जिक्र आते ही संसार भर के बाघों के मुंह का स्वाद बि[illegible] जायेगा.

बाघ जाति के पुजारी बाघ के भगवान के पास इतनी शिकायतें क[illegible] कि उसे नर्क में भी जगह नहीं मिलेगी. जाने कितनी कहानियां कि[illegible] रूपों में कही जायेंगी. फिर भी उसे चिंता नहीं होगी. वह समाज से लड़े[illegible] लेकिन बकरी को किसी तरह नुकसान नहीं पहुंचायेगा.

इधर बकरी सोच रही थी कि अचानक उसे क्या हुआ कि एक अ[illegible] ही कातिल को दिल दे बैठी. फिर बाघ और बकरी दो अलग-अलग जाति[illegible] हैं. हर जाति की अपनी-अपनी इज्जत है. और फिर इस प्रेम के चक्कर[illegible] अगर वह गर्भवती हो गयी तो क्या होगा? बच्चा क्या बनेगा, बाघ [illegible] बकरी? बकरी जाति के मुखिया पता नहीं कितनी बार अपना [illegible] पीतल के दरख्त से टकरायेंगे. पंचायतें होंगी. बकरी जाति की इज्ज[illegible] मर्यादा पर उसे कलंक का टीका समझा जायेगा. उसे बाघ खा लेता [illegible] खुशी की बात थी. जाति के सम्मान की बात थी. लेकिन इससे सारा[illegible] जाति का अपमान होगा कि बकरी जाति की लड़की से, एक बाघ प्या[illegible] करने लगा. बकरी जाति के खुदा उसे नर्क में भी जगह नहीं देंगे. फिर [illegible] वह बाघ का साथ नहीं छोड़ेगी.

दोनों सोचते हुए झुटपुटे अंधेरे में काफी दूर निकल आये थे. अभी ज[illegible] पहुंचे थे, उसे बड़े शहर का ही छोटा हिस्सा था. पहले तो उन्हें लोगों [illegible] डर होते लगा कि उन्हें शीघ्र ही यह बात समझ में आ गयी कि उन[illegible] डरना फजूल था. क्योंकि उन लोगों ने अपनी-अपनी आंखों पर प[illegible] बांध रखी थी. वे लोग अपने शासक के अंधे भक्त थे. दो-चार लोगों [illegible] बीच की कुछ बातें सुनकर बाप ने समझ लिया—वह अकसर बिना लो[illegible] को बताये कहीं चला जाता था जो उन्हें आंखें बंद करने और खोलने [illegible] हुक्म दिया करता था. लोग पिछले तीन दिनों से यह तय कर नहीं पा[illegible] थे कि वे लोग क्या करें? हुक्म के बिना आंखें खोलकर देखने का सा[illegible] किसी में भी नहीं था.

तभी बाघ की नजर केले की बड़ी दूकान पर गयी. उन्हें भूख लग [illegible] थी. दोनों उस और लपके और केले खाने लगे. चपर-चपर की आव[illegible] सुनकर दूकानदार को लगा कि कोई केले चुरा रहा था, इसलिए उ[illegible] पट्टी हटा कर देख ली. लेकिन देखते ही उसकी घिग्घी बंध गयी. क्यों[illegible] खाने वाला एक बाघ था. दूसरे अगर वह बाघ-बाघ चिल्लाने लगता [illegible]

फसल

□ महेश चंद्र सरल

एक आला अफसर का तबादला हो गया, किंतु बंगले की भूमि पर लगाये गये आलू तैयार नहीं हो पाये थे. बंगला खाली हो गया, पर ध्यान लगा रहा आलुओं पर. जब फसल तैयार हो गयी तो वे आये और आलू थोक भाव में बाजार में बिकवा गये. उनके समय के छोटे अफसरों और कर्मचारियों ने साथ दिया. कुशल रही कि नये अफसर ने इस मामले में उदारता से काम लिया और उन्होंने आलुओं पर अपना स्वामित्व नहीं जताया. बाजार में 'साहब के

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका नाम बिना हुक्म के पट्टी खोलने वालों में चला आता. अतएव वह राम राम करता दम साधे, बाघ के चले जाने का इंतजार करता रहा.

भरपेट केले खाने के बाद उस बस्ती से दोनों निकल गये. जंगल का इलाका वहां से बहुत दूर था. रास्ते में जब दोनों एक दूसरे के शरीर से सटकर चल रहे थे. बकरी अब तक उन लोगों के बारे सोच रही थी, जिनकी आंखों पर पट्टियां बंधी थीं. अब तक ऐसा दृश्य उसने नहीं देखा था. जब उसकी समझ में कुछ नहीं आया तब बाघ से उसने पूछा, ''आदमी-आदमी से इतना डरता क्यों है? मैं तो अपनी जाति की किसी बकरे या बकरी से नहीं डरती.''

''बाघ भी किसी दूसरे बाघ से नहीं डरता.'' बाघ ने कहा.

''तो फिर उन्होंने अपने आंखों पर पट्टियां क्यों चढ़ा रखी थीं?''

''वे आदमी थे. वे लोग उतना ही देख सकते हैं जितना उन्हें देखने का हुक्म है.''

बकरी समझ गयी. बाघ की और उसने कातिल आंखों से काम बाण चलाते हुए कहा, ''मुझे कभी-कभी तुमसे बहुत डर लगता है. आग और पानी में कभी दोस्ती हुई है आज तक?''

''तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करती?'' मैं जानवर हूं वफादारी मेरी रग-रग में है. मैंने तुम्हें चाह लिया है. मरते दम तक तुझ पर आंच नहीं आने दूंगा.''

इस तरह बातें करते हुए वे दोनों चलकर एक नयी बस्ती के पास रुक गए. वहां के लोगों को देखकर भी उन्हें अजीब-सा लगा. वहां के बूढ़े-बच्चे, सभी मुंह पर पट्टियां चढ़ाए हुए थे. वे देख सकते थे, सुन सकते थे, लेकिन उनसे बोलना संभव नहीं. इसके पहले किसी की नजर उन पर पड़े, वे रास्ता काटकर दूसरी तरफ से निकल गए. बकरी से फिर नहीं रहा गया. उसने पूछा, ''उन लोगों ने मुंह क्यों बंद कर लिया था?''

''इसलिए कि सरकार ने उन्हें कुछ भी बोलने की आजादी, एक विधेयक लागू करके छीन ली है. उन लोगों को सिर्फ देखने और सुनने का ही अधिकार है.''

बाघ के ज्ञान पर बकरी को गर्व हो आया. जानवर होते हुए भी बाघ को इतनी जानकारी थी, यह सोचकर पुलकन से भर गयी और उछल-उछलकर नृत्य करना शुरू किया. हालांकि उसने अभी तक एक भी हिंदी फिल्म नहीं देखी थी, फिर भी वह उसी नायिका की तरह लग रही थी जो नायक के सामने उछल-कूदकर नाच दिखाती हुई गाना गाकर अपने प्रियतम को मोहित करने की कोशिश करती है. बाघ भी हिंदी फिल्म के नायक की तरह मुस्कराया ओर बकरी को अपने आगोश में भरकर उछल-कूद करने लगा.

जब दोनों प्रेम करके अलग हुए, मंथर गति से रास्ते पर आगे बढ़ने लगे. सूरज के ढलने में कुछ ही क्षण बाकी थे. जंगल की छाया दूर से ही दिखाई पड़ने लगी थी. जंगल तक पहुंचने के लिए एक और बस्ती थी जिसे पार करना था. अचानक उन दोनों की नजर एक आदमी पर पड़ गयी जो उन्हें चकित नजरों से देख रहा था. डर से उसका चेहरा पीला पड़ गया था. उसके कानों पर बड़ी-बड़ी गद्देदार पट्टियां बंधी थीं. बाघ ने फौरन भांप लिया और उस आदमी से डरकर अपना रास्ता बदल लिया. अचानक आदमी दौड़कर, बिजली की गति से चिल्लाता हुआ बस्ती की तरफ भागा. बाघ भी छलांगे मारता हुआ तेजी से जंगल की तरफ दौड़ा. लेकिन बकरी की स्थिति नाजुक हो गयी थी. वह दौड़ने में बाघ का साथ नहीं दे पा रही थी. बाघ कुछ देर तक तो उत्साहित करके उसे दौड़ाता रहा, लेकिन बकरी फिर शिथिल पड़ गयी.

तभी बाघ को दूर से आते हुए लोगों के चीखने की आवाजें सुनायी पड़ी. उसने गर्दन उठाकर देखा, सबके हाथ में कोई न कोई हथियार था और वे तेजी से बाघ की ओर बढ़े जा रहे थे. बाघ, यह देखकर चिंतित हो उठा. बकरी समझ गयी. उसकी आंखों में आंसू छलक आए.

''तुम मेरी चिंता मत करो ... भाग जाओ ...! भगवान के लिए जल्दी करो ...!''

''मैंने कहा न, मैं आदमी नहीं हूं. तुम संकट के समय मेरे पास आयीं. मैं तुम्हें संकट में डालकर नहीं भाग सकता. तुम कोशिश करो.''

''मैं बहुत थक गयी हूं मैं भाग नहीं सकती. तुम्हें मेरी कसम!'' बकरी ने समर्पण भाव से कहा.

''देखो, मैं तुम्हारी कोई कसम नहीं मानूंगा. चाहे मैं मर जाऊं, तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता.''

बाघ के इस निर्णय को सुनकर बकरी घबरा गयी. लोग तेजी से नजदीक आते जा रहे थे. बकरी की आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे. बाघ के चेहरे पर बेचैनी का समुद्र लहराने लगा.

''सुनो, मेरी अंतिम इच्छा पूरी करोगे? तुम्हें इस ऐतिहासिक प्यार की कसम .... मुझे वे किसी भी हालत में जीवित नहीं रहने देंगे. इससे अच्छा है कि मुझे तुम मार दो. कम से कम मरने वक्त एक संताष तो रहेगा?''

बाघ को चुप देखकर बकरी ने फिर पूछा, ''क्या मेरी अंतिम इच्छा भी पूरी नहीं करोगे?'' बकरी ने गिड़गिड़ाते हुए कहाए

''नहीं, मुझसे यह नहीं होगा. मैं तुम्हें प्यार करता हूं.'' बाघ ने फिर दुहराया.

''देखो, जिद मत करो. मैं तुमसे अपनी मुक्ति की भीख मांगती हूं. मेरी आत्मा को संतोष मिलेगा. जल्दी करो .... नहीं तो वे तुम्हें भी मार डालेंगे. मुझे मुक्त कर दो. इसके पहले कि वे मुझे कुट्टी-कुट्टी करके गोश्त बनाकर भून डालें ....''

यह सुनते ही बाघ के पुट्ठों में हरकतें हुई. वह जोर से गरजा बकरी के सिर को मुंह में पकड़कर पूरी ताकत से झटका दिया. कुछ ही क्षण के लिए बकरी के शरीर में कंपन हुई और वह निश्चेष्ट पड़ गयी. दूसरे क्षण बाघ ने सिर को धड़ से अलग कर दिया. फिर धड़ को मुंह में पकड़कर जंगल की तरफ दौड़ गया.

थोड़ी देर के बाद लोग उसका पीछा करते हुए, उस स्थान पर रुके जहां बकरी का ताजा-ताजा खून गिरा था और उसका मस्तक लुढ़का पड़ा था. सब लोगों के चेहरे पर खून को देखकर बाघ का आतंक छा गया. वे सशक्ति हो उठे. तभी उनमें से किसी ने कहा, ''अभी छोड़ दो .... शाम हो गयी है. कल बंदूक लेकर जंगल जायेंगे ....''

कहा जाता कि तभी से कुछ आदमी उस बाघ की तलाश में जंगलों में घुस गए हैं और जंगलों को काट-काटकर बाघ की तलाश कर रहे हैं. □

आलू' कहकर उनका मान बढ़ाया जाता रहा.

पर एक ऐसी ही दूसरी घटना में पहले वाले अफसर जब अपनी गेहूं की तैयार फसल लेने साधिकार आ गये, तो वर्तमान अफसर ने उस पर अपना स्वामित्व जताया और तर्क दिया कि फसल की तैयारी के समय जो बंगले में रहता है, वह उसी की होती है. दोनों पक्षों की महिलाओं ने इस मामले में जमकर रुचि ली. बात आम होकर हवा के साथ सभी जगह पहुंच गयी. किसी ने ताने दिये और किसी ने हंसी उड़ायी. समाचार पत्रों ने भी अपनी भूमिका निभायी.

पता चला कि ऊपर पहुंची खबरों और वहां के हस्तक्षेप से दोनों अफसरों को आधी-आधी फसल पर ही संतोष करना पड़ा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर से

एक चुप्पी उनके बीच फैल गयी. शायद दोनों ही अपने आप में अनजान होकर संयम और शालीनता से दुनिया के नये सवाल का उत्तर ढूंढने लगे थे ... कैसे थे यह सवाल ...? क्या इनका कोई उत्तर मिल सका उन्हें?

□ **हरिसुमन बिष्ट**

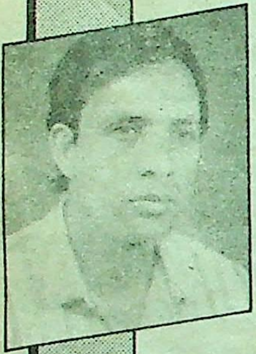

जन्मः 1 जनवरी, 1958
प्रमुख कृतियांः 'ममता' 'आसमान झुक रहा है' (उपन्यास) 'सफेद दाग', 'आग और अन्य कहानियां' (कथा-संग्रह) 'अपनी जबान में कुछ कहो' (रूसी कथाकार विक्टोरिया तोकारेवा की कहानियों का संपादन)
संप्रतिः 'इंद्रप्रस्थ भारती' के संपादन विभाग से संबद्ध.
संपर्कः सी-241 बी, सेक्टर-19, नोएडा-201301

झक जुनाली रात.

चारों तरफ दिन-सा प्रतीत हो रहा था, फिर भी वह मान बैठी थी कि मुंह बाये अंधेरा खड़ा है. हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा है. चांद और टिमटिमाते तारों की रोशनी सदा-सदा के लिए अलोप हो गयी है. आंगन में पेड़ों पर टूटते-झपटते चमगादड़, मुंडेर पर बैठे उल्लू के कर्कश स्वर पर ताल देता कठफोड़वा की खट्-खट् उसे गहरी अंधेरी रात की अनुभूति करा रहे थे. सांझ ढलते ही उसने दरवाजा बंद कर लिया और अपनी गुदड़ी पर पसर गयी. करवट बदलती, सोचती रही कि घर-बाहर ही क्यों अब मेरे जीवन में ही गहरा अंधेरा फैल चुका है.

उसकी आंख लग गयी.

दरवाजे पर दस्तक-सी हुई. वह उठी नहीं. उसे लगा, मैं कोई सपना देख रही हूं. वरन् इस अंधेरी रात में दरवाजे पर आकर दस्तक कौन देगा भला! अब दस्तक देनेवाला अपना है ही कौन? अपनी पूरी दुनिया ही उजड़ चुकी है. उस सच को सपना मानकर उसने आंखें मूंदी ही रखीं.

दस्तक बढ़ती गयी, तेज होती गयी. फिर भी वह उसे सपना मानकर भुला देने का प्रयास करती रही. उसे अपनी विस्मृति का भास हुआ कि पूरा शरीर तो सोया हुआ है पर चेतना जागी हुई है. आंखें भी बंद ही हैं तभी उसे यह स्वर सुनाई दे रहा है. उसने गहरी नींद सोने और विस्मरण के लिए करवट बदली. प्रयास विफल रहा. वह उठी, बुदबुदायी, "इस कठफोड़वा ने तो मेरी नींद ही छीन ली है. और दिन में यह गांवड़ी चैन लेने नहीं देती है."

उसके बुदबुदाने पर दस्तक थम गयी. उसने घर के कोने में रखे पुराने चीथड़े, टाट-पट्टियां उठायीं और दरवाजे के खुले जोड़ों में उन्हें ठूंस दिया ताकि बाहर का शोर सुनाई न पड़े.

वह अपनी गुदड़ी पर लौट आयी.

दस्तक जो उसके बुदबुदाने के साथ थम गयी थी वह पुनः प्रारंभ हो गयी.

वह दुखी हुई. उसे लगा-कठफोड़वा चीड़ के पेड़ को छोड़कर अब दरवाजे पर आ चुका है. वह अपनी चोंच से दरवाजे की सांकल हिला रहा है. लेकिन आज तक वह कभी नहीं आया. उसने मन में सोचा कि उठकर दरवाजा खोले और उड़ा दे. लेकिन उसकी हिम्मत नहीं हुई. सांकल की तरह एक भय उसे भी हिलाने लगाः 'अब मेरे पास बचा ही क्या है.' उसने मन को समझाने के अंदाज में कहा, 'मैं तो सपना देख रही थी, सपने में अपनों को देख रही थी. अपने पति के पांवों की आहट सुन रही थी. अपने अज्जो के दरवाजे पर खड़ा होकर दस्तक देने को सुन रही थी. दरवाजा खोलने के लिए ज्योंही अपना सपना संजो रही थी कि इस कठफोड़वा ने ..... अपने बेटे की बलाईयां नहीं लेने दी मुझे. मैं अपने से नहीं मिल सकी. मेरा सपना अधूरा ही रहा—सपना खंडित हो गया—ओह इसका भी क्या दोष. आज से पहले मेरे दरवााजे पर यह कभी नहीं आया—पूरे बीस साल हो गये हैं इस घर को संभाले हुए. बाहर आंधी-अंधड़ तो नहीं, कोई आफत तो नहीं घिर आयी उस पर!' उसने अपने मन को समझाते हुए दरवाजा खोला.

बाहर जुनाली रात देखकर उसे आश्चर्य हुआ. यह रात है या दिन हाथभर चढ़ आया है. अंचभित होकर उसने आंखें उघाड़ीं—यह जून है. यह जीवन सिंह ही है—उसका पति. उसका प्यारा जीवन. उसने अपनी आंखें मिचमिचायीं. 'नहीं, यह जीवन नहीं है—हो भी नहीं सकता भूत हो सकता है उसका. यही मेरे दरवाजे को जोर-जोर से पीट रहा था.' वह उसे देखकर दहल-सी गयी, 'यह जीवन की भूतिया आत्मा नहीं हो सकती. उसका भूत यहां नहीं आ सकता, यह कोई चोर-उचक्का या फिर लुटेरा है.' उसने झटके से अपना दरवाजा घुड़क दिया, उसे अकेली विधवा होने का एहसास हुआ. एक अबला होने का एहसास हुआ. यह जीवन का भूत होता तो वह कभी नहीं डरती. जीवन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत प्यार करती थी. वह भी उसे हमेशा आंखों में समाये रहता था. उसे असमंजस में घिरी एवं भयभीत होकर दरवाजा घुड़क देने पर एक स्वर उभरा—''लीला.''

'लीला!' वह स्वयं बुदबुदायी, 'यह स्वर कैसा? क्या इस चोर को मेरा नाम मालूम है? नहीं, इसे मेरा नाम कैसे मालूम हो सकता है भला! गांव का कोई भी बड़ा-छोटा, औरत-मर्द मेरा नाम नहीं जानता फिर यह अपरिचित—ओह, तब तो यह जीवन का भूत ही है. मालूम था तो सिर्फ जीवन को. मगर भूत बोल सकता है? मुझे नहीं मालूम. मैंने तो ऐसा कभी नहीं सुना.' उसने धीरे से दरवाजा खोला. मन हुआ, उससे पूछे उसकी हिम्मत नहीं हुई. उसने अपने अतीत को पलटकर देखा :

जब मैं ब्याहकर इस घर में आयी तब 15 साल की थी और जीवन अट्ठारह साल के. सास-ससुर दोनों सिर पर थे. घर-बाहर के काम में हाथ बंटाने वाला तीसरा कोई नहीं था. जीवन हल जोतता, हाट-बाजार जाता तो मैं सासूमां के साथ खेत-खलिहान और गाड़-गधेरी जाती. कुछ ही दिनों में गृहस्थी की गाड़ी रफ्तार में आ गयी. जात-बिरादरी की बराबरी पर आ गये. सासूमां कहती, ''बहू है कि साक्षात् देवी है, लक्ष्मी है. जब से पांव इस घर में पड़ा सभी रतन हाथ लग गये.'' ससुर तो बस मुझे देखकर लोट-पोट हो जाते. और सासूमां से कहते, ''बहू को देखकर जी मोटा हो गया अज्जो की मां! अब तो आहार भी बढ़ गया है. कौर से बढ़कर आधी रोटी, कभी-कभी तो पूरी रोटी ऊपर खा लेता हूं. अब स्वाद आया न बहू के हाथ की पकायी रोटी का. आज तक तो खाली पेट भरायी चल रही थी तुम्हारे साथ.''

और दोनों खिलखिला उठते लोग कहते, ''शादी के बाद जीबुआ भी जीवनसिंह हो गया है. वह नासमझ नहीं रहा. उससे भी तो दु:ख-सुख में सलाह-मशविरा करना चाहिए.''

घर के बदलते माहौल के बारे में सुनकर मैं सोचती, क्या शादी के बाद ही आदमी समझदार होता है. उससे पहले नहीं. ससुराल में आकर लड़की को अपना जीवन नयी साड़ी की तरह धो-सुखाकर तहा देना होता है. अपना पिछला सब कुछ भुला देना होता है. इस गांव के लोग तो जैसे मेरा नाम ही नहीं जानते. जो भी मिलता है 'जीवनसिंह की बहू' या फिर सीधे-सीधे 'जीवन की बहू' कहकर पुकारते हैं. तब मुझे लगता था, मेरा नाम ही गुम हो गया है. मेरी अपनी पहचान ही गुम हो गयी है. शादी के चंद रोज बाद ही एस.एस.बी. के सिपाही गांव के लोगों को बंदूक और राइफल चलाने की ट्रेनिंग देने आये. मेरा नाम भी वहां दर्ज किया गया. हर रोज हाजिरी होने लगी. सभी का नाम लेकर पुकारा जाता और मुझे 'जीवन की बहू'. पहलेपहल तो बहुत हंसी आयी. कुछ सोचा भी नहीं, और जब फायरिंग हुई तो मेरी सारी गोलियां निशाने पर ठीक लगीं. हफ्ते भर बाद माह भर की ट्रेनिंग के लिए शिमला जाने का आर्डर मिल गया. मैं बहुत खुश हुई. लेकिन आर्डर में मेरा नाम वही दर्ज था—''जीवन की बहू''. मुझे बहुत अफसोस हुआ. एस.एस.बी. के कमांडर के पास जीवन ही गया. उनका भी कहना था—'यह सुधार पहले क्यों नहीं किया गया? अब एस.एस.बी. के रिकार्ड के अनुसार यही नाम है—इसे ही होना चाहिए.'

यह सुनकर मैं टूट गयी. ट्रेनिंग के लिए शिमला जाने का ध्येय छोड़ दिया. उस दिन जीवन ने बहुत समझाया, ''तू क्यों उदास हो रही है लीला! तेरा नाम तो मुझे याद रहना चाहिए. दुनिया नाम भुला दे तो क्या फर्क पड़ता है. दिलों में फर्क नहीं आना चाहिये.''

''पर मैं शिमला तो नहीं जाऊंगी न इस नाम से. वहां के लोग भी क्या कहेंगे. मेरे नाम की हंसी करेंगे.''

''तुम न जाना चाहती हो तो ठीक है. तुम्हारे बदले मैं फौज में चला जाता हूं. तुम अपने गांव की रक्षा तो कर सकती हो न अब. मैं देश रक्षा के लिये जाऊंगा. जानती हो आजकल सरकार बहुत ज्यादा सिपाही भरती

कर रही है फौज में, चीन की लड़ाई के बाद.''

''हां, ठीक कह रहे हो जीवन. देश की रक्षा तो हमारा पहला काम है. तुम भरती हो जाओ. दुश्मन पर मेरे नाम से भी एक गोली चला देना. तब देखना मेरे नाम से चली गोली कभी खाली नहीं जायेगी.''

'तब तो एक क्यों सारी गोलियां तेरे नाम से चलाऊंगा. फिर तो एक भी दुश्मन नहीं बचेगा लीला!' यह कहते जीवन ने मुझे अपनी बाहों में कस लिया था. एक जोश रगों में दौड़ने लगा. उसी समय सिर पर हाथ रखकर उसने कसम ली थी कि वह एक भी दिन घर पर नहीं रहेगा. ये सारी बातें उस रात को हुई थीं. सुबह हुई. जीवन घर से चला गया भरती होने. सच्ची लगन जागी थी मन में. रानीखेत पहुंचने की देरी थी. वह भरती हो गया. साल भर बाद घर लौटा तो वह पहले जैसे जीवन नहीं रहा. सूरत ही बदल गयी. चेहरे का रंग ही बदल गया. गाल पिचक गये. हाथ में छाला गांठें बन गयीं. उससे जब पूछा तो वह बोला, ''बहुत कष्ट में बिताये नौ महीने लीला! तुझसे वचन न किया होता तो कभी का छोड़-छाड़कर आ लौटता. ट्रेनिंग के समय तो मौत भी न मालूम कहां छुप जाती है—तुम यकीन करो लीला गांव की ट्रेनिंग तो कुछ भी नहीं है—सिवाय यह जानकारी के कि रायफल के तीन मुख्य भाग होते हैं—बट, बॉडी और बैरल या लकड़ी लोहा और पीतल राइफल की ये चीजें ही पूछते थे एस.एस.बी. के सिपाही. मगर फौज में लीला...''

साल पर बाद घर लौटा तो जीवन का वही संबोधन था. उस दिन के और आज के स्वर में कोई फर्क नहीं है, गौर से देखा-जीवन ही है.

''लीला!'' पुनः संबोधित किया, ''पहचान नहीं रही हो क्या? मैं हूं, मैं हूं जीवन.''

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जीवन!" उसने दरवाजा पूरी तरह खोला और आगे बढ़ी. "जीवन तुम ...."

"हां लीला! मैं ही हूं जीवन." उसने बाहें फैलायीं, "पहचान नहीं रही हो क्या? आओ इधर आओ. मुझे गौर से देखो. मैं ही हूं न."

"हां, मगर तुम तो ....."

"हां, तुम ठीक सोच रही हो."

"आओ, अंदर आओ, मेरा घर अंदर है. तुम्हारे आने को कोई देख

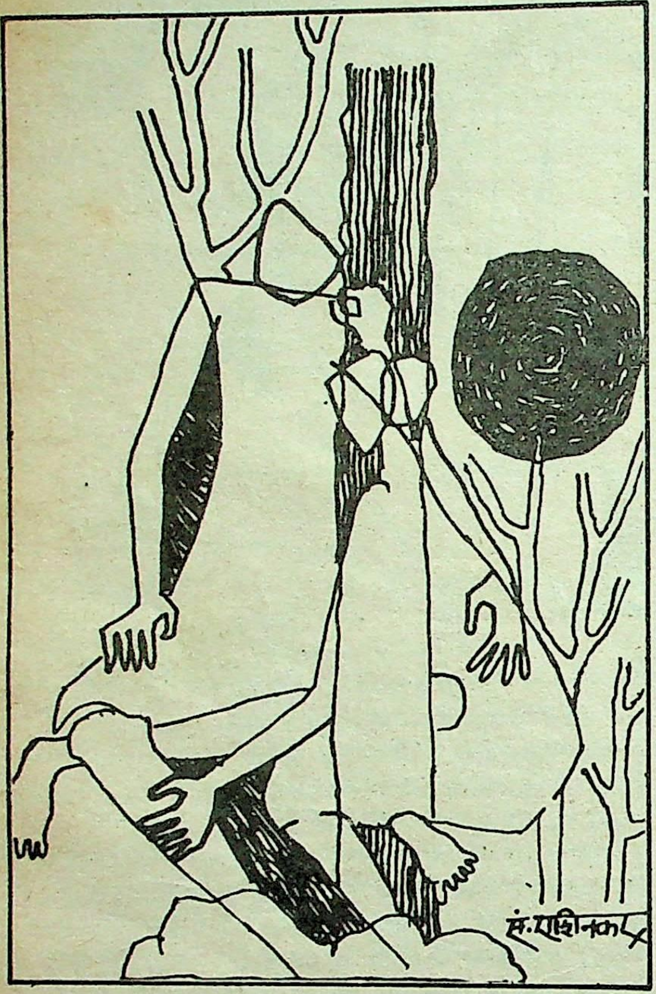

लेगा. मन ही मन जल-भुन जायेगा."

"कौन देखेगा इस आधी रात में. सारा गांव सोया हुआ है."

"ये तो हैं जो मुझे मुंह चिढ़ाते हैं. देखो कैसा मुंह बना रहा है अब भी. और ये सुनो इनका चीखना-चिल्लाना. लोगों को कैसे जगा रहे हैं. तुम्हारे आने की खबर देने के लिये."

"तुम क्या कह रही हो, किससे कह रही हो."

"इनसे कह रही हूं. तुम क्यों पहचानोगे इन्हें. ये जून, ये चमगादड़ और यह कठफोड़वा तो मेरे दरवाजे की सांकल को भी हिला देता है."

"हां, ठीक कह रही हो लीला! चलो, अब अंदर ले चलो मुझे."

लीला की बाहें थाम लीं जीवन ने और अंदर चले आये. बाहर के सापेक्ष घुप अंधेरा. लीला ने इशारा किया और धीरे से बोली, "आओ इधर आओ. यह है मेरी गुदड़ी, बैठो."

"किधर मुझे तो कुछ भी नहीं दिख रहा है."

"देखो, मेरी आंखों से देखो."

"ढिबरी नहीं बालोगी?"

"नहीं."

गुठलियां

□ सुकेश साहनी

"मांजी चाय! बहू की मीठी आवाज सुभद्रा के कानों में पड़ी. चाय का पहला घूंट पीते ही उसे लगा चाय केवल दूध से ही तैयार की गयी है. सुभद्रा पुलकित हो उठी. राकेश और रीना को उसकी सेहत की कितनी चिंता है! शायद इस बार उसने गांव से राकेश के साथ यहां आकर कोई गलती नहीं की है.

दीवार पर अपने पति की माला चढ़ी फोटो को देखते हुए वह पुरानी यादों में खो गयी. बचपन के बारे में सोचते ही शहतूत के लिए बागों की ओर दौड़ते बच्चे उसकी आंखों के आगे घूमने लगते हैं. उसे शहतूत बहुत अच्छे लगते थे, पर वह चाहकर भी नहीं खा पाती थी. उन दिनों हर वर्ष उसके भाई बहनों की संख्या में वृद्धि हो जाती थी और उनमें से किसी एक को कमर से टिकाये उसे मां के कामों में हाथ बंटाना पड़ता था. भाइयों से बहुत ईर्ष्या होती थी. मां उन्हें बादाम और चिलगोजे खाने को देती थी. पिताजी भी मूंगफली की तरह मेवे फांका करते थे. जब

"क्यों?"

"उसकी रोशनी मुझे अच्छी नहीं लगती."

"क्यों"

"अब मैं इस अंधेरे की आदी हो चुकी हूं." इसमें मुझे सब कुछ दि है."

ठीक कह रही हो. आओ, तुम भी बैठो अपनी गुदड़ी पर."

मैं बैठी-बैठी तब से थक गयी हूं. पीठ भी दुखने लगी है. बद सीधा नहीं होता."

"तो मेरे समीप बैठोगी भी नहीं."

"पहले दरवाजा बंद कर लेती हूं."

"क्यों?".

"जून का उजारा मेरी गुदड़ी की तरफ बढ़ आयेगा. मुझे यह सब नहीं लगता. इससे डर लगता है."

"क्यों? यह तुम्हारा घर है. अपने भीतर ही डर लगता है आश्चर्य!"

"हां, बहुत डर लगता है मुझे. अपने भीतर का डर. कहीं दरवाजे खुले रह गये तो—ओह कहीं दरवाजा खुला ही रह जा उसकी चांदनी मेरे बिस्तर तक रेंगती चली आयेगी. कहीं आंखें ल मैं गहरी नींद सो गयी तो यह चांदनी मुझे झुलसा देगी. इसी रात-रात भर जगी रहती हूं. दरवाजे के जोड़ों को भी बंद कर ले हवा का तेज झोंका आकर मुझे झकझोरने लगता है. दरवाजे के जोड़ ठूंसे चित्थड़ों को गिरा देता है. मैं उन्हें ठीक करती हूं, फिर .... बेरुखी से कहती हूं—क्यों बर्फ बिखेर रही है ये हवा. मेरा शरीर तो ही जम चुका है. देखो जीवन तुम खुद छूकर देखो—एकदम बर्फ बन है न?"

"तुम्हें मरे लौट आने की आस नहीं थी क्या?"

"आस तो बहुत की पहलेपहल. लड़ाई की खबर सुनती दिन- लोगों से रेडियो की खबर पूछती. खबर सुनकर बहुत खुश भी होती कि तुम छंब में दुश्मन से भिड रहे हो. आगे बढ़ रहे हो. बड़ा मला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मांगती तो कहा जाता, "ये सब चीजें लड़कियों के खाने के लिए नहीं होतीं." चौदह वर्ष की आयु में उसका विवाह हो गया था और तब से अब तक उसका समय बच्चे पैदा करने, करवाने और फिर उन बच्चों को पालने-पोसने में बीत गया था.

इन्हीं बातों को सोचते-सोचते वह थक गयी. रोहित और नन्हीं बिट्टी उसके पास बैठे आम खा रहे थे. पास ही राकेश खड़ा अखबार पढ़ रहा था.

"मां, हम लोग कल बीस-पच्चीस दिनों के लिए एल.टी.सी. पर साऊथ जा रहे हैं...." राकेश ने अखबार से आंख हटाए बिना मां से कहा, "तुम हमारे पीछे घर का जरा ध्यान रखना.... वैसे रीना सब इंतजाम करके जायेगी....तुम्हें हमारे पीछे कोई परेशानी नहीं होगी."

गाढ़े दूध से तैयार चाय का आखिरी घूंट सुभद्रा को बहुत कड़वा लगा. तो इसीलिए लाया है मुझे गांव से. उधर बिट्टी गला फाड़-फाड़कर रोने लगी थी. रीना ने चुपके से आम का गुठली वाला भाग रोहित को दिया था जबकि बिट्टी काफी देर से गुठली की मांग कर रही थी.

रोहित अपनी छोटी बहन के रोने की परवाह किए बिना बड़ी तेजी से गुठली चूसे जा रहा था. □

करती थी मन-ही-मन.

"क्यों?"

"बहुत अधिक मलाल. तुम छंब में अकेले लड़ रहे थे दुश्मन से. काश मैं भी तुम्हारे साथ होती. मेरा निशाना तो तुमसे भी सही था न. तुम्हें याद है—एस.एस.बी. की फायरिंग में पांच बुल और चार सेंटर मारे थे. एक गोली आउटर पर न मालूम कैसे चली गयी और तुम." वह जोर से खिलखिलायी, "और तुम फेल हो गये. तुम्हारी सभी गोलियां तो ....."

"ठीक कह रही हो. मैं उस दिन क्यों आज तक फेल हुआ हूं"

"ऐसा क्यों सोचते हो जीवन!"

"सच लीला, पाकिस्तान की फौज हमारी फौजों से बहुत पीछे थी. आज भी पीछे ही है हर तरफ से. हमारे देश के सिपाही अपने यश व सम्मान के लिये नहीं देश के लिये लड़ते हैं. देश-रक्षा के लिये लड़ते हैं—पद प्रतिष्ठा की तो वे सोच भी नहीं पाते. ऐसा सोचने का वक्त ही कहां मिलता है उन्हें. मैं निशानेबाजी में पहले ही फेल हो चुका न, उसका परिणाम भी तुम देख रही हो. अब 13 वर्ष दुश्मन की रोटी-नमक खाकर लौटा हूं."

"ऐसा क्यो सोचते हो जीवन! तुम जानबूझकर तो उनकी पकड़ में नहीं आये न?"

"नहीं, आखिरी गोली दागने तक तुम्हारा नाम लेकर लड़ता रहा. मेरे पांचों साथी एक ही बार में मारे गये. मैं बच गया. लड़ता रहा. जब मेरे पास एक ही गोली बची तो मैंने अपने मरे हुए साथियों की मैगजीन ढूंढी. कहीं भी नहीं मिले. उनके साबुत जिस्म नहीं मिले. पांचों के जिस्मों के सैकड़ों-हजारों कतरे-कतरे बिखर चुके थे. मैं हताश हो गया. बिना गोलियों के दुश्मन के सामने टिका रहना या फिर आत्मसमर्पण करना रास नहीं आया. सिर्फ एक गोली बची थी. दूर-दूर तक नजर दौड़ायी. चारों तरफ़ धुंध और उसके बीच आग उगलती तोपें, मशीनगन और एक भीषण स्वर सुनायी पड़ रहा था. कोई भी नहीं दीखा. सभी दुबके पड़े थे. दुश्मन ने फायरिंग तेज कर दी. मैदान छोड़कर भागना कायरता लगी. शेष बची गोली अपनी कनपटी पर दागने को निशाना साध ही रहा था कि दुश्मन ने दबोच लिया. वे मुझे पकड़कर ले गये. फिर मेरी सुध किसी ने नहीं ली. बटालियन के अन्य साथियों ने भी कोई खोज खबर नहीं ली. उन्होंने सोचा, उन पांचों के साथ मैं भी मारा गया हूं. काश उस दिन ऐसा हो गया होता ...."

"मगर जीवन, तुम्हारे शहीद होने की खबर तो मुझे भी पोस्टमैन ने दी थी. उसने मेरे सामने ही तार खोलकर पढ़ा था."

"अच्छा....."

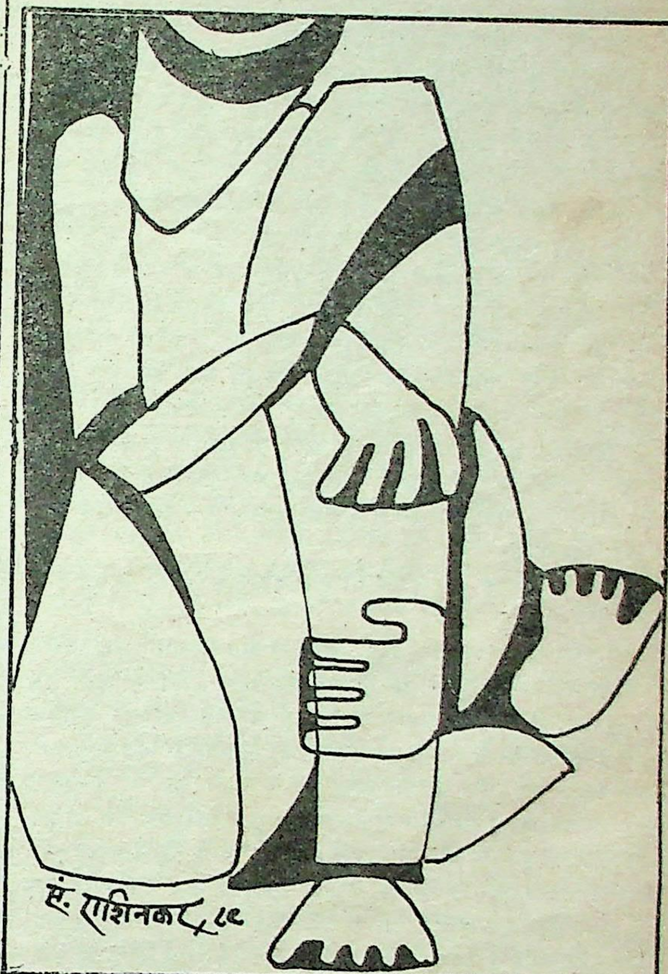

"और हफ्ता या दस दिन के बाद यह वर्दी देखो—यह वर्दी नहीं है अब. मेरे दरवाजे पर के पर्दे हैं. रात-दिन लटके इन पर्दों में मैंने तब से अपनी आंखें काटकर चिपकायी हैं."

"ओह यह वर्दी भी...."

"हां, मुझे नहीं आया आज तक कि यह वर्दी तुम्हारी ही है. ये मुझे तुम्हारे बदन पर फिट न आने का एहसास दिलाते रहे हैं. इसी उम्मीद पर आज तक जीवित हूं. आज की हकीकत जान लेने को ये मुझे जीवित रखे रहे. मैं इन्हीं के सहारे जीवित हूं जीवन—इन्हीं के सहारे."

"मगर मेरे पकड़े जाने की खबर तो सरकार को दे दी गयी थी. तुम्हें उसकी सूचना नहीं मिली क्या?"

"नहीं, अचानक नहीं. यह खबर मिल गयी होती तो मेरी यह गत नहीं होती. यह घर यों ही तबाह नहीं होता. बस जीवन अब तो काल के दिन गिन रही हूं."

"क्या तुम इतनी टूट चुकी हो? हताश हो चुकी हो? मैंने कभी सोचा भी नहीं कि इस तरह तुम हार मान लोगी. तुम्हारे कहने पर मैंने परदेश का मुख देखा. फौज में भरती हुआ. तुम्हें याद है जब मैं भरती होने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये गया—उस दिन तुमने क्या कहा था—देश के लिये जान भी चली जाये तो उस पर दुःख नहीं करोगी. यही था तुम्हारा विश्वास, तुम्हारी हिम्मत."

"दुख तो मुझे जरा भी नहीं हुआ था उस रोज जीवन! जब पोस्टमैन तार लाया था. तुम यकीन मानो मेरा एक भी आंसू नहीं टपका था. गांव के छोटे-बड़े और औरत-मर्द सभी ढांढस देने आये. मैंने उन्हें फटकार लगा दी—फौजी चूहे-बिल्ली और गीदड़ की मौत नहीं मरते. सीना खोलकर गोली खाते हैं. वे तो वर्षों तक याद किये जाते हैं. वे तो मरकर भी जीवित हैं."

"तिस पर भी आज यह दशा कर डाली?"

"उन लोगों ने एक नहीं सुनी. कहने लगे—तुम्हारे मरने की खबर पाकर भी मैं खुश हूं. मैं अपने को विधवा नहीं देखना और कहना चाहती. बड़े-बुजुर्गों ने मुझे दुतकारा. औरतें आयीं, मेरा चरेऊ तोड़ा, चूड़ियां तोड़ीं और गले का गुलुबंद, कान के कर्णफूल निकाल कर रख दिये. मैंने उन्हें काफी रोका, समझाया. वे मुझे बेवा बनाकर ही थकीं."

"और जब सुबह मुझ पर नजर पड़ेगी तब."

"तब तो भगवान ही जाने. क्या कुछ कहेंगे. मेरी तो उस दिन इच्छा हुई कि जहर खाकर गहरी नींद सो जाऊं. जब भी सोचा उसी समय अजीत को सामने पाती. इसे तुम मुझे डरपोक कहोगे लेकिन तब जहर खाकर मर जाना कायरता लगी. जहर खाने को हाथ बढ़े नहीं. फिर कल्पना में तुम्हारे मारे जाने की याद करती रही कि गोली कहां पर और कैसे लगी होगी. अपने गंगरथों में लगी रहती तो एकाएक हाथ-पांव जड़ बन जाते. अजीत को भी हाय हो गयी. वह कभी चक्की के सहारे बैठा रहता तो कभी दरवाजे के कोने में सिसक-सिसक रोता रहता. उसे कुछ भी नहीं सूझता था."

"अपना अज्जो तो अब जवान हो चुका होगा. मेरे कंधों पर आ लगा होगा?"

"हां, पूरा गबरू हो चुका होगा. तुम्हारी खबर सुनकर उसका मन पढ़ाई पर नहीं लगा. तुम ही सोचो जरा, वह पढ़ाई करता भी कैसे? इस खेती में कुछ हो तब न! तुम्हारा सहारा था, वह भी नहीं रहा. तुम्हारा आखिरी मनीआर्डर मिला तो वह तुम्हारी ही तेरहवीं पर खतम हो गया. उसकी स्कूल की फीस बंद हो गयी. संग के स्कूल जाते वह मुरझाया रहता घर पर. बहुत समझाया उसे—दो एक खेत और बेच दूंगी. दो खेत तो पहले ही बेच चुकी थी. उसने मेरी एक नहीं मानी. बोला—'इस तरह खेत कब तक बेचती रहोगी मां. असली पढ़ाई तो अब शुरू होगी. इस तरह सभी खेत बिक जायेंगे. अपना एक ठिया-ठिकाना भी नहीं बचेगा. अपनी थाती ही बेच देंगे तो हम कहीं के नहीं रहेंगे.' वह खिन्न हो गया. तुम तो जानते ही थे—जब वह छोटा था करीबर छह-सात बरस का कैसा चिढ़ाया करता था. मैं भी फौज में जाऊंगा तो दुश्मन को ठें-ठें उड़ा दूंगा और फिर बहुत बड़ा आफिसर बनूंगा. उसने अपनी जिद पूरी की."

"वह भी फौज में चला गया है?"

"हां, वह फौज में चला गया. मेरा सहारा बन गया वह. घर का खर्च भी ठीक-ठाक चलने लगा. मुझे अपने साथ परदेश ले गया. तुम कभी ले गये मुझे अपने साथ. कभी सोचा भी तुमने. भूलकर भी नहीं. कुछ दिन वह मुझे आगरा ले गया. तब उसकी बटालियन वहां थी—वहां उसने ताजमहल दिखाया. चली तो गयी मैं. वहां मगर अपना कोई नहीं. न बोली और न भाषा और न मेरी जान-पहचान का पड़ोस ही. मेरा मन नहीं लगा. चली आयी. इस माटी से तो मोह हटता ही नहीं. फिर ...."

"फिर ....!"

"और फिर वह नहीं माना. बोला, तू घर पर अकेली क्या करेगी मां. कुछ दिन के लिये संग चली चलो न. तुम्हारे साथ रहने से मुझे भी चिंता नहीं रहेगी और मैं ना-ना करते हुए भी संग चली गयी. वहां मन भी लग गया. अपने ही सब लोग मिल गये. आगरे की तरह वहां दिन भर भीतर ही बंद नहीं रहती थी. पड़ौसी कभी मेरे पास चले आते तो कभी मैं उनसे दिल बहला लेती. सोचती, अबकी अज्जो घर भेज देगा तो—बहू लाने की बातें चलाऊंगी. मगर ......"

"क्यों चुप हो गयी तुम? रो रही हो क्या? ये गरम-गरम आंसू ही ... न? मुझे कुछ भी नहीं दिख रहा है लीला! ढिबरी बाल नहीं रही हो तुम ... बताओ न फिर क्या हुआ?"

"क्या होना था जीवन! अब आगे न पूछो. मेरे करम ही फूटे ... सुबह-सुबह कलेवा करके चला था अज्जो घर से. दिन के खाने को ... गया. मैं उसकी बाट देखती रही. वह नहीं आया."

"क्या कह रही हो तुम?"

"तुम सोचोगे कि उसके साथ भी ऐसा ही हुआ. नहीं, स्वर्ण मंदिर ... कम पूरा कर दिया था उन्होंने. पूरा मंदिर खाली करवा दिया था. उस ... बताया कि दो एक रोज में सब कुछ ठीक हो जायेगा. कई उग्रवादी पकड़े ... गये हैं, कई मारे गये हैं. उसकी बटालियन के भी कई सिपाही मारे गये ... जब वह शाम होने पर घर लौटकर दिन की बात बताता तो मेरा ... ठौर छोड़ देता. कैसी निर्दयी भूमि है यह और उस दिन उसने ड्यूटी ... जाते हुए बताया था कि काम पूरा होने पर मुझे गांव छोड़ देगा. ब्लू स्टार ... ऑपरेशन करने वाली बटालियन यहां नहीं रहेगी शायद. दूसरी ... बटालियनें आयेंगी उनकी ठौर पर अचानक उसी दिन उग्रवादियों ने ... देश-द्रोहियों ने घात लगाकर हमला किया था. कई जवान मौके पर ... मारे गये. अपना अज्जो भी घायल हुआ था. उसे अस्पताल में भर्ती ... किया. मैं उसके साथ रही दो दिन तक. मेरा साथ रहना उसे भाया नहीं ... वह छोड़ गया मुझे सदा-सदा के लिये. मुझे अब न रोना आया और ... हंसना ही."

"यह सब तुमने अपनी आंखों से देखा? वह घायल अजीत ही था ... घायल मरने वाला हमारा ही बेटा था."

"हां, वह अजीत ही था. अपना अज्जो."

"ओह, यह सब तुम्हारे भाग्य का ही दोष है लीला! काश उस दिन ... भी मारा जाता तो ...."

"तुम्हारे मारे जाने का मुझे जरा भी दुःख नहीं हुआ. तुम्हारा लक्ष्य ... मुझे मालूम था कि लड़ाई में लड़ने वाला जवान अपने लिये नहीं ... जीवन के लिये नहीं बल्कि अपने देश के लिये लड़ता है. मगर ..

"यही अफसोस तो मुझे भी है कि वह अपनों की गोली का शिकार ... हुआ. दुश्मन की गोली सीने पर लगती. वह शहीद हो जाता लेकिन ... तो अब शहीद भी नहीं कहलायेगा. उससे बेहतर तो...."

"हां, वह शहीद भी नहीं कहलाया. उसके मारे जाने की एक ... निशानी आज तक नहीं मिली मुझे. हां, कभी मन में संदेह होता है ... को याद करती हूं—अजीत नहीं मरा. वह अब भी जीवित है. तब दुश्मन ... से लड़ाई नहीं हुई थी. उस दिन तो उस शहर के दो आदमियों में आ... तनातनी हुई थी. बात-बात में नौबत यहां तक आयेगी किसे मालूम ... दरअसल वह तो उनमें बीच-बचाव करने उन्हेंह समझाने गया था ... हम आपस में लड़ते-झगड़ते रहे तो लोग क्या कहेंगे? दुनिया ... कहेगी. दुनिया झगड़ने पर सवाल करेगी तो हम क्या जवाब देंगे. ऐसे ... अधिक दिनों तक चलता रहा तो दुनिया भी सवाल नहीं करेगी. दुनिया ... भी गूंगे की तरह टुकुर-टुकुर देखती रहेगी."

वे दोनों एक दूसरे का मुंह देखते रहे. एक चुप्पी उनके बीच फैल ... शायद दोनों ही अपने आप में अनजान होकर संयम और शालीनता ... दुनिया के नये सवाल का उत्तर ढूंढने लगे थे. दरवाजों के छेदों से ... घुसी चांदनी मुद्धिम पड़ने लगी थी. दोनों को दिशा खुलने का भास ... लीला बोली, "मैं कब से तुम्हारा इंतजार कर रही थी जीवन!"

जीवन बोला, "और मैं आ गया. मगर अपना अज्जो ...."

दोनों के बीच गहरी उदासी फैल गयी. नियति की निर्ममता ... झेलती हुई लीला को लगा कि उसे वह सब कुछ मिल चुका है जिसे ... तेरह वर्ष पहले खो चुकी थी. वह उठी. दरवाजा खोला. दिन चढ़ ... था.

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिड़िया और चील

तू जो चाहती है कर ... बस एक बार अपने पैरों पर खड़ी हो जा ... तेरे होने से घर में सब कुछ चहक उठता है ... चिड़िया तो आकाश में उड़ती हुई ही सबसे ज्यादा प्यारी और मोहक लगती है

□ **सुषम बेदी**

दो वर्ष पूर्व धारावाहिक के रूप में प्रकाशित व चर्चित 'हवन' सरीखे उपन्यास की लेखिका.
संप्रति : अध्यापन
संपर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी, डिपार्टमेंट ऑफ मिडिल ईस्ट लेंग्वेजेज एंड कल्चर, 607 कैंट हॉल, न्यूयार्क. एन.वाय.-110027

मम्मी ने पिंजरे का किवाड़ खोल दिया और इंतजार करने लगीं कि चिड़िया वापिस पिंजरे में लौट आये...लेकिन चिड़िया लाँग-जंप भरकर कभी रसोई की आल्मारी की छत पर जा बैठती तो कभी खाने की मेज पर. रसोई की खिड़की खुली थी ... मम्मी को डर हुआ कि चिड़िया कहीं बाहर न उड़ जाए ... वे पिंजरे के पास हथेली में दाना लिए उसे पुकारने लगीं ... सहसा उन्हें रीढ़ में झुरझुरी-सी महसूस हुई ... फरफराते पंखों पर मम्मी को कितनी ही तस्वीरें तिरती-सी दीखने लगीं—झालरोंवाली फ्रॉक में इठलाती नन्हीं गुड़िया, चटक रंगोंवाली बिकनी पहने बीच पर गीली रेत में लोटती चिड़िया...हां यही तो था उसका नाम. घर पर सब प्यार से उसे चिड़िया बुलाते थे. चिड़िया की ही तरह तो दाना चुगती थी वह .... चिड़िया की ही तरह चहचहाती थी .... तब पर नहीं निकले थे उसके कि फुर्राकर उड़ सके .... बस डाल से डाल तक फुदका करती थी. हिंदुस्तान छोड़ने से पहले इन डालियों की कमी भी नहीं थी .... लगातार एक गोद से दूसरी गोद ....

मम्मी उसे डाक्टर बनाना चाहती थीं, डैडी वकील. दोनों खुद भी डाक्टर थे...डैडी कार्डिओलोजिस्ट और मम्मी रेडियोलोजिस्ट. न पैसों की कमी थी न प्रोत्साहन की ... ढाई साल की उम्र से ही इस अमरीकी शहर की सबसे बढ़िया प्राइवेट नर्सरी स्कूल में प्लास्टिक के अक्षरों और नंबरों को हाथ से महसूसती वह जल्दी ही उन्हें पहचान कर सबको अपनी प्रतिभा से प्रभावित करने लग गयी थी. मम्मी जब भी पास होतीं ... बस यही सवाल पूछतीं ... स्कूल में क्या हुआ ... और स्कूल से लौटने पर ... बेबीसिटर क्या सिर्फ उसे टेलिविजन ही तो नहीं दिखाती रही? कुछ फुरसत होती तो मम्मी कहतीं, अच्छा वो वाली राईम सुना दो .... 'ट्विंकल ट्विंकल लिटल स्टार' ... मम्मी को खुश करने के लिए चिड़िया दुहराने लगती तो मम्मी जरूर कहती—"यू विल बी ए स्टार माई चाइल्ड?"

फिर चिड़िया को जैसे कुछ याद आ जाता और वह मचलकर कहती, "विल यू गो टू वर्क टुमारो?"

"यैस आई हैव टू ... नहीं तो तुम्हारे स्कूल की फ़ीस कौन देगा?"

"आई डोंट वांट टु गो टु स्कूल टुमारो!"

"दैट इज इंपासिबल ... यू हैव टु गो टु स्कूल!"

"नो ... वी गो टु पार्क."

"संडे, वी गो टु पार्क."

"नो ... टुडे!" चिड़िया जिद करती.

"लेकिन अब तो शाम हो गयी ... अंधेरे में पार्क नहीं जाते."

नर्सरी से किंडरगार्टन और फिर फर्स्ट ग्रेड में पहुंच जाती है चिड़िया एक दिन ...

"मॉम हू डू यू लव मोस्ट?"

मम्मी उसे प्यार से दुलारती है, "अपनी चिड़िया को!"

"नो SS दैट इज रांग ... मिस बर्गर सेज एवरीवन लव्ज हिमसेल्फ़ मोस्ट ... यू लव योअर सेल्फ़ मोस्ट ... नॉट मी ..." मम्मी अवाक् उसे देखती रहती है.

फिर एक दिन डिपार्टमेंटल स्टोर से बाहर निकलते ही वह पैसे मांगने लगती है ... कोई फटेहाल, बेघर गरीब इंसान पैसा मांगता है और चिड़िया उसे देना चाहती है ... मम्मी ने तब डांट लगा दी थी. "सब झूठमूठ की गरीबी है इस देश में ... ड्रग खाकर पड़े रहते हैं और फिर आने जाने वालों को तंग करते हैं ... रहने दे ... कुछ नहीं देना इसको!"

चिड़िया बड़ी हो रही है.

"माम, कैन आई हैल्प यू इन द किचन?"

"नहीं बिटिया ... वह सब मैं खुद संभाल लूंगी ... तू जा पढ़ ... अपना होम वर्क खत्म करले, फिर तेरी भरतनाट्यम की भी तो क्लास है आज ... उसका अभ्यास भी करना होगा ... वर्ना तेरी टीचर गुस्सा करेगी."

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक बार ममी बीमार पड़ जाती है ... चिड़िया कहती है, "मैं स्कूल नहीं जाऊंगी ... घर पर कौन देखभाल करेगा तुम्हारी!"

"जा जा, मेरे बहाने से स्कूल मिस करने की कोई ज़रूरत नहीं. ऐसी कोई बीमार नहीं कि मेरे लिए तुम पढ़ाई का हर्ज करो. पढ़ना तुम्हारे लिए र बसे ज्यादा इंपॅार्टेंट है!"

"बस पढ़ो ... पढ़ो ... पढ़ो ... इससे हटकर तुम कोई बात ही नहीं करती."

"और क्या ... इस देश में सफलता की यही एक कुंजी है. तुमको अपने अमरीकी साथियों से बेहतर ग्रेड्स लाने होंगे तभी तो तुम बढ़िया हार्व स्कूल औ.र फिर आईवी-लीग यूनिवर्सटी में जा सकोगी. एक बार किसी आईवी-लीग यूनिवर्सटी में पहुंच गयीं तब तो हमेशा के लिए जिंदगी बन गयी समझो ... तरक्की का हर रास्ता खुल जाता है, तुम–" सहसा ममी की कमर में तीखा दर्द उठा और वे बोलते-बोलते रुक गयीं ... चिड़िया ने ममी के चेहरे पर उभरती दर्द की छाप देखी ... पर वह रुकी नहीं, उसे स्कूल पहुंचना था.

उस दिन चिड़िया एक टेलिफोन नंबर रट रही थी .. ममी ने हैरान होकर पूछा तो वह पूरी कहानी सुनाने लगी, "मॉम, लिंडा की मॉम और डैड ने उसको इतना मारा कि वो मर ही गयी ... उसके मॉम-डैड को पुलिस पकड़कर ले गयी .... मिस जॉनसन कहती हैं कि ये टेलिफोन नंबर चाइल्ड एबयूज हैल्प का है ... अगर तुम्हारे मॉम या डैड तुमको मारें तो इस नंबर पर फोन कर देना ... फिर उनको भी पुलिस पकड़कर ले जायेगी.

"अब तुम मुझ पर गुस्सा करोगी न, तो मैं भी पुलिस को फोन कर दूंगी .... मॉम लिंडा अब कभी स्कूल नहीं आयेगी ... जब मर जाते हैं तो फिर कभी स्कूल नहीं जाते ..."

ममी को लगा था उनके हाथ से कुछ बहुत कीमती फिसला जा रहा है ... बहुत चाहकर भी जिसे पकड़े रखना नामुमकिन हो रहा है. कुछ घर से बाहर भी है जिस पर उनका अपना कोई बस नहीं ... क्या ये समाज उनको भी कोई धमकी दे रहा है?

खैर पढ़ते-पढ़ते चिड़िया शहर के नामी हाई-स्कूल में भी पहुंच गयी ... बड़ी मुश्किल से दाखला मिलता है इस स्कूल में ... हजारों परीक्षा देते हैं लेकिन दाखला दो-तीन सौ को ही मिलता है ... प्रतियोगिता से प्रताड़ित उन सैकड़ों छात्रों के बीच चिड़िया कुछ फिसलने लगी. छमाही रिपोर्ट कार्ड मिला तो ममी सकते की हालत में थी.

"यह बायौलोजी में तुझे 'सी' कैसे मिला?"

"आई थिंक, द टीचर डज नॉट लाइक मी!"

ममी उसके टीचर से मिली थीं ... बायौलोजी की क्लास सुबह साढ़े आठ बजे होती थी ... टीचर ने ममी से कहा था, "लगता है आपकी बेटी को पूरी नींद नहीं मिलती .. मेरी क्लास में कुछ सुस्त और सोयी-सोयी सी दीखती है."

ममी शाम होते ही चिड़िया के पीछे पड़ जाती, "टाईम मत वेस्ट कर ... जल्दी सोना है ... तुझे तो हमने डॉक्टर बनाना है ... बायौलोजी में पिछड़ गयी तो काम कैसे चलेगा!"

"पर ममी, मैं जल्दी नहीं सो सकती ... इंगलिश टीचर के लिए आज यह किताब पढ़कर बुक रिपोर्ट लिखनी है."

ममी को समझ नहीं आता क्या करे–कहे.

बायौलोजी में दुबारा नंबर कम आये तो ममी के हाथ-पैर ठंडे पड़ गये थे ... फिर चिड़िया से सलाह करके एक झूठ गढ़कर टीचर को बताया गया था कि टेस्टवाले दिन चिड़िया बीमार थी. डर के मारे टेस्ट कर दिया ... क्या अब दुबारा ले सकती है!

डैड के प्रोत्साहन पर चिड़िया ने स्कूल की स्पीच-टीम में भी हिस्सा लिया है ... वकील के लिए पब्लिक-स्पीकिंग बहुत जरूरी होती है न!

आज शाम चिड़िया को कल सुबह होनेवाले गणित के इम्तहान की

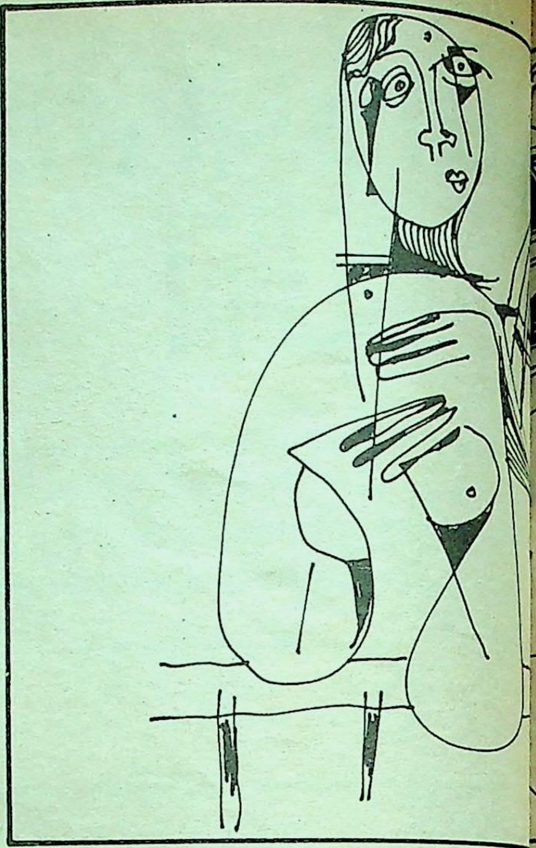

तयारी करनी है, दोपहर के स्पीच टूर्नामेंट के लिए स्पीच को रट्टा ल है ... रात एक बजे तक चिड़िया जगी रही ... सुबह बायौलोजी के घंटे में वह फिर नींद के झूले ले रही थी.

शाम को डैड ने पूछा था कि स्पीच कैसी रही तो चिड़िया पुरस्क जीत पाने के अपराध-भाव को एक उदासीनता से ढककर बोली, " डिड नॉट विन!"

"वॉय?"

यूं डैड ने विस्तार से जानने के लिए ऐसा पूछा था ... पर चिड़िय अपराध-भाव अब आक्रमण का आकार ले बैठा ... भड़ककर ब "वैल, यू कांट विन ऐवरीटाईम!"

चिड़िया को शांत करने के लिए डैड पूछ बैठे, "तुम्हारी स्पीच टॉपिक क्या था?"

"आइ डोंट टु रिपीट ...यू कैन रीड इट योअर सेल्फ." लिखित भ की कॉपी चिड़िया ने डैड को पकड़ा दी. डैड ने शीर्षक पढ़ा 'टीन सुएसाईड्स' यानि 'किशोर आत्महत्याएं' ... पहला पैराग्राफ इस था कि इस देश में हर साल करीब दस हजार टीन एजर्स आत्मह शिकार होते हैं जिसकी वजह ड्रग, इन्सिक्योरिटी, डिप्रैशन अकेलेपन के साथ-साथ खासकर आवासियों के बीच इसकी किशोरों पर उनके मां-बाप द्वारा बढ़ता हुआ दबाव है ... मां-बाप अपनी ख्वाहिशों और अधूरे सपनों को अपनी औलाद द्वारा करवाने के लिए इन किशोरों को बदहवास घोड़ों की तरह मार-मारकर चलवाए रखना चाहते हैं जिसका परिणाम बहुत होता है. भौंचक्के भाव से डैड ने बार-बार वे पंक्तियां पढ़ीं... विश्वास ही नहीं हो रहा था कि जो वे पढ़ रहे हैं, वह कुछ घंटे उनकी बेटी एक भाषण में कह चुकी है. सहसा वे जोर से फटक

"यह सब क्या बकवास लिखी है?"

अबकी चिड़िया शांत रही.

"बकवास नहीं डैड ... यूं भी इस स्पीच के तथ्य एक जाने

 CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

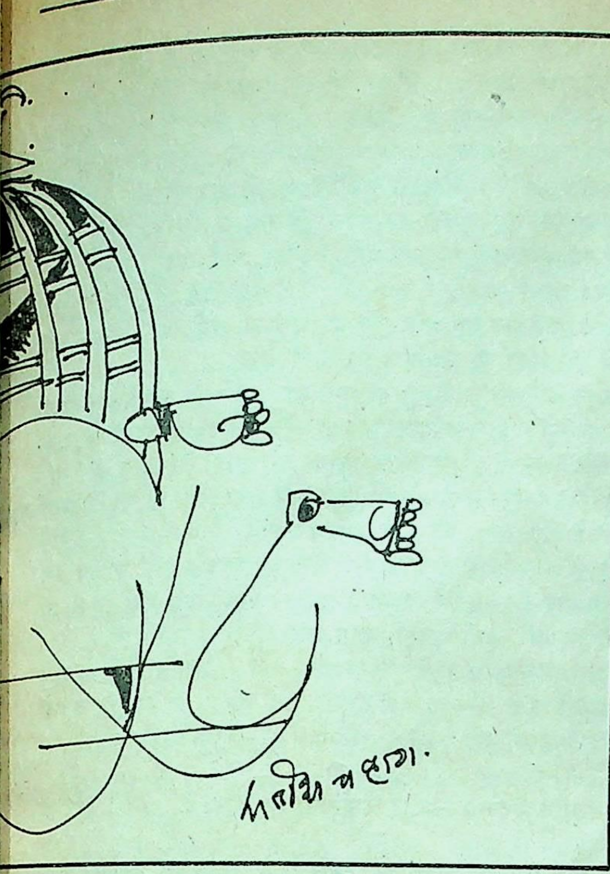

शोधकर्ता के हैं ... स्कूल में यूं सबको स्पीच पसंद आयी थी.''

सहसा डैड एकदम चुप हो गये. थोड़ी देर बाद पता नहीं क्या सोचते-सोचते बोले, ''क्या तुमको ऐसा लगता है कि हम तुझ पर प्रैशर डाल रहे हैं?''

''कभी-कभी .... पर यह मेरे अपने बारे में तो नहीं ... यह तो ...''

''खैर अब मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगा.''

लेकिन मम्मी को डैड के इस रुख़ पर गुस्सा आ गया था, ''रहने दो, तुम तो फालतू में घबरा जाते हो! हम ऐसे तो डॉक्टर नहीं बन गये ... दिन-रात पढ़ते थे ... घर के काम भी करते थे ... इससे तो मैं कुछ भी कराती ही नहीं ... कम से कम पढ़कर अपने-आप में कुछ बन जाना तो उसका फर्ज है! हम अपने फायदे की बात थोड़े ही करते हैं ... देखो, भरतनाट्यम भी छूट गया इसका ... किसी भी काम के लिए वक्त नहीं ... तो वक्त है किसलिए? ज्यादा ही दिमाग बिगाड़ देते हैं यहां बच्चों का ... मां-बाप न हुए मानो दुश्मन हों बच्चों के ... फालतू में मां-बाप में भी गिल्ट ...''

मन ही मन मम्मी डर भी गयीं थीं जैसे उन्हें कोई धमकी दे रहा हो.

लेकिन भूमिकाओं में अदला-बदली हो रही थी. मम्मी-डैडी कुछ भी चिड़िया का नापसंद कहते तो वह भड़क जाती, ''कम डाऊन ... आइ विल डू एट माइ ओन पसंद.''

बड़ी तेजी से मम्मी-डैडी उसकी जिंदगी में फालतू और बेकार की चीज होते जा रहे थे ... उसे मम्मी-डैडी की बातें, उनके अनुभव अपने संदर्भ में एकदम इररैलेवेंट लगने लगे ... उनमें एक और जीवन-शैली, एक और संस्कृति की बू थी जिसे चिड़िया अपने लिए बहुत पिछड़ा और हानिप्रद भी समझने लग गयी थी. मम्मी-डैडी के खिलाफ बोलते हुए उसकी आवाज में एक मसीहापन होता जैसे कि दुनिया भर के मां-बापों के खिलाफ आंदोलन में वह किशोरों का नेतृत्व कर रही हो. उसे विश्वास हो गया था कि उसके अपने और ज्यादातर मां-बाप बातें प्रजातंत्र की करते हैं पर होते तानाशाह हैं.

चिड़िया आईवी-लीग तो नहीं पर एक अच्छे कालेज में भी दाखिला पा गयी थी ... होड़ यहां भी कम नहीं थी.

उधर अब चिड़िया के पर भी तो निकलने लगे थे ... वह उड़ना चाहती थी ... घरौंदे से बाहर खुली हवा पर तैरना चाहती थी. ... एक सहपाठी उसे अपनी ओर खींच रहा था ... हवाओं पर साथ-साथ तैरने का आमंत्रण.

उसने सहपाठी से कहा, ''मम्मी को लड़कों से दोस्ती पसंद नहीं.''

सहपाठी बोला, ''मम्मी को कुछ बतलाने की जरूरत ही क्या है ...''

''लेकिन मम्मी को यूं मैं सब कुछ ...''

उसने बात काटकर पूछा, ''कितने साल की हो?''

''अठारह!''

''तो तुम वयस्क हो, अब मम्मी की जेल से रिहा हो जाओ.''

''लेकिन ...'' वह अभी भी घबरा रही थी.'' सहपाठी बोला, ''किसकी जिंदगी है यह?''

''मेरी.''

''तो मम्मी ने जीना है इसे या तुमने!''

घर पर चिड़िया ने मम्मी से कहा, ''मैं बोर्डिंग में रहना चाहती हूं''

''क्यों?''

''इंडिपेंडेंटली रहूंगी.'

''अभी से ऐसी बात ... पढ़ाई खत्म करले ... फिर शादी के बाद तो हमसे अलग रहना ही है.''

''लेकिन घर पर पढ़ाई ठीक से नहीं होती ...''

''यहां घर पर भला तुझे कौन डिस्टर्ब करता है?''

''क्या तुम समझ पाओगी कि अकेले रहने की भी एक जरूरत होती है ... कि मां-बाप के साथ रहकर बच्चे का पूरा विकास नहीं होता ... तुम्हारा जमाना, तुम्हारा देश बहुत फर्क था ... क्या तुम्हें भरोसा नहीं होता कि मेरी दुनिया तुमसे बहुत अलग हो सकती है ...''

मम्मी नहीं मानी. चिड़िया और मम्मी में आये दिन किचकिच होती. चिड़िया की सहन-शक्ति खत्म हो रही थी, ''आई डोंट अंडरस्टैंड ... आइ एम एन एडल्ट नाऊ ... तुम लोग मुझे मनमर्जी से क्यों नहीं रहने देते!''

''जब खुद कमाने लगोगी तो रह लेना मनमर्जी से ... कुछ ज्यादा ही पर निकल आये हैं तेरे!

''मेरे कालेज की फीस देती हो ... मुझे खाने-पहनने को देती हो इतना ही शौ है न तुम्हारा ... इसके लिए तुम मुझे गुलाम बनाकर नहीं रख सकतीं!''

मम्मी को जैसे लकवा मार गया हो, ''कैसे कह गयी तू ये बात ... बस यही नाता है तेरा-हमारा ... बस इसीलिए टिकी है तू यहां कि और कोई तेरे कालेज की फीस नहीं भरेगा ... हमारा प्यार ... हमारी कद्र ... हमारे साथ रहना अब गुलामी लगती है तुझे ...!''

अचानक चिड़िया डर गयी ... ये तो बतंगड़ बन गया ... मम्मी को नाराज करके वह जायेगी कहां ... अभी उसके परों में उड़ने की पूरी ताकत कहां है?

''सॉरी मॉम ... आइ डिड नॉट मीन टू हर्ट यू ... आइ लव यू!'' और मम्मी के जिगरे में फिर से वात्सल्य के दरिया बह निकले.

''देख बिटिया ... हम जो कहते हैं तेरे भले के लिए ही ... पहले पढ़-लिखकर अपने पैरों पर खड़ी हो जा, फिर ...''

''बस मॉम, हो गया न भाषण शुरू .. जब भी मैं तुमको 'आइ लव यू' कहती हूं ... तुम इतनी 'इंस्पायर्ड' हो जाती हो कि बस कभी न रुकने वाली 'स्पीच-रेन' शुरू हो जाती है!''

''चल-चल मजाक ज्यादा ही करना सीख गयी है!'' मम्मी बनावटी गुस्से से कहती है.

और उस शाम चिड़िया के लिए खास पकवान बनते हैं ... उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

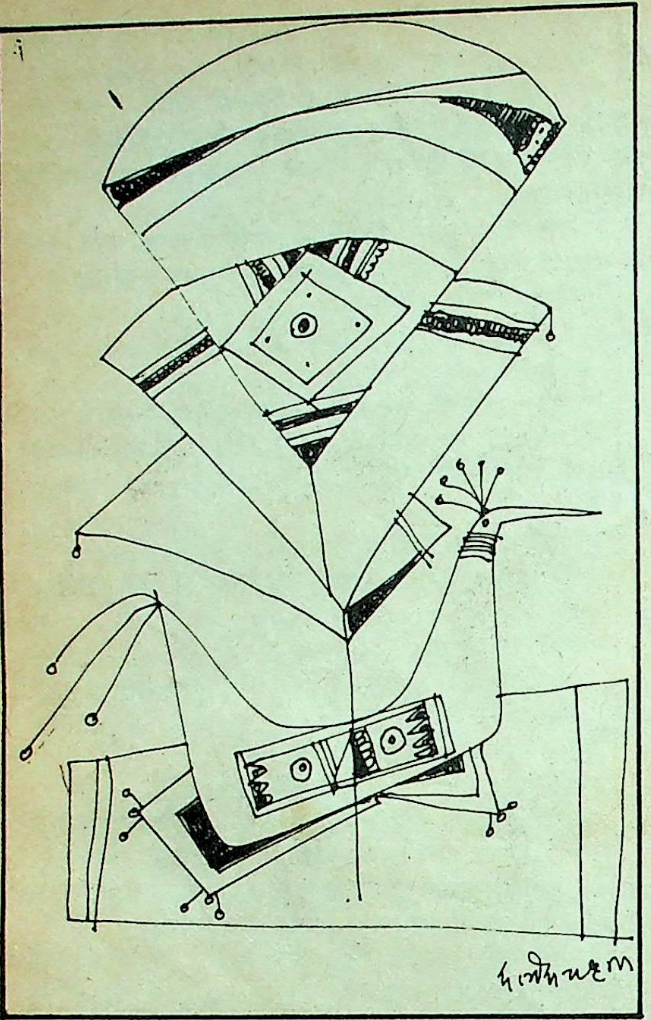

पॉकेट-अलाऊंस बढ़ा दिया जाता है और ममी उसे नया ड्रेस खरीदवाने के लिए ब्लूमिंगडेल्ज ले जाती है.

चिड़िया ने जब सारा किस्सा अपने सहपाठी से कहा तो वह बोला, "तुम्हारी ममी बहुत लोनली और इन्सिक्योर है ... तुमको खोने से डरती है ... इसी से तुम्हें तरह-तरह की रिश्वत देकर पास रखना चाहती है."

"तुम्हारा मतलब ..."

"दखो, मां-बाप का भी अपना स्वार्थ होता है ... वे अपना पोजैशन खोना नहीं चाहते ... इसलिए हर तरीके से बच्चों .. एडल्ट बच्चो को भी कब्जे में रखने की कोशिश रहती है उनकी ... अभी ये आसान भी है क्योंकि तुम उन पर पूरी तरह से डिपेंडेंट हो."

चिड़िया आत्म-दया से भर उठी, "कैसी एग्जिस्टेंस है हमारी ... कि अपने सरवाइक्ल तक के लिए दूसरों का मुंह जोहना पड़ता है ... मेरा उस घर में कतई मन नहीं लगता ... पर कहीं और रहने का ठिकाना भी तो नहीं ... पता नहीं कब छुटकारा होगा."

"हम दोनों अगर नौकरी कर लें तो कोई छोटी-सी जगह किराए पर लेकर साथ रह सकते हैं."

"और पढ़ाई?"

"पढ़ाई साथ-साथ चलती रहेगी."

और चिड़िया अपने घरौंदे से उड़कर आ गयी. एक छोटी-सी नौकरी कर ली. डाक्टर-वकील बनने के सपने तो यूं भी उसने नहीं उसके मॉम-डैड ने देखे थे ... खुद वह ऐसा कुछ करना चाहती थी जिससे एकदम मशहूर हो जाए ... पर अभी उसके दिमाग में साफ नहीं था कि क्या करने से वह फटाफट नाम और शोहरत पा सकती है. कभी-कभी वह फिल्म बनाने का सोचती ... पर अभी न पैसा था, न ट्रेनिंग, न ही स्पष्ट विचार या विषय ... लेकिन महत्वाकांक्षा थी और दम था ... भीतर एक अकुलाहट-सी बनी रहती ... उसका सहपाठी सादा जिंदगी जीने में विश्वास रखता था ... एकदम मिनिमलिस्ट ... कम से कम चीजों के साथ गुजारा करना ... मिट्टी से जुड़ी जिंदगी की ओर लौटना ... लेकिन इस नयी आत्मनिर्भर जिंदगी का अपना ही सुख था. चिड़िया पूरी तरह से अपनी नयी दुनिया में मस्त हो गयी. हर दिन आर्ट-हिस्ट्री के नये-नये कोर्स और किताबें पढ़ते हुए, नये-नये लोगों से मिलते और नये घर का दायित्व निबाहते हुए वह मॉम-डैड को भूल-सी गयी. कम से कम नये जीवन में उसे कहीं भी उनका संदर्भ नहीं दीखा.

एक बार ममी बहुत बीमार हो गयी थीं ... उनका ऑपरेशन होना था. डैड का फोन आया था पर चिड़िया को बहुत पढ़ाई करनी थी. तब ममी ने हिंदुस्तान से मौसी को बुलवाया था अपनी देखभाल के लिए.

मौसी ने दिन-रात ममी की तीमारदारी में लगा दिया था पर चिड़िया के रुख से वे बहुत खफा थीं ... वे ममी से कहतीं, "तुम तो अपनी बेटी से डरती हो ... कुछ कहती ही नहीं. मेरी बेटी इस तरह करे तो उसकी टांगें तोड़कर न धर दूं ... इतनी आजादी आखिर क्यों? कुछ मकसद भी तो होना चाहिए न!" ममी सुनती रहतीं और मौसी कहती जातीं.

"दरअससल तुमको बच्चे पालना आता नहीं ... यहां आजादी के बोल बोले, उसकी चर्चा और नारों से इतना आतंकित हो जाते हो कि बच्चों को अनुशासित भी नहीं करते ... तभी ये बच्चे न हिंदुस्तानी रह पाते हैं न अमरीकी."

ममी निरीह भाव से कहती, "जवानी का जोश है ... मेरी बात तो सुनती ही नहीं."

मौसी को और भी तरह मिल जाती, "वो कौन-सा जानवर होता है—हां, सर्पिणी अपने अंडों को खुद ही खा जाती है न ... पर कभी सुना है ऐसा शिशु जो अपने पैदा करनेवाले को खा डाले ...!"

"ये कैसी बात कह रही हो तुम ... चिड़िया भोली है ... उम्र के साथ मां-बाप के दिल को समझने-पहचानने लगेगी."

"और नहीं तो अपने उसी सहपाठी के साथ शादी कर ले जिसके साथ रह रही है. कम से कम तुम्हारी मुक्ति तो हो."

उधर कई सालों तक चलनेवाले अस्थायी रैन बसेरे में अब चिड़िया की सहपाठी से नोक-झोंक होने लगी. तंगी की उस जिंदगी से चिड़िया तंग आने लगी थी. दोनों एक-दूसरे से कुछ ऊबने-से भी लगे. शादी की बात उठी तो सहपाठी बोला, "आई बिलीव इन कमिटमेंट ऑफ हार्ट्स ... शादी तो आदमी तब करे जबकि सामाजिक स्वीकृति कुछ मायने रखती हो ...."

जल्द ही उसके दिल की कमिटमेंट किसी और से हो गयी.

मौसी के बहुत समझाने पर ममी—डैडी चिड़िया को छुट्टी मनाने के बहाने से हिंदुस्तान ले गये ... वहां उसे शादी लायक कई लड़के दिखाए गये. चिड़िया ने ममी से कहा, "ये कैसा खिलवाड़ कर रहे हो तुम लोग ... जिसे न जानती न बूझती उसके साथ जिंदगी बिताऊंगी .... क्या बेवकूफ समझ रखा है तुमने मुझे .... यह नहीं होने का!"

अमरीका लौटकर चिड़िया को नये सिरे से घोंसला खोजना था. अपनी छोटी-सी तनख्वाह में कोठरी का किराया, खाना-पीना और दूसरे खर्चे नहीं चला सकती थी. पहले सहपाठी के साथ सब कुछ शेयर करती थी ... अकेले बूते मुश्किल था. दूसरे सहसा सहपाठी से अलग होकर उसने यह भी महसूस किया कि वह ख्वामखाह अपने आपको मॉम-डैड के घर के वैभवपूर्ण माहौल से वंचित कर रही थी ... अकेले रहने से उसका स्तर बहुत ज्यादा गिर जाता था ... ऐसी हालत में तो उसकी महात्वाकांक्षा उसका फिल्म बनाने का सपना, कभी भी पूरा न होगा.

और चिड़िया अपना तिनका भर सामान लेकर ममी-डैडी के घर आ गयी ... हमेशा की तरह ममी ने अपना सब कुछ उसके लिए बिछा दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

था. चिड़िया को दिनों बाद बहुत चैन और राहत मिली.

लेकिन बहुत जल्द घर में तनाव शुरू हो गये. दरअसल चिड़िया वहां रहते हुए भी रह नहीं रही थी. बस रैन भर के बसेरे की ही बात थी. और अगर दिन में घर पर होती भी तो अपना कमरा बंद किए पड़ी रहती ... ममी के मिलनेवाले आते तो लाख मिन्नत करने पर मुश्किल से वह उन्हें 'हेलो' करने बाहर आती फिर मिनट भर में वापिस लौट किवाड़ बंद कर लेती. ज्यादातर उसे खाने की भी भूख नहीं होती थी. शायद डायटिंग के चक्कर में या फिर घरवालों से बचने का बहाना होता.

ममी अब उसे घर रखने के बजाय घर से निकालने के चक्कर में थी. दिन-रात एक ही सवाल, "तू शादी क्यों नहीं करती?"

चिड़िया सोचती है वह ममी-डैडी की अकेली संतान है ... इस घर पर उसी का हक है ... अगर वह यहीं रहती रहे तो गलत क्या है!

मौसी का दूसरा चक्कर लगा तो फिर ममी से कहने लगीं, "बहुत बिगाड़ा हुआ है तुमने लड़की को ... तीस से तो ऊपर हो गयी ... शादी कब करेगी?"

चिड़िया बिगड़ उठती है, "आपकी आंखों में भला मैं क्यों खटकती हूं ... आखिर मेरा घर है ... शादी करूं या न ... जब तक चाहूंगी यहीं रहूंगी ... आखिर मेरे मां-बाप हैं, आपको क्या!"

"मौसी भी गुस्से से बोली, "बड़े स्वार्थी बच्चे हैं आजकल के! मां-बाप पर अपने हक का तो खूब समझते हैं ... पर उनके लिए कुछ करने का कोई भाव नहीं ... बस जब मन आया चले आये, इस्तेमाल किया और फिर उड़ गये अपने ठिकाने को ... कम से कम मां-बाप की खुशी के लिए ही शादी कर लो ..."

अब के ममी बीच में बोल पड़ती हैं, "रहने दो शीला ... आखिर बच्ची है ... इसके घर आ जाने से रौनक आ जाती है वर्ना जिंदगी में अब ज्यादा है ही क्या?"

लेकिन उस रौनक के बीच अंदर ही अंदर ममी को कुछ सालता रहता है ... बत्तीस बरस की लड़की के घर लौटने पर वह खुश हों या रोयें ... वो यह भी जानती हैं कि चिड़िया किसी भी पल उड़ने की फिराक में है ... यह घर उसके लिए ऐसी सराय है जिसने उसे मुफ्त पनाह दी हुई है ... क्या सच में ममी का इस्तेमाल किया जा रहा है. चिड़िया को तो इस घर में किसी से कोई सरोकार नहीं ... सुबह-सुबह काम पर निकल जाती है और देर रात गये घर लौटती है .... पता नहीं मौसी के कहने का बुरा मान गयी या क्या ... अब तो किसी दोस्त या रिश्तेदार के आने पर 'हलो' कहने अपने कमरे से नीचे तक नहीं उतरती. घर सच में सराय था.

फिर ममी सोचती है ... सारी उम्र तो उसने चिड़िया को कोई जिम्मेदारी नहीं दी ... सिर्फ लाड़-प्यार दिया ... अब भला वह जिम्मेदारी निभाने के काबिल कैसे हो ... कभी दूसरों के लिए कुछ करने को कहा-सिखाया नहीं ... तब चिड़िया कैसे जाने ... और उदास मन से ममी ने मान लिया कि कुसूर उन्हीं का है.

अब चिड़िया को दाना-पानी की या आशियाने की फिक्र करने की जरूरत नहीं थी ... सारी सुख-सुविधाएं मुहय्या थीं ... अगर इनकी एवज में कभी ममी का उपदेश सुनना पड़ जाता तो वह कानों में वाकमैन के इयर-प्लग खोंसकर पॉप-संगीत सुनने लग जाती.

अब वह फिर से फिल्म बनाने के सपने देखने लगी ... नौकरी से अब कुछ पैसा बच रहा था पर वह काफी नहीं था ... और फिर ममी-डैडी का पैसा भी तो आखिर उनकी चिड़िया का ही है.

उसने ममी से कहा, "मैं फिल्म बनाना चाहती हूं ... पैसा लगाओगी?"

तो चिड़िया को अभी भी ममी-डैडी के सहारे की जरूरत थी. क्या ममी की परवरिश ने ही इतना कमजोर बना दिया कि चिड़िया अधूरी-सी फुदकन भरकर फिर से मां के घोंसले में आ गिरी है ... क्या अभी उड़ना नहीं सीखा उसने .. कभी सीख पाएगी ... जब पर निकलने को हुए थे तभी क्या ठीक से उड़ने देना चाहिए था ... कहां, क्या गलत हो गया उनसे ... चिड़िया की बांहों से जैसे नये पंख निकालना चाहते हुए ममी ने कहा, "तू जो चाहती है कर ... बस एक बार अपने पैरों पर खड़ी हो जा ... तेरे होने से घर में सब कुछ चहक उठता है ... पर दूर पहाड़ों से, हवाओं से और बादलों से फिसलकर आती चहचहाट शायद कहीं ज्यादा मीठी सुनाई पड़ती है ... चिड़िया तो आकाश में उड़ती हुई ही सबसे ज्यादा प्यारी और मोहक लगती है ..."

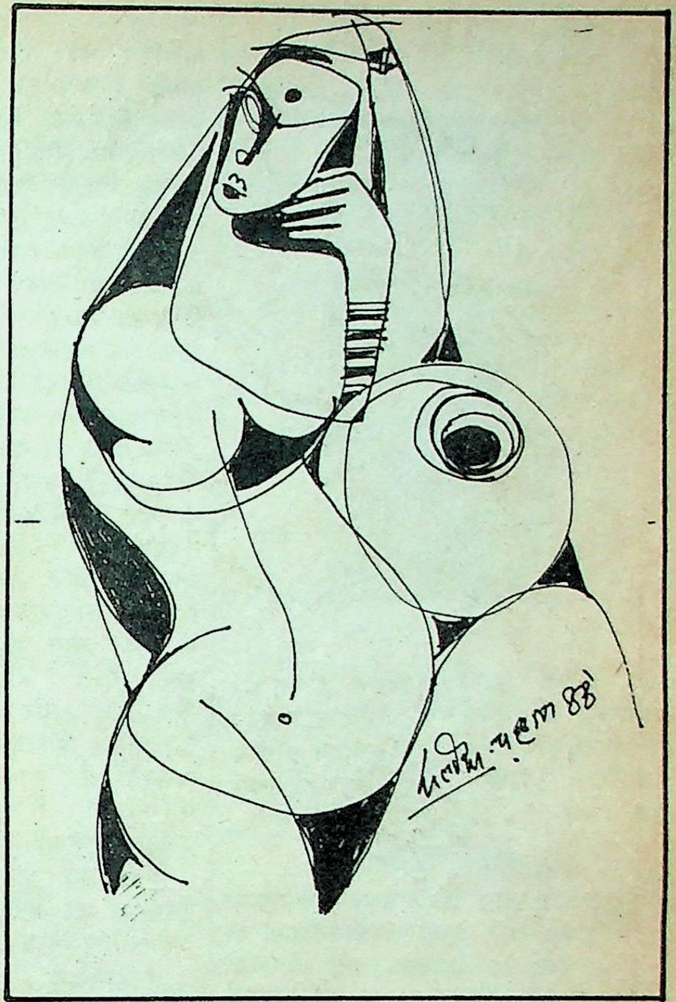

चिड़िया अभी ममी की पूरी बात समझ भी नहीं पायी थी कि अचानक ममी को कुछ ध्यान हो आया और वे बोलीं; "तेरे डैडी नाराज तो नहीं होंगे ... कहते हैं उसे मन मांगा देकर बिगाड़ रही हो."

चिड़िया कड़की, "ठीक है रख लो संभालकर ... चिता पर धरकर साथ ले जाना ... जीते जी मुझे 'डिपराईव' करके सुख मिलता है तो लो ... मैं भी तुम दोनों के मरने का इंतजार कर लूंगी ... मां-बाप भी पता नहीं किस बात के बदले लेते रहते हैं ... ट्रस्ट को पैसा दे देंगे अपनी औलाद को नहीं ... पैदा करने का यह मतलब तो नहीं की सारी उम्र उन्हें दबोचकर कोख में ही रख लिया जाए ...."

सहसा ममी ने देखा ... चिड़िया वहां नहीं थी ... शायद रसोई की खिड़की से बाहर चली गयी थी. ममी घबराकर बाहर की ओर दौड़ीं ... बाहर सिर्फ एक बड़ी चील आसमान को गिरफ्तार किए हुए थी ... ममी बदहवास चिड़िया को खोजने लगी. चिड़िया कहीं नहीं थी ... अचानक ममी को लगा उन्हें कुछ भ्रम-सा हो रहा है ... शायद चील वहां नहीं थी ... या शायद चील चिड़िया को उगल दे ... और आसमान पर आंखें टिकाए वे चिड़िया के लौटने का इंतजार करने लगीं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बंकिम के उपन्यास

□ राजकुमार सैनी

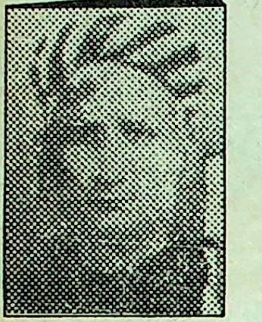

□ 'बंकिम समग्र' (बंकिम ग्रंथावली), संपादक: निहालचंद्र वर्मा. प्रकाशक: प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिंदी प्रचारक संस्थान, पी.बी. 1106, पिशाचमोचन, वाराणसी-221 001; मूल्य : 50.00 रु.

'बंकिम समग्र' में बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय की समग्र रचनाएं संकलित नहीं की गयीं, जैसा कि संकलन के शीर्षक से धोखा होता है. लेकिन इतना जरूर है कि इसके अंतर्गत बंकिम की समग्र औपन्यासिक कृतियां एक ही जिल्द में उपलब्ध हो गयी हैं. छोटे-बड़े कई उपन्यासों के अतिरिक्त उन्होंने 'कमलकांतेर दफ्तर', 'लोक रहस्य' जैसी गल्पेतर गद्य—रचनाएं भी कीं. इसके अलावा 'राममोहनूज व्हाइफ' शीर्षक से उन्होंने अंग्रेजी में भी एक उपन्यास लिखा था. यह अंग्रेजी उपन्यास उनकी सर्वप्रथम साहित्यिक कृति थी जो किशोरी चांद मित्र के 'इंडियन फील्ड' पत्र में 1864 ई. में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुई. 'कमलकांतेर दफ्तर' उनके व्यंग्य प्रधान निबंधों का संग्रह है जो एक हास्य-प्रधान रचनाकार के रूप में बंकिम की प्रतिभा और निर्बाध अभिव्यक्ति क्षमता का परिचायक है. बंकिम अपने समय के प्रमुख आलोचक और पत्रकार भी रहे हैं. आलोचक के **रूप में उन्होंने भारतीय साहित्य पर हावी हो** जाने वाले रीतिवाद की आलोचना की और यह अभिमत व्यक्त किया था कि मानव चरित्रों और भावों की असीम और अनंत प्रकार की संभावनाओं को केवल आठ या नौ रसों तक सीमित करना युक्तियुक्त नहीं है, इसी प्रकार मानव के सौंदर्य प्रेमी अंतश्चेतना को विविध रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है, इस अंतश्चेतना को अलंकारों, रीतियों तक बांध देना उचित नहीं है. बंकिम ने विद्यापति, बाल्मीकि, भवभूति और शेक्सपियर संबंधी अपनी समीक्षात्मक टिप्पणियों में एक परंपरा-प्रिय किंतु स्वच्छंदतावादी आलोचक का परिचय दिया. इसके साथ ही उन्होंने **धार्मिक और वैज्ञानिक विषयों पर भी कलम** चलायी.

तथापि वे एक महान उपन्यासकार के रूप में ही देश और विदेश में जाने जाते हैं. कुछ विचारकों की दृष्टि में रवींद्रनाथ ठाकुर और शरत चंद्र चटर्जी के आविर्भाव के बावजूद वे बंगला के महानतम उपन्यासकार हैं. बंकिम बंगला के ही नहीं भारत के महानतम **उपन्यासकारों में अपने ढंग के एक सबसे बड़े** किस्सागो हैं. इसमें दो राय नहीं कि वे पुनरूत्थानवादी और हिंदूवादी रुझानों से ग्रस्त हैं, इसके बावजूद वे हमारे सबसे बड़े राष्ट्रीय लेखकों में एक हैं. उनका 'आनंदमठ' उपन्यास राष्ट्रीयता का पर्याय समझा जाता है. आनंदमठ का संदेश-गीत बंदेमातरम् संसार भर के राष्ट्रीय गीतों में अद्वितीय माना गया है. इस गीत में प्रकृति और मातृभूमि एकाकार हो गयी हैं. इसके अतिरिक्त धार्मिक, पौराणिक निष्ठाओं और जातीय संस्कृति की राष्ट्रीय परिणति का इससे अधिक लोकप्रिय कलात्मक उदाहरण ढूंढे नहीं मिलता.

ऐतिहासिक कालखंडों की औपन्यासिक **पुनर्रचना कर अतीत को वर्तमान की तरह** नमूदार कर देने में उनका कोई सानी नहीं है. **'दुर्गेशनंदिनी', 'राजसिंह' और 'सीताराम'** जैसे उपन्यासों की रचना में इतिहास, किंवदंतियों, लोक-कथाओं और कल्पना का मिलाजुला रोमांस है. पाठक के लिए उनका औपन्यासिक संसार इतिहास की दुनिया से अधिक विश्वसनीय हो उठा है. उनके कलात्मक तर्क और उनकी कलात्मक परिणतियों से पाठक इस कदर भावाभिभूत हो उठता है कि वह ऐतिहासिक तर्क और तत्संबंधी ऐतिहासिक परिहासिक परिणतियों को ताक पर रख देता है और बंकिम का कथा संसार ही उसके लिए **अधिक यथार्थ हो उठता है. 'दुर्गेशनंदिनी'** में तिलोत्मा और बिमला, 'मृणालिनी' में मनोरमा और मृणालिनी, 'चंद्रशेखर' में लवंगलता और शैवालिनी... 'सीताराम' में श्री और जयंती—ऐसे नारी चरित्र हैं जो ऐतिहासिक चरित्रों से अधिक विश्वसनीय और वास्तविक प्रतीत होते हैं. इसका श्रेय बंकिम की औपन्यासिक कला को जाता है. तथापि बंकिम के अधिकांश नारी चरित्र पतिव्रता और पतिपरायण नारियों की चारित्रिक उपलब्धियों और सीमाओं का अतिक्रमण नहीं कर पाते, इन चरित्रों में अगर कोई अपवाद है तो वह मात्र शैवालिनी का चरित्र है. 'शैवालिनी' पुरुष प्रधान समाज की पतिव्रता नारियों-सी अधीनस्थ नहीं है, वह अपनी स्वायत्तता का बार-बार परिचय देती है तथापि वह शरत की कमल ('शेष प्रश्न'—उपन्यास) जैसी स्वतंत्र और स्वयं प्रभुसत्ता संपन्न नारी की तुलना में सांस्कृतिक और सामाजिक पिछड़ेपन का आभास देती है. ऐसा होना स्वाभाविक भी है. बंकिम के समय में अगर शरत लिख रहे होते तो शायद उनके लिए भी उस समय कमल जैसे नारी चरित्र की सृष्टि करना संभव नहीं होता.

समसामयिक समाज को केंद्र मानकर लिखे गये उपन्यासों में 'विषवृक्ष', 'इंदिरा', 'राधारानी', 'रजनी', 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' और 'देवी चौधरानी' उल्लेखनीय हैं. 'इंदिरा' और 'राधारानी' लघु-उपन्यास हैं जबकि 'रजनी' लघु उपन्यास होते हुए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसमें नेत्रहीन किंतु भावमयी युवती की मार्मिक व्यथा-कथा है जो अंततः सुखांत गाथा का रूप ले लेती है. इनमें भी 'विषवृक्ष' और 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाएं हैं. यद्यपि समसामयिक समाज के चित्रण में बदलते हुए नैतिक मूल्यों के अंतर्विरोध और टकराव को बंकिम भरसक जागरूकता और ईमानदारी के साथ प्रतिध्वनित करते हैं तथापि उनके नारी-चरित्र नैतिकता संबंधी सामंती दहलीज को लांघ नहीं पाते. 'विषवृक्ष' की कुंद, 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' की रोहिणी उस दहलीज को लांघती भी हैं. अपने 'पाप' के प्रायश्चित अथवा दंड के रूप मे दारुण और त्रासद अंत का शिकार होती हैं. बंकिम का महत्व इस बात में है कि वे उस युग में भी आधुनिक कथा रचते हैं, ऐसी कथा जो अत्यंत जटिल और घुमावदार पेंचों को खोलती चलती है. वे पथभ्रष्ट मनुष्यों का सहानुभूतिपूर्वक चित्रण करते हैं और 'सामाजिक बंधनों' तथा 'नियति के विधानों' की परोक्ष ढंग से आलोचना करते हैं. बंकिम अपने समाज की नारी की मुक्ति के लिए शरत की तरह आक्रामक नहीं हैं लेकिन नारी की जिजीविषा के प्रति वे उदासीन भी नहीं हैं.

"छिः छिः! कुंदनंदिनी! तुम चोर के स्पर्श से कांपी क्यों? छिः छिः! कुंदनंदिनी! चोर की बात सुनकर तुम्हारे शरीर में रोमांच क्यों हो उठा? कुंदनंदिनी! देखो, पुष्करिणी का पानी साफ, सुशीतल और सुवासित है. वायु के हिल्लोल से उसमें तारे कांपते हैं. डूबेगी? डूब क्यों नहीं मरती? पर कुंदनंदिनी मरना नहीं चाहती!"

(विषवृक्ष, बंकिम समग्र : पृष्ठ—264)

नारी संबंधी एकनिष्ठता के पीछे पुरुष का जो स्वार्थ छिपा है, उसे भी वे उद्घाटित करने से नहीं चूकते. नगेंद्र जब कुंद पर आसक्त है और सूर्यमुखी जैसी आदर्श पत्नी के होते हुए भी कुंद से विवाह करने पर उतारू हो जाता है. अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहनोई श्रीशचंद्र के व्यंग्य भरे पत्र के उत्तर में अपनी सफाई देते हुए, वह जो जवाब भेजता है, उसके एक अंश को उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा :–

"तुम कहोगे कि यदि एक पुरुष की दो स्त्रियां हो सकती हैं, तब एक स्त्री को दो स्वामी क्यों न हों. इसका जवाब यह है कि एक स्त्री के दो स्वामी होने से बहुत अनिष्ट होने की संभावना है, एक पुरुष के दो विवाह से इसकी संभावना नहीं. एक स्त्री के दो स्वामी होने से संतान का पितृनिरूपण नहीं होता. पिता पालनकर्ता है—इसके अनिश्चय से सामाजिक विशृंखलता उत्पन्न हो सकती है. किंतु पुरुष के दो विवाह से संतान की माता का अनिश्चय नहीं हो सकता."

(विषवृक्ष - बंकिम समग्र : पृष्ठ—264)

नगेंद्र के उपर्युक्त तर्क का बखिया उधेड़ते हुए, बंकिम उपन्यास के अंत में यह चरितार्थ करते हैं कि एक आदर्श पत्नी के रहते पुरुष का दूसरा विवाह करना भी अनिष्ट का कारण बनता है. बंकिम पुरुषों और स्त्रियों के अलग-अलग नैतिकता के दोहरे मानदंडों को नकारते हैं. यदि एकनिष्ठता स्त्री के लिए आदर्श है तो वही एकनिष्ठता पुरुष के लिए भी जरूरी है. सामंती मूल्यों की दहलीज लांघकर ही वे ऐसा उपन्यास लिख पाते हैं. रूप और अंतर्वस्तु-दोनों की दृष्टि से बंकिम की यह अत्यंत जटिल औपन्यासिक कृति है जिसकी संरचना पुराने उपन्यासों की-सी सरलीकृत नहीं है. यह एक आधुनिक उपन्यास जैसी समकालीन बुनावट का पूर्वाभास देता है. 'कृष्णकांत का वसीयतनामा' भी लगभग इसी कोटि की रचना है. इस उपन्यास में वक्रोक्तियों और निम्न प्रधान शैली में घटनाओं का वर्णन है. इस उपन्यास में मानवीय आवेगों, वासना और यातना की कथा है. यहां रचनाकार नारी के अवैध संबंधों के चित्रण में परंपरागत संकोच को तिलांजलि देकर ऐसी आधुनिक दृष्टि का परिचय देता है जो स्त्री-पुरुष संबंधों में विवाह द्वारा लादी गयी नैतिकता की तुलना में परस्पर स्नेह निष्ठा को तरजीह देती है. रोहिणी का चरित्र आगे चलकर शरत और रवींद्र के नारी पात्रों के लिए एक जमीन तैयार कर देता है.

'युगलांगुरीय' शीर्षक रचना उपन्यास नहीं बन पायी. इसे उपन्यास या उपन्यासिका भी कहा जा सकता है. यह मात्र एक कहानी है. 'आनंदमठ' और 'देवी चौधरानी' वारेन हेस्टिंग्ज के शासन से पूर्व मुस्लिम शासन काल के अंतिम चरण के दौरान व्याप्त अराजकता के दिनों की परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास है. 'आनंदमठ' की कथा का आधार 'संन्यासियों का विद्रोह' है जो एक ऐतिहासिक घटना है. 'देवी चौधरानी' की कथा का आधार हंटर द्वारा 'स्टैटिस्टिकल अकाउंट्स ऑफ बंगाल' में वर्णित भवानी पाठक और देवी चौधरी नामक 'डाकुओं' की गतिविधियां हैं. दोनों उपन्यासों में, ऐतिहासिक विवरण कथा के लिए जमीन देते हैं. इस जमीन पर बंकिम अपनी औपन्यासिक प्रतिभा, राष्ट्रीय अभिरुचि और सामाजिक अंतर्दृष्टि का क्रांतिकारी और सर्जनात्मक उपयोग करते हुए किस्सागोई का ऐसा ताना-बाना रचते हैं कि पाठक प्रभावित हुए बिना नहीं रहता. ऐतिहासिक रोमांस समकालीन यथार्थ और औपन्यासिक कल्पना का परिपाक इन दोनों उपन्यासों की विशेषता है. 'आनंदमठ' के सत्यानंद, धीरानंद, शांति, जीवानंद और भावानंद तथा 'देवी चौधरानी' के भवानी पाठक और देवी चौधरी जैसे इतने सजीव हो उठे हैं कि वे ऐतिहासिक पुरुष और स्त्रियों से भी ज्यादा वास्तविक लगने लगते हैं. क्रांतिकारिता और राष्ट्रीयता की दृष्टि से ये चरित्र पाठकों को गहरे स्तर पर आंदोलित करते हैं. ऐसे चरित्रों के स्रष्टा होने के कारण बंकिम राष्ट्रीय क्रांतिकारी चेतना के एक प्रतिनिधि साहित्य-स्रष्टा कहलाए.

'कपाल कुंडला' बंकिम का एक बिल्कुल अलग ढंग का उपन्यास है. आजकल हम साहित्य में फंतासी के प्रयोग की अक्सर चर्चा करते हैं. यदि इसी दृष्टि से देखें तो भारतीय आधुनिक कथा साहित्य में 'कपाल कुंडला' के जोड़ की कम फंतासियां लिखी गयी हैं. इस संबंध में बंकिम के छोटे भाई पूर्णचंद्र चट्टोपाध्याय ने लिखा है :–

"जब बंकिमचंद्र नेगुंआ (इस समय के कांथी) महकमा में थे, तब एक संन्यासी कापालिक से उनका संपर्क हुआ था. बीच-बीच में वह निशीथकला में आकर उनसे मिलता था. बंकिम चंद्र उसे तरह-तरह से डराने की कोशिश करते थे, तो भी वह कभी-कभी आ जाया करता था. जब वे समुद्रतट पर चांदपुर के बंगले में रहते थे, तब यह संन्यासी प्रतिदिन आधी रात के वक्त आता था. चांदपुर से कुछ दूर समुद्र के किनारे घना जंगल था. बंकिमचंद्र की धारणा थी कि वह संन्यासी समुद्रतीर के उसी जंगल में रहता है."

(बंकिम समग्र, पृष्ठ-982)

इसी संन्यासी से प्राप्त किन्हीं विवरणों के आधार पर अपनी कल्पनाशक्ति द्वारा बंकिम ने 'कपालकुंडला' के अद्भुत कथा-लोक की सृष्टि की.

कापालिक द्वारा प्रतिपालित 'समुद्रतट विहारिणी बनचारिणी' षोडसी के अभूतपूर्व रोमांस की इस कथा में कई तत्व घुलमिल गये हैं. 'कपाल कुंडला' एक गद्य-काव्य भी है, फंतासी भी और रोमांस भी. उपन्यास में नाटकीय प्रभाव भी प्रचुर है. उपन्यास में एक ओर नारी 'मोती बीबी' का चरित्र 'गृहस्थ घर की कुल त्यागिनी वधू' की कहानी पर आधारित है. 'कपाल कुंडला' नामक कन्या इस उपन्यास में साक्षात प्रकृति के ही मानवीकृत रूप में उपस्थित होने का आभास देती है. लेखक ने उसे 'अपूर्व माधुर्यमय प्रकृति की मोहिनी मूर्ति' के रूप में अंकित किया है. बंकिम श्री संजीव चंद्र की धारणा से सहमत नहीं थे कि संन्यासी का प्रभाव एकदम मिट सकता है. इसलिए इस उपन्यास के अंत में हम देखते हैं कि अपने प्रतिपालक पिता कापालिक के संस्कारों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो पाती.

बंकिम अपने उपन्यासों में साहित्य संबंधी सभी सर्जनात्मक तत्वों का कलात्मक इस्तेमाल करते हैं. गीति तत्व, नाटकीयता, काव्य-तत्व, औपन्यासिकता, रूपवर्णन, प्रकृति-वर्णन, बिंबविधान, शब्द-चित्र आदि जैसे सभी तरह के प्रयोगों द्वारा वे अपने उपन्यासों में साहित्यिक-गुणवत्ता भर देते हैं. यहां तक कि तिलस्म से लेकर जादुई यथार्थवाद तक की पुरानी और नयी शैलियों के पूर्वरूप यहां उपलब्ध हैं. 'कपाल कुंडला' उपन्यास के अधिकांश परिच्छेदों के प्रारंभ में, वे कालिदास, माइकेल मधुसूदन दत्त, शेक्सपियर, कीट्स, बायरन जैसे महाकवियों तथा अन्य कवियों के प्रासंगिक उद्धरण देते हुए एक तरह के विशिष्ट कलात्मक प्रभाव की सृष्टि करते हैं. यदि प्राचीन काव्यशास्त्र की शैली में कहें तो कह सकते हैं कि 'कपाल कुंडला' अद्भुत रस का श्रेष्ठ काव्य है. यदि आधुनिक शैली में कहें तो यह एक जादुई यथार्थवाद की विचित्र फंतासी है. उनके दूसरे उपन्यास 'देवी चौधरानी' के बारे में भी पूर्णतः नहीं तो अंशतः यही बात लागू होती है. असल में उनकी अधिकांश कृतियों पर कमोवेश रूप में यह मंतव्य चरितार्थ होता है.

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बंकिम पराधीन भारत की राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना के अपने समय के श्रेष्ठतम साहित्यकारों में एक थे. कला की दृष्टि से वे एक उच्च कोटि के कलाकार के यद्यपि उनकी हिंदूवादी अवधारणा चंद्रमा के माथे पर कलंक बिंदिया की तरह लगती है तथापि रवींद्र और शरत की तुलना में वे कोई छोटे लेखक नहीं हैं. प्रेम-प्रसंगों और युद्ध-प्रसंगों की मिश्रित गाथाएं रचने में वे विलक्षण प्रतिभा का परिचय देते हैं.

भारत के एक अत्यंत महत्वपूर्ण लेखक के लगभग सभी उपन्यासों को सस्ते दामों पर एक ही जिल्द में उपलब्ध कराने के लिए प्रकाशक और संपादक दोनों साधुवाद के पात्र हैं. 'जीवन परिचय और रचनाएं' के रूप में जो परिशिष्ट है; वह संक्षिप्त होते हुए भी स्वतः पूर्ण है. फिर भी इतने बड़े लेखक के बारे में जितना लिखा जाए, कम है. आशा है कि लगभग एक हजार पृष्ठों का यह ग्रंथ हिंदी पाठकों में लोकप्रिय होगा. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुरुआत का श्रेय

खेल खिलाड़ी विश्वकोश : योगराज थानी, प्रकाशक : राजपाल एंड संज 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली-100006, मूल्य-80 रुपये

हिंदी में गंभीर खेल पत्र-कारिता की शुरुआत करने वालों में योगराज थानी का नाम प्रमुखता से आता है. पिछले 25 साल से अधिक समय से वे खेलों पर लिख रहे हैं. उनकी नयी पुस्तक **"खेल खिलाड़ी विश्वकोश"** भी हिंदी में अपनी तरह की पहली पुस्तक है. यह खेल प्रेमियों तथा खेल पर लिखने वालों के लिए एक जरूरी पुस्तक भी है. देश विदेश के कई जाने माने और कई अनजाने या कमजाने खिलाड़ियों का परिचय इसमें मिल जायेगा. कुछ ऐसे आंकडे मिल जायेंगे जिनकी तलाश में आपको कई दिन लग सकते थे. खेलों के कई ऐसे संदर्भ यहां मिलेंगे जिन्हें अन्यथा कहीं खोज पाना कठिन होता. ओलिंपिक खेलों में अब तक के भारतीय प्रदर्शन, अर्जुन पुरस्कार प्राप्त खिलाड़ियों की पूरी सूची, क्रिकेट हॉकी, फुटबाल से लेकर बेसबॉल, ब्रिज तक के खेलों की जानकारी को समाहित करने की कोशिश इस डिमाई आकार की 383 पृष्ठों की पुस्तक में की गयी है.

पर श्री थानी को अपनी सीमाओं का पता भी था. भूमिका में वे कहते हैं : **"देश के खेल प्रेमी पाठकों को इस पुस्तक में सब कुछ मिल जायेगा, यह दावा करना तो एक प्रकार का दंभ होगा. हां, इतनी बात विश्वास के साथ कही जा सकती है कि इस एक पुस्तक में आपको बहुत कुछ मिल जायेगा."** इसके बाद थानी जी अपनी खेल भावना का परिचय देते हुए आगे कहते हैं:**" यदि इसमें कहीं अधूरापन जान पड़े तो आपकी रचनात्मक आलोचना का स्वागत होगा."**

जब थानी जी यह अंतिम वाक्य लिखते हैं तो ऐसा नहीं है कि वे अपनी कमजोरियों से स्वयं परिचित नहीं हैं. वे जानते हैं कि एक खास तरह की लापरवाही उनमें है.-'चलने दो, बाद में देख लेंगे' वाला भाव गलतियां भी करा बैठता है, मसलन इसी पुस्तक में शतरंज के भारतीय ग्रेंड मास्टर विश्वनाथन आनंद के बारे में जो टिप्पणी है उसमें उनका परिचय न होकर उस समाचार की कटिंग है जो उन्हें ग्रेंड मास्टर का खिताब मिलने के बाद छपा था. सत्तर के दशक की मशहूर एथलीट अनुसुइया बाई के बारे में लिखा है. **"पिछले दो वर्षों में वह चार बार 100 मीटर की दूरी को 12 सेकेंड में पार कर चुकी हैं."** जबकि दस वर्ष पूर्व वह खेलों की दुनिया से अलग हो चुकी हैं. जाहिर है थानीजी ने उन दिनों अनुसुइया बाई पर जो लिखा था, उसे बिना किसी प्रकार का संशोधन किये, जस का तस छाप दिया है, विजय अमृतराज तथा डेविस कप पर लिखते हुए कहीं भी थानी जी 1988 में भारत के डेविस कप फाइनल में पहुंचने का उल्लेख नहीं करते. जबकि यह पुस्तक 1989 में छपी.

थानी जी से मैं निवेदन करूंगा कि इस पुस्तक का दूसरा संस्करण जब प्रेस में जाये तो वे एक बार बैठकर सारे विवरणों तथा रिकार्डों को अप-टू-डेट कर दें और तभी पुस्तक की पांडुलिपि प्रकाशक को दें.

अंत में मैं एक बात अवश्य कहना चाहूंगा कि यह पुस्तक इन सारी कमजोरियों के बावजूद एक जरूरी पुस्तक है. हो सकता है इस पुस्तक से प्रेरणा पाकर कुछ अन्य विश्वकोश प्रकाशित हों, हो सकता है वे इससे अधिक परिपूर्ण हों, पर इसकी शुरुआत करने का श्रेय थानी जी से और कोई नहीं छीन सकता.

पत्रिकाएं

मनोरमा ईयर बुक : 1990

अहिंदी प्रदेश केरल से हिंदी में 'ईयर बुक' का प्रकाशन जब पिछले वर्ष प्रारंभ हुआ तब जिज्ञासु पाठकों को खासी राहत मिली होगी. इस वर्ष भी कोट्टयम से प्रकाशित 'मनोरमा ईयर बुक' का वर्ष 1990 का अंक अपने आप में खासा महत्वपूर्ण है. चार खंडों में विभाजित इस ईयर बुक की सामग्री विज्ञान और प्रौद्योगिकी, विश्व-परिदृश्य, भारत एवं प्रांत तथा खेल जगत को संभवत: हिंदी में पहली बार इतने बेहतर ढंग से प्रस्तुत कर सकी है. 1989 का साल विश्व स्तर पर घटना-प्रधान रहा. पूर्वी यूरोप में हुए बड़े परिवर्तन ने तो समूचे विश्व को ही प्रभावित किया है. इस संदर्भ में ओ.एन. मेहरोत्रा का लेख 'ढहता हुआ साम्यवादी सोवियत- यूरोपियन साम्राज्य' महत्वपूर्ण कहा जा सकता है. नवीं लोकसभा के चुनावों पर ए.के. रामाकृष्णन का लेख विषय को देखते हुए पूरे धैर्य व संतुलन का प्रतीक बन पड़ा है.

आवरण कथा–'शाश्वत वर्तमान का बोध' अपने प्रारंभ से ही पठनीय पकड़ लिए चली है. 'दूरदर्शन पर धर्म ग्रंथों के प्रसारण और आधुनिक समाज पर इसका प्रभाव' को आधार बनाकर लिखी गयी यह आवरण-कथा बेबाकी के साथ सवाल उठाती है कि क्यों हम एक ही व्यक्ति के सीमित दृष्टिकोण से बंधने को विवश हैं? आलेखकार मनमोहन चड्डा स्पष्ट रूप से कहते दिखाई पड़ते हैं कि कहने को तो हमारे 'रामायण' व 'महाभारत' टेलीसीरियलों का आधार हमारे प्राचीन महाकाव्य हैं लेकिन ये दोनों सीरियल हमारे इन धर्मग्रंथों के साथ न्याय नहीं करते. वे कहते हैं–यदि इन सीरियलों को उत्तमता की कसौटी पर परखा जाये तब ये न्यूनतम शर्तों को भी पूरा नहीं कर पाते. अंत में उनका इस रूप में सचेत करना तो उल्लेखनीय है ही कि हम इन सीरियलों को ही इन ग्रंथों का पर्याय न मान लें. माध्यम ही संदेश है कि मनोवृत्ति को हावी न होने दें और इस माध्यम का लाभ उठाकर इन ग्रंथों के नये-नये रूपाकारों की खोज करें.

आंकड़ों की बड़ी दुनिया के बीच कहीं-कहीं ऐसी प्रेरक सामग्री भी इस 'ईयर बुक' में मिलती है कि मन खुश हो जाता है. 'कोट्टयम: साक्षरता का कीर्तिमान' ऐसी ही सामग्री है. देश में कोट्टयम को अकेला ऐसा जिला यहां बताया गया है जो 100% साक्षर है. पूरा विश्व जब 1990 के साल में 'साक्षरता वर्ष' मना रहा है, भारत के एक जिले को यह गौरव प्राप्त होना खुशी की बात है. बावजूद इसके यहां यह सूचना भी है कि जब विश्व भर के आंकड़े हमारे सामने होंगे तब कुल मिलाकर भारत का स्थान कहां होगा यह अनुमान भी अपमानजनक ही है. मजे की बात तो यह है कि यहां बड़ी जनसंख्या के होने का कोई बहाना भी चलने वाला नहीं है, चूंकि चीन जैसा देश भी इस दिशा में भारत से कहीं आगे है. और सभी जानते हैं कि चीन की जनसंख्या 1102,200,000 है. कुल मिलाकर यह ईयर बुक हमारी जानकारी बढ़ाती है, अपनी स्थिति पर खुश होने और अफसोस करने का अवसर जुटाती है, और संभलकर चलने को आगाह करती है.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

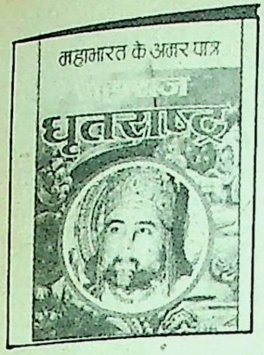

महाराज धृतराष्ट्र

महाभारत के पात्रों को औपन्यासिक शैली में जीवंत करने का सार्थक प्रयास है. शाश्वत कथामाला के अंतर्गत प्रकाशित महाभारत के अमर पात्र महाराज धृतराष्ट्र का चरित्र अनेक विरोधाभासों से परिपूर्ण है. अपने अंधेपन के कारण कौरवों में ज्येष्ठ होते हुए भी उन्हें राज गद्दी से वंचित किया गया. अनुज पांडव के संन्यास और निधन के बाद सत्ता उनके हाथ में आयी तो वे अनेक प्रकार की महत्वाकांक्षाओं से भर गये. अपने पुत्र के अन्याय को जानते हुए भी वे उससे जुड़े रहे और उसे किसी भी प्रकार अन्याय के मार्ग से न हटा सके. इस प्रकार वे महाभारत के सर्वाधिक दयनीय पात्र हैं.

उपन्यास की तरह रोचक तथा महाभारत की मूल कथा एवं भावभूमि से परिपूर्ण यह जीवन-गाथा पाठकों को धृतराष्ट्र के दुविधाग्रस्त चरित्र को सजगता के साथ बताने में पूरी तरह समर्थ एवं पठनीय है. डा. विनय ने इस सीरीज में यह आकर्षण अलग तरह से बनाया है.

गोपाल कृष्ण गोखले

स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए भारत माता के जिन सपूतों ने अपना जीवन अर्पित कर दिया, उन्हीं महान सपूतों में गोपालकृष्ण गोखले का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है.

गोखले ने भारतीय राजनीति में एक नयी विचारधारा, नयी चिंतन पद्धति और चेतना को जन्म दिया, जिसने भारतीय जनमानस को शिक्षा, आर्थिक व सामाजिक पक्ष में नयी दिशा दी. उन्होंने हमें महात्मा गांधी जैसा नेता दिया. आश्रम - पद्धति को विकसित किया. समाज सुधार की परंपरा के जनक भी गोपालकृष्ण गोखले ही हैं. गोखले के अनुसार उनका हृदय भारत के प्रति इस प्रकार समर्पित था कि वह भारत के सच्चे सेवक बन गये.

महान देशभक्त, अहिंसा के पुजारी, सांप्रदायिक एकता के प्रबल समर्थक गोपालकृष्ण गोखले की बहुआयामी प्रतिभा और उनके जीवन चरित्र से जुड़े अमर प्रसंगों से परिचित कराने वाली यह पुस्तक निश्चय ही स्वागत योग्य है.

अशफाक उल्ला खां

भारत को स्वतंत्र कराने तथा स्वतंत्र भारत के निर्माण में देश के अनेकानेक वीर सपूतों ने अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये. अशफाक उल्ला खां ऐसे ही वीर सपूत का नाम है जो मस्ती के साथ गीत गाते हुए फांसी के फंदे पर झूल गये.

प्रस्तुत पुस्तक में प्रारंभिक जीवन, क्रांति-पथ का वरण, काकोरी कांड, काकोरी के बाद, न्याय का नाटक आदि शीर्षकों के अंतर्गत अशफाक उल्ला खां के जीवन और उनकी क्रांतिकारी गतिविधियों पर व्यापक प्रकाश डाला गया है.

पुस्तक में इसके चरितनायक के अल्प आत्मकथ्य के साथ ही उनके भाई रियासत उल्ला खां, काकोरी कांड मुकदमे में उनके वकील कृपाशंकर हजेला, सुशील कुमार, काकोरी कांड में दंडित मन्मथनाथ गुप्त, योगेशचंद्र चटर्जी आदि के संस्मरण, अशफाक के आठ पत्र उनकी अनेक कविताएं भी संग्रहीत की गयी हैं, जिन्होंने पुस्तक को ऐतिहासिक दस्तावेज बना दिया है.

क्रांतिकारी अशफाक खां के जीवन को समझने के लिए उपादेय यह पुस्तक सबके लिए संग्रहणीय है.

आचार्य द्रोण

महाभारत के पात्रों को जीवंत करने में डा. विनय ने एक लंबी यात्रा तय की है. शाश्वत कथा माला के अंतर्गत उन्होंने महाभारत के अमर पात्रों युधिष्ठिर, अर्जुन, कृष्ण, द्रौपदी, गांधारी, कुंती, भीम, भीष्म, कर्ण, धृतराष्ट्र, शकुनि, दुर्योधन, एकलव्य अभिमन्यु और द्रोण आदि को साकार करने का सार्थक प्रयास किया है.

लेखक के अनुसार 'महाभारत के पात्र' उपन्यास नहीं है किंतु महाभारत में व्यक्त यथावत चरित्र भी नहीं, और ये उपन्यास भी हैं तथा कथाचरित भी. किंतु इनकी प्रामाणिकता इनकी घटनाओं ये जिस तरह सिद्ध होती हैं, उसी तरह इनके मन के स्पर्श से भी.

महाभारत में अपने शिष्यों को ज्ञान-संपदा से संपन्न बनाने वाले तथा युद्ध विद्या में पारंगत करने वाले द्रौण किन कारणों से दुर्योधन के अत्याचारों को सहन करते रहे और युद्ध के मैदान में अपने प्रिय शिष्य अर्जुन के सामने खड़े हो गये यह जानना रोचक भी है और ज्ञानवर्धक भी. डा. विनय की समर्थ लेखनी ने मानो आचार्य द्रोण को हमारे सामने खड़ा कर दिया है.

□ डा. गिरिराजशरण

- 'गोपाल कृष्ण गोखले', लेखकः अवधेश कुमार चतुर्वेदी, मूल्यः 12 रुपये.
- 'अशफाक उल्ला खां', लेखकः भवान सिंह राणा, मूल्यः 12 रुपये.
- 'महाराज धृतराष्ट्र', लेखकः डा. विनय, मूल्यः 10 रुपये.
- 'आचार्य द्रोण', लेखकः डा. विनय, मूल्य 10 रुपये

सभी पुस्तकों के प्रकाशकः डायमंड पाकेट बुक्स, 2715 दरियागंज, नई दिल्ली-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपन्यासकार के जन्मोत्सव पर 'उपन्यास-संध्या'

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र का नाम हिंदी जगत के लिए अब किसी परिचय का मौहताज नहीं रह गया है. उनकी प्रखर सृजन धर्मिता ने आम पाठकों को भी अपने कथा-साहित्य से गहरे जोड़ लिया है. कम समय में भी उपन्यास-साहित्य में उनके विपुल सारस्वत योगदान से व्याप्त जड़ता भंग हुई और विशेषकर इस प्रदेश की सृजन भूमि अधिक उर्वर हुई है. यही कारण है कि विगत 27 मार्च को पटना स्थित राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद के सभागार में अखिल भारतीय हिंदी प्रसार प्रतिष्ठान सहित कुछ साहित्यिक संस्थाओं की ओर से राष्ट्रीय ख्याति के उपन्यासकार डॉ. भगवतीशरण मिश्र के 51 वें जन्मदिवस के अवसर पर 'उपन्यास संध्या' का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता पटना उच्च न्यायालय के वरीय अधिवक्ता दमनकांत झा ने की.

सुप्रसिद्ध हिंदी सेवी एवं वयोवृद्ध साहित्यकार डॉ. माहेश्वरी सिंह 'महेश' ने समारोह का उद्घाटन करते हुए कहा कि डॉ. मिश्र ने 'पहला सूरज', 'पवनपुत्र', 'प्रथम पुरुष' तथा 'पुरुषोत्तम' जैसे उपन्यास लिखकर हिंदी उपन्यास की धारा को एक नयी दिशा दी है, जिससे आने वाली पीढ़ियां दिशा-निर्देश प्राप्त करेंगी. हिंदी के सुप्रतिष्ठ उपन्यासकार अमृतलाल नागर के निधन के बाद तो उनकी धारा में डॉ. मिश्र ही अब ऐसे लेखक हैं, जिनसे उपन्यास-साहित्य तथा उसके पाठकों को काफी अपेक्षाएं होने लगी हैं. मुझे विश्वास है कि ये नागरजी के अभाव को अपने सारस्वत कृतत्व से पूरा कर पाएंगे. अ.भा. हिंदी प्रसार प्रतिष्ठान के निदेशक डॉ. सतीशराज पुष्करणा ने अपने स्वागत भाषण में कहा कि डॉ. मिश्र के उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं, शोधग्रंथ भी हैं. इनके उपन्यासों के पात्र भले ही ऐतिहासिक या पौराणिक हों, किंतु वे अपने अतीतकाल में रहते हुए भी वर्तमान के जीवन-संघर्षों एवं आदर्श-प्रतिमानों से जुड़े रहते हैं.

संगोष्ठी में अपनी भागीदारी दर्ज करते हुए बिहार राष्ट्रभाषा परिषद के निदेशक डॉ. शिववंश पांडेय ने डॉ. मिश्र से संदर्भित अनेक अंतरंग संस्मरण सुनाते हुए कहा कि मैंने इनके साथ कार्य करते हुए बहुत कुछ सीखा, जिनसे मुझे आज बहुत लाभ हो रहा है. मैं इनकी कार्य-दक्षता, सृजनात्मक लेखन एवं प्रशासन में उनकी सात्विक ईमानदारी का कायल रहा हूं. उन्होंने कहा कि डॉ. मिश्र ने उपन्यास-लेखन के इतर व्यंग्य एवं बाल-लेखन भी प्रचुर रूप से किया है जिसका मूल्यांकन किया जाए तो वे उपन्यासकार की तरह ही श्रेष्ठ व्यंग्य एवं बाल लेखक के रूप में भी जाने जाएंगे. जो भी इनके संपर्क में आता है, उन्हें ये हमेशा ऊपर उठाने का प्रयास करते रहते हैं. राजभाषा विभाग के पूर्व निदेशक भी बदरीदास ने कहा कि पहले से अब राजभाषा विभाग का आयाम काफी बढ़ गया है, फिर भी वे समय निकालकर प्राथमिकता के आधार पर साहित्य-लेखन कर लेते हैं, यह उनकी सृजनात्मक निष्ठा की बड़ी विशेषता है. मैं उनके लेखन की सात्विकता से बहुत प्रभावित हूं, क्योंकि इनके साहित्य में संघर्षशील मनुष्य की गरिमा को प्रतिष्ठित किया गया है. साहित्य अकादमी से पुरस्कृत सुप्रसिद्ध कवि मार्कंडेय प्रवासी ने कहा कि डॉ. मिश्र एक मछुवारे की भांति भावों-शिल्पों का जाल फेंककर सागर से जो सृजन के मोती पकड़ते हैं, वह समकालीन साहित्य को काफी समृद्ध कर रहा है, इसलिए बिहार की मिट्टी से जुड़े डॉ. मिश्र पर पूरे देश को गर्व है.

भाषाविद् समीक्षक एवं पटना कॉलेज के हिंदी विभागाध्यक्ष प्रो. चंद्रकिशोर पांडेय 'निशांतकेतु' ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए हिंदी उपन्यासों का विकासक्रम, उपस्थित वर्तमान तथा डॉ. भगवतीशरण मिश्र के उपन्यास-शिल्प की विशद विवेचना प्रस्तुत की. उन्होंने डॉ. मिश्र को 'सुशिल्पित उपन्यासकार' के रूप में रेखांकित करते हुए उनके ऐतिहासिक उपन्यास 'पहला सूरज' को इस सदी के कालजयी उपन्यासों में आठवें स्थान पर प्रतिष्ठित कर उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की. उन्होंने कहा कि रचना का जन्मपूर्णता में होता है, इसलिए किसी रचनाकार का मूल्यांकन उनके संपूर्ण साहित्य के आधार पर करना चाहिए. इस निकष पर डॉ. मिश्र का साहित्य-लेखन श्रेष्ठ एवं कालजयी है. वर्तमान से अतीत की यात्रा कर डॉ. मिश्र ने ऐतिहासिक-आध्यात्मिक शक्ति-स्रोत ढूंढ़कर उसे सर्जनात्मक विधाओं के माध्यम से वर्तमान दशा-दिशा को समृद्ध किया है. 'पहला सूरज' इतिहास न होकर शुद्ध साहित्यिक कृति है और इसी दृष्टि से उस कृति का मूल्यांकन होना चाहिए. प्रो. निशांतकेतु ने प्रशासन में रहते हुए भी साहित्य की सेवा करने वाले लेखकों की सुदीर्घ परंपरा का उल्लेख करते हुए कहा कि भाषा और साहित्य के विकास के लिए विपुल साहित्य लेखनरत रहने की परंपरा में बिहार की मिट्टी से जुड़े डॉ. ग्रियर्सन, जगदीश चंद्र माथुर जैसे यशस्वी रचनाधर्मियों में डॉ. भगवतीशरण मिश्र का नाम पांक्तेय होगा.

युवा कवि-कथाकार एवं 'साहित्य कुंज' के सचिव शिवनारायण ने इस पूरे समारोह का संचालन करते हुए आरंभ में ही डॉ. मिश्र के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी रचना-प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा की. उन्होंने कहा कि आज किसी कृति की आलोचना करते समय लेखन के साथ-साथ उसके पृष्ठगत आयामों एवं आधार तत्त्वों की भी विशद व्याख्या रचना-प्रक्रिया के अंतर्गत की जाती है, तभी लेखक के रचना-संसार का पूरा-पूरा अर्थोद्घाटन हो पाता है. इस दृष्टि से डॉ. मिश्र की रचना-प्रक्रिया अनूठी-सात्त्विक है. उन्होंने जोर देते हुए कहा कि यदि कोई महत्त्वपूर्ण कृति सामने आती है तो उसकी गंभीर समीक्षा होनी चाहिए, हर परवर्ती पीढ़ी को साहित्य की उस धारा से जुड़ने में सुविधा हो सके. इस अवसर पर अन्य वक्ताओं में सर्वश्री डॉ. कुणाल कुमार, डॉ. मिथिलेश कमारी मिश्र, रामसिंहासन सिंह 'विद्यार्थी', डॉ. संतोष दीक्षित ने भी अपने उद्गार व्यक्त किए. समारोह के आरंभ में सहभागी संस्थाओं की ओर से डॉ. भगवतीशरण मिश्र का भव्य स्वागत करते हुए उन्हें संस्कृत में एक अभिनंदन-पत्र भेंट किया गया. अभिनंदन-पत्र का पाठ संस्कृत के आचार्य पं. अमलेश वर्मा ने किया.

अंत में, समारोह में उपस्थित रचनाधर्मियों के प्रति अपना आभार ज्ञापित करते हुए डॉ. भगवतीशरण मिश्र ने इस भव्य सारस्वत आयोजन के लिए सहभागी संस्थाओं को धन्यवाद दिया. उन्होंने कहा कि मैं साहित्य-सेवी हूं और हमेशा भाषा-साहित्य के विकास के लिए सृजनरत रहना चाहता हूं. मुझे यह भ्रम कदापि नहीं है कि मैं एक महान उपन्यासकार हूं, जैसा कि लोग अक्सर कहते रहते हैं. मेरा लेखन मनुष्य को ऊंचाई, गरिमा एवं मान-मूल्य देने के लिए सतत-सचेष्ट रहता है. मुझे किसी वाद-विशेष के प्रति कभी आसक्ति नहीं रही. मेरी प्रतिबद्धता मनुष्य के कल्याण के प्रति रही है और मेरी सभी कृतियों में मेरी इस प्रतिबद्धता को साफ-साफ देखा जा सकता है. मुझे अभी बहुत लिखना है और अपने इस सतत लेखन के लिए मैं आप सब की मंगलकामना चाहता हूं.

इस समारोह का समापन 'सारस्वत' के अध्यक्ष निशांतकेतु के धन्यवाद-ज्ञापन से हुआ.

शिवनारायण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साहित्यकार समारोह

राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा साहित्यकार सम्मान समारोह, सूचना केंद्र, उदयपुर में संपन्न हुआ. अकादमी के कार्यकारी अध्यक्ष डा. हेतु भारद्वाज ने अकादमी की गतिविधियों का विस्तार से परिचय देते हुए सम्मानीय रचनाकारों व अतिथियों का स्वागत किया. समारोह की अध्यक्षता करते हुए सुप्रसिद्ध कवि रघुवीर सहाय ने कहा कि प्रकाशन आदि की विकट समस्या से हमें जूझना पड़ रहा है.

साहित्यकार सम्मान समारोह का शुभारंभ बाबा नागार्जुन ने सरस्वती के समक्ष दीप प्रज्वलित कर किया. वयोवृद्ध साहित्यकार नागार्जुन ने साहित्यकारों को सम्मानित करने की परंपरा को अकादमी के लिए गौरवपूर्ण बताया और कहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी ने कई उल्लेखनीय कार्य किये हैं. बाबा ने कहा– रचनाकारों का सम्मान, पांडुलिपि प्रकाशन सहयोग आदि कार्य सराहनीय है, लेकिन साहित्य जगत के पिछले वर्षों के प्रखर

श्री सहाय ने आजादी पश्चात के वर्षों में विकास के नाम पर अर्जित सरकारी उपलब्धियों की चर्चा के संदर्भ में कहा कि साहित्यकार की दृष्टि से हम यह भी पहचानें कि रचनात्कता ही इस देश को प्राप्त आजादी का पर्याय है. उन्होंने यह भी कहा कि स्वतंत्रता के बाद के वर्षों में भारत की ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एकता और सांस्कृतिकता का विभाजन होता रहा है और हमने ही स्थापित मूल्यों को तोड़ा है. इसी क्रम में बी.ए. के पाठ्यक्रम तक हिंदी के साथ एक अन्य प्रादेशिक भाषा शिक्षण आवश्यक किए जाने की बात पर भी सहाय ने जोर दिया.

इस अवसर पर 'सारिका' के संपादक अवधनारायण मुद्गल ने सम्मान समारोह के विशिष्ठ अतिथि पद से बोलते हुए कहा कि राजस्थान साहित्य अकादमी सकारात्मक कार्यों में लगी है तथा यही एक मात्र अकादमी है जो योजनाबद्ध एवं सुविचारित ढंग से अपने कार्यों में प्रगति करते हुए कार्य कर रही है. इसी वजह से इसने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है.

साहित्यकारों के कार्यों पर गहन चिंतन-मनन के लिए हर वर्ष व्याख्यानमालाओं का आयोजन किया जाए. इन विशिष्ठ साहित्यकारों के नाम गिनाते हुए बाबा ने रांगेय राघव, अज्ञेय व अमृतलाल नागर का उल्लेख किया.

सुविख्यात कवि और चिंतक बाबा नागार्जुन ने सर्व प्रथम स्वर्गीय डा. प्रकाश आतुर को अकादमी के सर्वोच्च सम्मान 'साहित्य मनीषी' के सम्मान से मरणोपरांत अलंकृत किया, सम्मान स्वरूप ग्यारह हजार रु. की राशि, रजतपत्र, शाल व अकादमी प्रकाशन उनकी धर्मपत्नी श्रीमती नूतन माथुर ने ग्रहण किये. विशिष्ठ साहित्यकार योजना परंपरा के अंतर्गत बाबा ने शांति मेहरोत्रा, ओमप्रकाश निर्मल, योगेंद्र किसलय को अलंकृत किया और उन्हें पांच-पांच हजार रुपये, प्रशस्ति पत्र, शाल व पुस्तकें भेंट स्वरूप दीं.

कार्यक्रम का संचालन अकादमी सचिव, डा. लक्ष्मी नारायण नंदवाना ने किया. □

विष्णु पुरोहित

भारतीय कथा साहित्य

दिल्ली विश्वविद्यालय के जानकीदेवी महाविद्यालय में 19-20 मार्च, को विभिन्न भारतीय भाषाओं का कथा साहित्य पर द्विदिवसीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया. गोष्ठी का उद्घाटन करते पांडुरंगराव ने गोष्ठी के विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि आज साहित्य मानवीयता से दूर चला गया है. आज के बिखरते हुए अलगाव के वातावरण में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की जितनी भी जानकारी प्राप्त हो सके उतना अच्छा है. कुछ कहने की, कुछ कहलवाने की और उसे जनमानस तक पहुंचने के लिए जब इच्छा जन्म लेती है तब ऐसी गोष्ठियों का महत्व बढ़ता है.

विषय प्रवर्तन करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ के सचिव श्री बालस्वरूप राही ने विभिन्न भाषाओं से अनूदित कहानियों का उल्लेख करते हुए कहा कि बिना आंचलितकता के हम भारतीयता की सही पहचान नहीं कर सकते. केंद्रीय हिंदी निदेशालय के निदेशक प्रसिद्ध कथा-लेखक डॉ. गंगा प्रसाद विमल ने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए हिंदी कथा साहित्य के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला. प्रो. डा. तारकनाथ बाली ने कहा कि यह पहला अवसर है जब दिल्ली विश्वविद्यालय के किसी कॉलेज में इतनी भारतीय भाषाओं को एक साथ गोष्ठी में जोड़ा गया है. उन्होंने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुये उनके विभिन्न आयामों की चर्चा की और विभिन्न भाषाओं के कथा साहित्य के बीच भारतीय अस्मिता की पहचान पर बल दिया. प्रसिद्ध आलोचक प्रो. डॉ. नामवर सिंह ने आज की कहानी पर विचार प्रकट करते हुए विभिन्न भाषाओं की कथाओं का उल्लेख किया. गोष्ठी का समापन करते हुए साहित्य अकादमी के सचिव डॉ. इंद्रनाथ चौधरी ने विषय को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि हमें अपने साहित्य की परिभाषा अपने ढंग से करनी चाहिए. उसका अपना काव्य-शास्त्र होना चाहिए. उन्होंने आलोचक की भूमिका पर टिप्पणी करते हुए कहा कि बहुत-सी भ्रांतियां आलोचक फैलाते हैं जो भारतीय जमीन से जुड़ी साहित्यिक कृतियों में विदेशी प्रभाव ढूंढते हैं. उन्होंने कहा कि अपने साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए अपना दृष्टिकोण स्पष्ट और स्वच्छ होना चाहिए.

गोष्ठी में असमिया की डॉ. इंद्रा गोस्वामी, उर्दू के डॉ. सादिक, संस्कृत के श्री जयपाल विद्यालंकार, हिंदी के डॉ. गंगा प्रसाद विमल, पंजाबी की श्रीमती अजिताकौर, मराठी के डॉ. चंद्रकांत मेहता, तेलुगु के डॉ. जे.एल. रेड्डी, तमिल की डॉ. के.ऐ. जमुना अय्यर, बंगला की डॉ. जयंती चट्टोपाध्याय, मराठी के डॉ. निशिकांत मिरजाकर और उड़िया की डॉ. विधुत मोहंती ने अपनी-अपनी भाषा के कथा साहित्य पर विचार प्रकट किये. विभिन्न कॉलेज के प्रवक्ताओं ने सक्रिय भाग लेकर गोष्ठी को सफल बनाया. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिंदी साहित्यकार और विद्वान सम्मानित

राजनिवास में आयोजित 'सम्मान अर्पण' समारोह में दिल्ली के उपराज्यपाल अर्जुन सिंह ने हिंदी के जानेमाने साहित्यकारों को सम्मानित किया. यह उल्लेखनीय है कि हिंदी अकादमी प्रतिवर्ष हिंदी भाषा और साहित्य की सेवा के लिए साहित्यकारों के समग्र योगदान के सम्मान स्वरूप उन्हें सम्मानित करती है. 'सम्मान अर्पण' समारोह में बोलते हुए उपराज्यपाल महोदय ने कहा कि "साहित्यकार सम्मान का भूखा नहीं होता है. यह तो समाज का कर्तव्य है कि वह उसे समुचित आदर दे और उसकी सेवाओं की पहचान करे." **हिंदी अकादमी के इस कार्य की सराहना करते हुए उपराज्यपाल ने कहा कि इन मनीषी** साहित्यकारों का सम्मान करके हिंदी अकादमी ने अपना कर्तव्य निभाया है. इस कार्य से हिंदी अकादमी का ही मान बढ़ा है. हम इन सभी साहित्यकारों के हृदय से आभारी हैं, जिन्होंने हमारी यह छोटी-सी भेंट स्वीकार की, हमारी बात रखी और आज इस समारोह में आकर शोभा बढ़ाने की कृपा की. उपराज्यपाल ने यह भी कहा कि मैं सभी साहित्यकारों को आदर पूर्वक बधाई देता हूं और उनसे यह अनुरोध भी करता हूं कि वे समय-समय पर हिंदी की सेवा के लिए हमारा मार्गदर्शन भी करते रहें.

हिंदी अकादमी के सचिव डॉ. नारायणदत्त पालीवाल ने समारोह का संचालन करते हुए सभी साहित्यकारों, मनीषियों और अतिथियों का स्वागत किया तथा अकादमी की विभिन्न योजनाओं पर प्रकाश डाला.

सम्मानित किये जाने वाले साहित्यकारों में सुप्रसिद्ध साहित्यकार **विष्णु प्रभाकर को 'शलाका सम्मान'** समर्पित किया गया, **जिसमें** 51,000/- रु. की राशि, एक शॉल, स्मृति चिह्न तथा प्रशस्ति-पत्र **शामिल हैं.**

हिंदी साहित्य की सेवा के लिए सर्वश्री देवेंद्र सत्यार्थी, डॉ. ओंप्रकाश, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, जगदीश चतुर्वेदी, केदारनाथ सिंह, रमेश बक्षी तथा नासिरा शर्मा को सम्मानित किया गया. हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में सराहनीय कार्य के लिए श्री लक्ष्मी चंद्र जैन एवं डॉ. वेद प्रताप वैदिक को सम्मानित किया गया. इसी प्रकार राष्ट्रभाषा सेवा एवं प्रचार तथा प्रसार के लिए डॉ. पांडुरंग राव तथा ब्रजकिशोर शर्मा को सम्मानित किया गया. इनमें से प्रत्येक की सेवा में 21,000/-रु.की राशि, एक शॉल, स्मृति चिह्न तथा प्रशस्ति-पत्र भेंट किये गये.

यह उल्लेखनीय है कि सुप्रसिद्ध कथाकार मन्नू भंडारी ने अकादमी द्वारा भेंट की गयी सम्मान राशि को 'भानपुरा मेधावी एवं निर्धन छात्र समिति' नामक स्वयंसेवी संस्था को दे देने की इच्छा व्यक्त की है तथा कथाकार कमलेश्वर ने सम्मान के प्रतीक के रूप में केवल 1,000/-रु. स्वीकार करके शेष राशि चार युवा एवं उभरते हुए लेखकों की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए दे देने की इच्छा व्यक्त की है.

इस अवसर पर अकादमी द्वारा सभी सम्मानित साहित्यकारों की परिचय स्मारिका का प्रकाशन भी किया गया, जिसका उपराज्यपाल महोदय ने विमोचन किया. प्रो. विजयेंद्र स्नातक ने योजना की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए सभी के प्रति आभार प्रकट किया.

आसमान झुक रहा है

हाल ही में, नोएडा सांस्कृतिक मंच की एक चर्चा गोष्ठी हिंदी के सुपरिचित युवा लेखक हरिसुमन बिष्ट के उपन्यास 'आसमान झुक रहा है' पर, नोएडा में संपन्न हुई. गोष्ठी में सर्वश्री सुरेंद्र तिवारी, अखिल अनूप और महेश दर्पण ने अपने-अपने आलेख पढ़े जिनके अनुसार क्रमशः यह उपन्यास मूलतः शोषण की गाथा का, जड़ और स्थापित से मुक्ति की कामना का और ऊंच-नीच से अंटे पड़े गांव की उद्देश्यपूर्ण कथा का उपन्यास है. परिचर्चा का प्रारंभ करते हुए सुरेश कुमार ने कहा कि इस उपन्यास में पहाड़ी गांवों में व्यापत वर्ग-विभाजन और नारी शोषण का चित्रण महत्वपूर्ण है. पंकज बिष्ट ने जहां **उपन्यास के प्रामाणिक चित्रण की** सराहना की वहीं यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' ने उसे संवेदना के स्तर पर प्रभावशाली बताया. दिविक रमेश ने कहा कि उपन्यास का यदि कोई मूल चरित्र है तो वह पहाड़ ही है और इसी दृष्टि से उपन्यास के स्ट्रेक्चर को देखा जाना चाहिए. ज्ञानप्रकाश विवेक का विचार था कि यह उपन्यास उन लोगों के लिए है जो पहाड़ की अभावग्रस्त जिंदगी को गहरे से समझना चाहते हैं. गोष्ठी में भाग लेने वाले अन्य लेखकों में सर्वश्री असगर वजाहत, शेर... गर्ग, सुरेश उनिवाल, देवेंद्र ... चौबे, राधेश्याम प्रगल्भ, आशा... व्होरा, राकेश रेणु, राजा खुगा... रमेश कौशिक, प्रेमपाल ... मनमोहन चड्ढा और बाबा का... आदि थे. अंत में अध्यक्ष पद से ... हुए राजकुमार सैनी ने कहा ... हरिसुमन बिष्ट का उप... लेखकीय साहस और चुनौती... उपन्यास है.

देवी शंकर अवस्थी प्रसंग

सात अप्रैल, सुबह दस बजे साहित्य अकादमी का सभागार खचाखच भरा था. वहां देवीशंकर अवस्थी के समकालीन-सहयोगी ही नहीं, वरन् युवा से लेकर तरुण यानी कई पीढ़ियों के साहित्यकार बड़े उत्साह से आये. इससे अवस्थीजी के व्यक्तित्व की आत्मीयता और आलोचना की लोकप्रियता का अंदाजा सहज ही लगाया जा सकता है. साहित्य अकादमी द्वारा आयोजित 'देवीशंकर अवस्थी स्मृति संगोष्ठी' में इन्हीं दोनों पहलुओं पर गर्मागर्म चर्चा हुई. गोष्ठी के दो सत्र थे. पहला संस्मरणों पर केंद्रित था और दूसरा उनकी समीक्षा पर. गोष्ठी चली तो सत्रों की सीमाएं भंग हो गयीं. संस्मरणों की शुरुआत नेमिचंद्र जैन ने की. उन्होंने अवस्थी जी के 'जीवंत व्यक्तित्व' और सच्चाई, ईमानदारी का वातावरण बनानेवाली उनकी उपस्थिति की चर्चा की. श्रीलाल शुक्ल ने दुख के साथ कहा कि उनके जाने से हिंदी आलोचना में उस प्रवृत्ति का विकास रुक गया जो शुद्ध स्वायत्तता और सापेक्षता के बीच थी. राजेंद्र यादव हमेशा से समीक्षा की अध्यापकीय प्रवृत्ति की जड़ता से चिंतित रहे हैं. उन्होंने अवस्थी जी में इसका अभाव पाकर प्रसन्नता व्यक्त की. डा. विश्वनाथ त्रिपाठी ने एक ऐसे प्रकरण का आरंभ कर दिया, जो दूसरे सत्र में नामवर बनाम देवीशंकर अवस्थी के रूप में छाया रहा. त्रिपाठीजी ने कहा कि 'रचना और आलोचना' के देवीशंकर अवस्थी और 'कविता के नये प्रतिमान' के नामवर सिंह में कोई अंतर नजर नहीं आता. इसके अलावा श्री अजित कुमार, डा. रामदरश मिश्र और कैलाशचंद्र शर्मा ने भी अवस्थी जी के व्यक्तित्व पर प्रकाश डाला.

दूसरे सत्र की चर्चा ... गहमागहमी लिए हुए थी. ... प्रकाश ने अवस्थी जी की आलो... के उस पहलू को उठाया ... शिक्षा-संस्कृति की समस्याओं ... गंभीरता से विचार किया गया है, ... डा. नामवर सिंह पर उन्होंने ... समस्याओं की अनदेखी का ... लगाया. रमेश उपाध्याय ने अव... जी को रूपवादी समीक्षक ... किया. राजकुमार सैनी ने रेखां... किया कि नामवर सिंह के ... अवस्थीजी ने साहित्य की संवेदना ... महत्व दिया. डा. मैनेजर पांडे ... अपने वक्तव्य की शुरुआत ... कहकर की कि जहां नामवर सिं... आलोचना खत्म होती है, वह... अवस्थीजी की आलोचना शुरू ... है, इसी बीच संचालक की ओर ... पर्ची उन्हें मिली और उनका व... गड़बड़ा गया. थोड़ी देर तक वे ... विश्रंखल-सा बोलते रहे. डा. ... तिवारी ने अवस्थी के अंतर्विरोध... चर्चा की और उनके मूल्यांकन ... अतिवादिता से बचाते हुए अवस्थी ... को अत्यंत ग्रहणशील, बहुआ... और संवेदनशील आलोचक ... अजय तिवारी ने इस बात को ... उदाहरणों से पुष्ट किया. डा. ना... सिंह ने ज्यादातर सफाई दी और ... ऊपर लगे आक्षेपों का उत्तर ... उन्होंने जब बोलना शुरू कि... पंजाबी लेखिका अजित कौर ... स्वरूप उठकर बाहर चली गईं ... नामवर सिंह ने अवस्थी ... रूपवादी समीक्षक ठहराया ... उनकी ईमानदारी पर भी शंका ... किया. कुल मिलाकर गोष्ठी ... जीवंत रही, सिवाय इसके कि ... जे.एन.यू. के छात्र पेटभर ... मिलने का दुख व्यक्त करते ...

□ बली...

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रचनात्मकता का सम्मान

राजधानी स्थित सादतपुर गांव में जन कवि शील के सम्मान में 13 व 14 अप्रैल को दो दिवसीय समारोह संपन्न हुआ. शीलजी के व्यक्ति और रचनाकार पर केंद्रित सत्र में कवि की रचनाओं का बंगला में करुणा निधान द्वारा किया गया अनुवाद उल्लेखनीय रहा. 'जन कविता: परंपरा और परिदृश्य' पर केंद्रित सत्र और कवि सम्मेलन' इसलिए यादगार बन गये कि त्रिलोचन शास्त्री, अजित कुमार, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, विश्वनाथ त्रिपाठी, अदम गोंडवी, प्रयाग शुक्ल, अजय तिवारी, मंगलेश डबराल, कुबेरदत्त, मैनेजर पांडेय, राजकुमार सैनी, सरोज शर्मा, अरुण प्रकाश, **कुमार सौवीर सहित अनेक चर्चित हस्ताक्षर यहां मौजूद थे. 'यथार्थवादी** कहानी: परंपरा और परिदृश्य' पर केंद्रित सत्र की अध्यक्षता की प्रख्यात कथाकार रमाकांत व रमेश उपाध्याय ने और प्रारंभिक विचार सूत्र देते हुए संचालन किया महेश दर्पण ने. विषय प्रवर्तन करते हुए सुधीश पचौरी ने शीलजी के रचनाकर्म को प्रेरक व महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि हमें विचार करना चाहिए कि हमारी यथार्थवादी परंपरा का चुनाव और उसकी व्याख्या है क्या? नयी कहानी की हमारी व्याख्या क्या हो? नयी कहानी के बाद 'स्कूल ऑफ थॉट' की अनुपस्थिति को रेखांकित करते हुए उनका कहना था कि हमें समातर कथा आंदोलन के बारे में भी विचार करना होगा. समीक्षा पद्धति की चर्चा करते हुए सुधीश का कहना था कि यथार्थ की एक पूर्वकल्पना जरूरी है. वर्तमान को संकट की घड़ी बताते हुए उनका कहना था कि आलोचना की आज रचना से मांग कुछ ज्यादा ही हो गयी है. यथार्थ को समझने के मौजूदा **औजारों को भी उन्होंने नाकाफी** बताया.

अरुण प्रकाश का कहना था कि हमारे यहां स्वाधीनता आंदोलन पर बहुत लिखा गया पर सांप्रदायिकता से मिली चुनौती का वरण हम नहीं कर पाये. आज कहानीकार का **बोधन पाठकों से हटकर** आलोचकों की तरफ चला गया है. उन्होंने कहा कि रचना के मूल्यांकन के औजार जरूर तय कीजिए पर इतना विलंब न कीजिए कि औजार ही छोटे पड़ जाएं. हमें आलोचना से मिलने को कम मिला है. डा. ओमप्रकाश ग्रेवाल ने सवाल उठाया कि आज जिस बिंदु पर हम खड़े हैं वहां यथार्थवादी परंपरा से जुड़ाव कैसा हो, यह सोचना होगा. हमें रचनाशीलता की स्थिति व चुनौतियों **पर विचार करना होगा. यदि हम कहानी आलोचना के आकादमिक** सिद्धांत बनाकर चलेंगे तो रचनाकारों को आलोचना से अधिक मदद नहीं मिलेगी. भले ही हमारे पुराने मानदंड उसी रूप में लागू न होते हों पर आज जहां हम खड़े हैं उसे समझने के लिए ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को समझने की कोशिश करनी होगी. आज का यथार्थ हवा में से निकलकर नहीं आया है. उनका कहना था कि हमें इस बात से सावधान रहना चाहिए कि आज के संकट की गलत परिभाषा से रचनाकार ठगा न जाए. यह संकट सामाजिक बदलाव का परिणाम है, ऐसा कहना सरलीकृत कर देना नहीं है.

डा. माहेश्वर ने इस बात पर विशेष बल दिया कि कहानी की परपरा को हमें 100 सालों तक ही सीमित नहीं कर देना चाहिए. हमारी विरासत में लोक साहित्य की विरासत भी है. हमें अपनी समूची परंपरा को **लेना होगा. लोक कथाओं को आधुनिक** ढंग से भी इस्तेमाल किया जा सकता है. उनमें क्राफ्ट भी मिलता है और दर्शन भी.

मनमोहन का कहना था कि परिस्थितियां कुछ इस तरह से बदली हैं कि उनके प्रति समर्पण तरह-तरह से दिखायी देता है. हमारे सामाजिक **यथार्थ में पेचीदा स्थिति है. जो** क्रुशुएल जंक्चर है, वह समकालीन में दिखायी नहीं देता. हमारे साहित्य में एक तरह का अराजनीतिकरण हुआ है. संकट क्या है, उसे परिभाषित करना पहले जरूरी है. हमारे बोध में **नयी चीजें आ गयी हैं पर हमारे नाशंज** नहीं बदले हैं. आलोचना की विफलता भी मैं इसी संदर्भ में देखता हूं.

ब्रजेश्वर मदान ने कहा कि मार्क्स के सामने आज का समाज नहीं था. आज की टेक्नोलॉजी नहीं थी. आज आदमी की नित नयी जरूरतें पैदा की जा रही हैं. नायक गायब जरूर हो गया है, पर हमें संज्ञा पर नहीं, क्रिया पर जोर देना चाहिए. आज बहुत-सी कहानियां मीडिया के दबाव में आकर **लिखी जा रही हैं. इससे पॉपुलर टेस्ट के लिटरेचर का खतरा बढ़ा है.** आलोचना और कहानी के संकट के भी मेरे खयाल से नकली मुद्दे बनाए गये हैं.

यश सरोज ने कहानी को चौपाल से जोड़ते हुए कहा—"रचनाकार **पहले पहल बड़ी चर्चा की दरकार नहीं** रखता. व्यक्तिगत रूप से परंपरा वही है—जो मैंने समझी है, कबूल की है, ली है. आज हमने साहित्य को खानों में बांट रखा है. मेरी समझ से सत्य के शाश्वत मूल्यों को रेखांकित करना ही अंततः स्वीकार किया जाएगा."

नफीस आफरीदी ने कहा—यह आयोजन अपने आप में एक अलग ही तरह का आयोजन है. एयरकंडीशंड हॉलों की संस्कृति से अलग. आज सांप्रदायिकता अपने चरम पर है... पर हमारे रचनाकार इसे भी एक फार्मूले की तरह उठा रहे हैं. वे विभाजन से कथा सूत्र उठाते हैं. यह नहीं करते कि सचमुच आपसी मेल मिलाप और सौहार्द को आज की जिंदगी में तलाश करें. हमें एक-दूसरे की संवेदनाओं को समझना चाहिए.

सम्मानित रचनाकार शीलजी ने कहानी को निदान की खोज और रास्ते की तलाश बताया. कहानी हमारे यहां कही जाती रही है, लिखने का काम बहुत बाद में शुरू हुआ. विक्षुब्ध मन से उन्होंने कहा, ऐसा लगता है **जैसे हम नयी परंपरा का सृजन नहीं करना** चाहते. कहानी को हम वह रूप दें कि पाठक यह समझे कि पात्र हमारा है!

कथा गोष्ठी के अध्यक्षमंडल के सदस्य कथाकार रमेश उपाध्याय ने कहा कि आज की चर्चा से यह जाहिर हो गया कि साहित्य के बारे में हम कितने गंभीर हैं. साहित्य एक किनारे नहीं हो गया है. हम वह जमाना भूल जाते हैं जब साधन मौजूद नहीं थे और आदमी पोथी लिखकर मर जाता था. वे पोथियां आज भी हमारे साथ बनी हुई हैं. आज हम क्षणवादी नजरिये से सोचते हैं. साहित्य अखबार या टी.वी. का प्रोग्राम नहीं है. रचना और आलोचना का जैसा संबंध होना चाहिए, वह नहीं है. पर यह कहना कि हमें आलोचना की जरूरत ही नहीं है, गलत है. अपने आपको स्वायत्त मान लेने की यह बात हमें अपने सामाजिक यथार्थ से दूर करती है. आलोचक समाज का एक जिम्मेदार व्यक्ति है. सामाजिक संकट को तो हमने स्वीकार कर लिया, पर उससे निबटने के बारे में राय मिल नहीं पा रही. दूरदर्शन का प्रभाव नये रचनाकार ग्रहण कर रहे हैं.

अध्यक्षमंडल के दूसरे सदस्य कथाकार रमाकांत ने 'चांद से गांव तक' और 'कुत्ते की दुम' जैसी कहानियों की चर्चा के साथ रचनाकार शीलजी से संबंधित संस्मरण सुनाये. उनका कहना था कि आधुनिक कहानी को महज 100 वर्ष हुए हैं अभी. सोचने की बात यह है कि हमारी आधुनिक कहानी पहुंची कहां तक है? उनका कहना था कि विष्णु प्रभाकर की 'धरती अब भी घूम रही है' की आलोचना भावुकता के कारण **की जाती है और श्रेष्ठता के नाम पर** निर्मल की 'परिंदे' को लटका दिया जाता है. जिस चीज को निर्मल तीन-चार पृष्ठों भी नहीं कह पाते हैं उसे प्रेमचंद महज एक वाक्य में कह जाते हैं—'संगीत से कल्पना चित्रमय हो जाती है'. निर्मल की वह कहानी हमारे लिए कहानी का मयार नहीं हो सकती. रचनात्मक आलोचना करते हुए हमें कहानी को घपलों से बचना चाहिए. आलोचना ने घपले भी बहुत किये हैं. □

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर वंचन का मायाजाल
कर देगा हाल बेहाल

अपने आयकर/ धनकर संबंधी मामलों का निपटारा करें

लंबी और महंगी मुकदमेबाजी से बचें। अपने कर-निर्धारण में निश्चितता प्राप्त करें।

आयकर और धनकर अधिनियमों के अधीन दंड और अभियोजन, भारतीय दंड संहिता के अधीन अभियोजन, किसी अन्य केंद्रीय अधिनियम के अधीन अभियोजन से बचें।

आयकर विभाग द्वारा धन का छिपाना या जालसाज़ी साबित कर देने या करने की संभावना से पूर्व

ये सभी लाभ आपको मिल सकते हैं। यदि आप निपटारे के लिए आवेदन दाखिल करें तो

इस संबंध में आवेदन दिल्ली, बंबई, कलकत्ता और मद्रास स्थित आयकर/धनकर समझौता आयोग की पीठों के समक्ष दाखिल किये जा सकते हैं।

निपटारें के लिए आवेदन तभी दाखिल करें :

(क) जब घोषित आय पर देय अतिरिक्त आयकर 50,000 रु. से अधिक हो।

(ख) संबंधित वर्षों के लिए कर की विवरणियां दाखिल कर दी गयी हों।

(ग) तलाशी और ज़ब्ती के मामले में, ज़ब्ती के बाद 120 दिन बीत गये हों।

आयकर विभाग
आयकर निदेशालय
(ग.सां प्र. एवं जन संपर्क)
नयी दिल्ली

डीएवीपी 90/2

IS:2344
L-1081435
ता के मानक
एकदम ख
फ़रानी जदा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

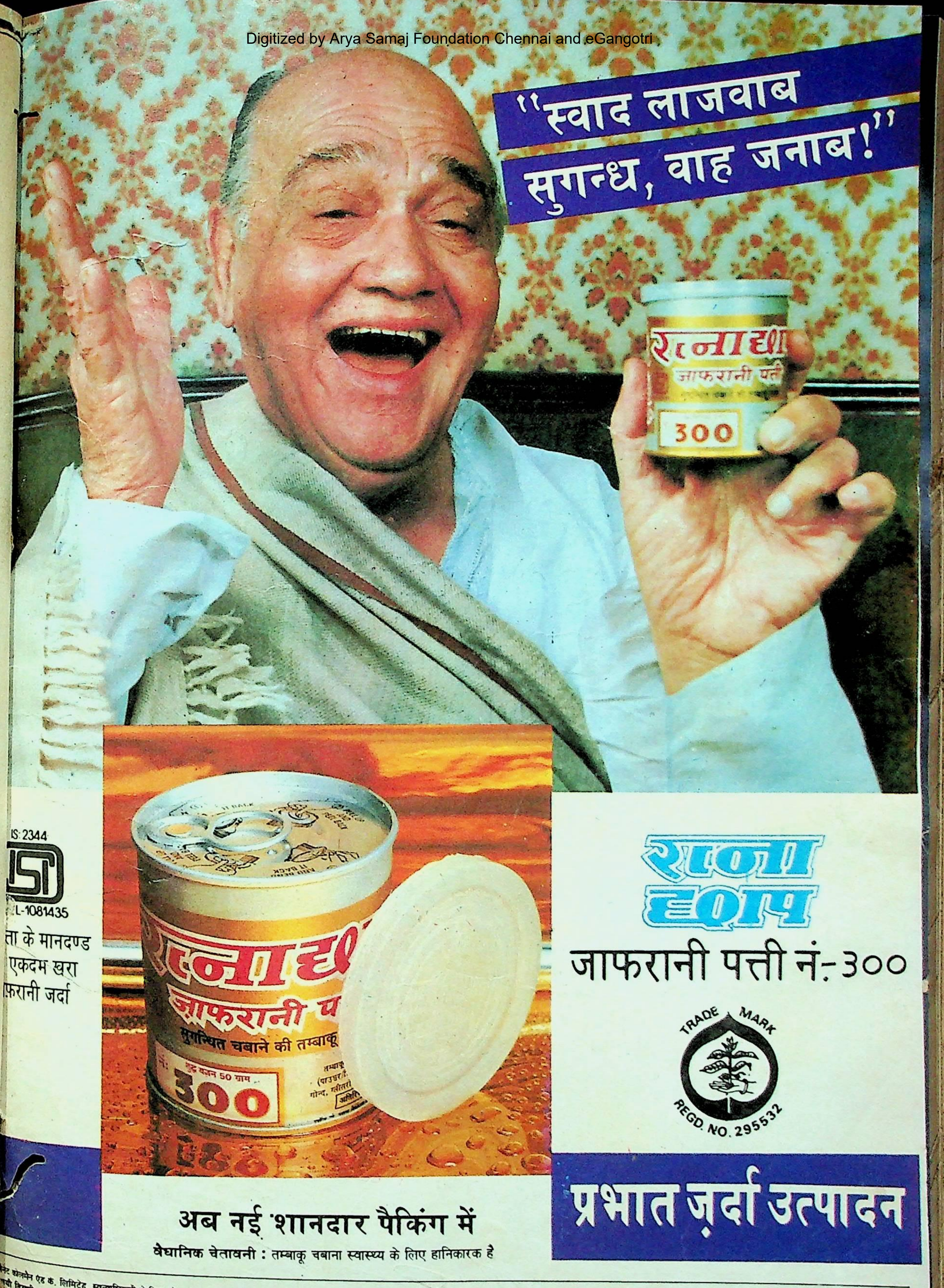

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

…ीयत सं. D-(C)-779
…र्व शुल्क के बिना डाक में डालने
…की अनुमति सं. U-89
RNI No. 6254/60
Regn. No. G…
Regn. No. KRN/…
RJ 2954
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar